Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

ऑल यू.जी. कोर्सेस-सेमेस्टर-I, II & III

कोर्स क्रेडिट-2

मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम (VAC)

भारतीय भक्ति परंपरा और मानव मूल्य

(हिंदी-विभाग)

As per the UGCF-2022 and National Education Policy 2020

संपादक मंडल

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा, प्रो. भवानी दास
डॉ. सीमा जैन

पाठ्य-सामग्री लेखक

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा, डॉ. वंदना, डॉ. ऋषिकेश सिंह,
डॉ. सीमा जैन, प्रो. भवानी दास, डॉ. राजकुमारी शर्मा,
डॉ. अनिल कुमार, डॉ. दीनदयाल

शैक्षणिक समन्वयक

दीक्षांत अवस्थी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

ISBN : 978-93-95774-69-7

प्रथम संस्करण : 2022

ई-मेल : ddceprinting@col.du.ac.in
hindi@col.du.ac.in

प्रकाशक :

दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
मुक्त शिक्षा परिसर/मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय-110007

मुद्रण :

मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

University of Delhi

यह अध्ययन सामग्री स्थायी समिति की दिनांक 08-05-2023 एवं शैक्षणिक परिषद की दिनांक 26-05-2023 के क्रमांक संख्या 1014 द्वारा तत्पश्चात् कार्यकारी परिषद की बैठक दिनांक 09-06-2023 को क्रमांक संख्या 14 {14-1 (14-1-11)} के द्वारा संस्तुत की गई।

- वर्तमान अध्ययन सामग्री की इकाई I (पाठ-1, 2 एवं 4), इकाई II (पाठ 2 से 7) पूर्व सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत पहले से उपलब्ध अध्ययन सामग्री का संशोधित संस्करण हैं। इकाई I (पाठ-3), इकाई II (पाठ 1 एवं 8 से 12) एवं इकाई III (पाठ 1) एन.ई.पी. के तहत नये पाठ्यक्रम के अनुसार लिखवाई गई हैं।
- स्व-शिक्षण सामग्री (एस.एल.एम.) में वैधानिक निकाय, डीयू/हितधारकों द्वारा प्रस्तावित सुधार/संशोधन/ सुझाव अगले संस्करण में शामिल किए जाएँगे। हालाँकि, ये सुधार/संशोधन/सुझाव वेबसाइट https://sol.du.ac.in पर अपलोड कर दिए जाएँगे। कोई भी प्रतिक्रिया या सुझाव ईमेल- feedbackslm@col.du.ac.in पर भेजे जा सकते हैं।

मुद्रण : ..... (..... प्रतिलिपि)

©दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ऑल यू.जी. कोर्सेस

मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम (VAC)

भारतीय भक्ति परंपरा और मानव मूल्य

अध्ययन सामग्री : इकाई I-III

इकाई I	**भारतीय भक्ति परंपरा**		
	1. भक्ति : अर्थ और अवधारणा	प्रो. सुधीर कुमार शर्मा	1-3
	2. भक्ति के प्रमुख संप्रदाय और सिद्धांत	प्रो. सुधीर कुमार शर्मा	4-16
	3. भारत की साँस्कृतिक एकता और भक्ति	डॉ. वंदना	17-31
	4. भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप	प्रो. सुधीर कुमार शर्मा	32-41
इकाई II	**भारत के कुछ प्रमुख भक्त और उनके विचार**		
	1. (i) संत तिरुवल्लुवर (ii) आंडाल (iii) संत अक्कमहादेवी	डॉ. ऋषिकेश सिंह	42-69
	2. मीराबाई	डॉ. सीमा जैन	70-80
	3. तुलसीदास	प्रो. सुधीर कुमार शर्मा	81-85
	4. कबीर	प्रो. सुधीर कुमार शर्मा	86-91
	5. संत रैदास	डॉ. सीमा जैन	92-98
	6. गुरु नानक	डॉ. सीमा जैन	99-110
	7. जायसी, सूरदास	प्रो. भवानी दास	111-121
	8. संत नामदेव	डॉ. राजकुमारी शर्मा	122-129
	9. संत योगिनी ललद्यद	डॉ. राजकुमारी शर्मा	130-137
	10. कुंचन नम्बियार, वेमना, सारलादास	डॉ. अनिल कुमार	138-151
	11. तुकाराम और चैतन्य महाप्रभु	डॉ. अनिल कुमार	152-167
	12. चंडीदास, नरसी मेहता	डॉ. दीनदयाल	168-187
	13. श्रीमंत शंकरदेव	डॉ. दीनदयाल	188-202
इकाई III	**मानव मूल्य और भक्ति**		
	1. मानव मूल्य का अर्थ	डॉ. वंदना	203-217

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1. भक्ति : अर्थ और अवधारणा

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भक्ति का अर्थ और अवधारणा
1.2.1 बोध प्रश्न
1.3 अभ्यास प्रश्न
1.4 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन कर विद्यार्थी निम्नलिखित को करने में सक्षम हो सकेंगे–

- भक्ति का अर्थ समझ सकेंगे।
- भक्ति संबंधी विभिन्न आचार्यों की मान्यताएँ जान सकेंगे।
- भक्ति के विविध रूपों से अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भक्तिकाल हिंदी का गौरवशाली काल माना जाता है। इस काल में भक्ति का चतुर्मुखी विकास हुआ। यह विकास वैदिक काल से लेकर भक्तिकाल तक हुआ। इसमें भक्ति के प्रारम्भ से लेकर मध्यकाल तक की यात्रा पर विचार किया गया है। इस पाठ में भक्ति का अर्थ जानने के साथ-साथ उसके अन्य रूपों पर भी विचार किया गया है।

1.2 भक्ति का अर्थ और अवधारणा

भक्तिकाल का समय संवत् 1375 से 1700 तक माना जाता है। इस काल खंड में भक्ति की ऐसी काव्यधारा बही कि उसके प्रवाह में हजारों भक्त बह गए। विद्वानों ने भगवान की सेवा को, ईश्वर के प्रति प्रेम और

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अनुराग को भक्ति कहा है। आचार्य शुक्ल ने तो श्रद्धा और प्रेम को भक्ति की संज्ञा दी है। हजारों संतों और भक्ति के आचार्यों ने भक्ति पर विचार करते हुए भक्ति को अपनी-अपनी दृष्टि से 'भक्ति' के दायरे में रखने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अलग-अलग ढंग से इसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। सभी ने अपने-अपने मत और बुद्धि से इसे (भक्ति को) परिभाषा में बांधने का प्रयत्न किया है। भक्ति से संबंधित प्राचीन ग्रंथ 'नारदभक्ति सूत्र' में भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा गया है –**'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा भक्ति'**। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम रखना भक्ति है। इसी तरह से भक्ति के चर्चित ग्रंथ शांडिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति पर विचार करते हुए कहा गया है–**'सा परानुरक्तिरीश्वरे भक्ति'** अर्थात् भगवान के प्रति व्यक्त की गई परम अनुरक्ति (लगाव) ही भक्ति है। इसका कहने का अर्थ यह है कि भक्त का भगवान के प्रति गहरा अनुराग होना चाहिए। जिस भक्त में उच्च कोटि की अनुरक्ति होगी वही भक्त भगवान की कृपा प्राप्त कर ईश्वर के समीप्य को प्राप्त कर पाएगा। भक्तों का कहना है कि भगवान कहते हैं कि अगर तू मेरी तरफ एक कदम बढ़ाएगा तो मैं तेरी तरफ दस कदम बढ़ूँगा। अगर भगवान में अनुरक्ति है तो भगवान जैसे गज को जब मगरमच्छ पकड़ लेता है और गज हृदय से पुकारता है तो भगवान अपने वाहन गरुड़ को छोड़ नंगे पैर दौड़कर गज के प्राणों की रक्षा करते हैं। इसलिए अगर भक्त में भगवान के प्रति विकट अनुराग है तो भगवान को अपनी ओर खींचने की शक्ति उसमें आ जाती है। असल में यही भक्ति है।

भक्ति के प्रसिद्ध आचार्य रूप गोस्वामी जी महाराज ने 'भक्ति रसामृतसिंधु' ग्रंथ में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है–''आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरूतमा'' कहने का तात्पर्य यह है कि अनुकूलता के साथ कृष्ण का अनुशीलन भक्ति है। गोस्वामी तुलसीदास 'राम की प्रीति' को भक्ति कहते हैं। इन सभी परिभाषाओं का निचोड़ यह है कि भक्त यदि ईश्वर से प्रेम करता है, ईश्वर के प्रति लगाव रखता है, उसके प्रति झुकाव रखता है, उसकी ओर उन्मुख होता है तो यही सरल शब्दों में भक्ति है। इस तरह से भक्ति में अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धा और अनुराग के भाव व्यक्त किए जाते हैं। रूपगोस्वामी जी महाराज ने भक्ति के भाव प्रस्फुटित होने के लिए नौ अनुभवों की चर्चा की है। वे अनुभाव इस श्लोक में वर्णित हैं–

शांतिख्यर्थकालत्वं विरक्ति र्मानशून्यता।
आशाबन्ध समुत्कंठा नाम गान सदा रुचि।
आसक्ति स्तद् गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले।
इत्यादयोनुभावो:स्यु जातिभावाङ्कुरे जने।।

अर्थात् शांति, व्यर्थ समय न बिताना, विरक्ति, मातशून्यता, आशा बांधना, उत्कंठा, नाम गान में रुचि, उनके गुणगान में आसक्ति, उनके रहने के स्थान में प्रीति। ये नौ अनुभाव भक्ति भाव पैदा होने वाले व्यक्ति में जन्म लेते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्ति के क्षेत्र में नवधा भक्ति का बड़ा महत्त्व बताया गया है। इस नवधा भक्ति के अन्तर्गत भक्ति के नौ प्रकारों का वर्णन किया गया है। भक्ति के नौ प्रकार इस प्रकार हैं–श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन। भक्त कवि सूर, तुलसी, कबीर आदि ने भक्ति के इन प्रकारों का सुंदर वर्णन किया है।

भक्ति के प्रसिद्ध ग्रंथ 'हरिभक्ति रसामृतसिंधु' ग्रंथ में भक्ति के पाँच विशिष्ट भावों की भी चर्चा की गई है–शृंगार, वात्सल्य, दास्य, सख्य और शांत। सूरदास जैसे कवियों ने इन सभी भावों का वर्णन अपने काव्य में किया है। सूर की गोपियों के साथ की गई लीलाओं में शृंगार, कृष्ण के बाल वर्णन में वात्सल्य, विनय के पदों में दास्य, ग्वाल-बाल प्रसंगों में सख्य और सांसारिकता के विरक्त भावों में शांत भाव की भक्ति मिलती है।

अपने इष्टदेव की ओर उन्मुख होने के भाव को आसक्ति कहा गया है। आसक्ति अर्थात् लगाव यह भक्ति करने का एक प्रकार है। आचार्यों ने ग्यारह आसक्तियों का वर्णन किया है। नारदभक्ति सूत्र के अनुसार ग्यारह आसक्तियाँ इस प्रकार हैं–गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति। ये सभी आसक्तियाँ सूर की भक्ति में निरुपित मिल जाती हैं।

इस तरह से भक्ति के अंतर्गत भक्त भगवान के प्रति अनुराग रखते हुए उसके सामीप्य का कामना करता है। वह तरह-तरह से भगवान की उपासना कर भगवान से मोक्ष की कामना करता है। यही संपूर्ण भक्त समाज का अभीष्ट है।

1.2.1 बोध प्रश्न

1. भक्ति का सामान्य अर्थ समझाइए।
2. शुक्ल जी ने भक्ति को कैसे परिभाषित किया है?
3. नवधा भक्ति में कौन-कौन सी भक्ति आती है?

1.3 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति को विभिन्न आचार्यों ने कैसे परिभाषित किया है?
2. भक्ति के क्षेत्र में नवधा भक्ति का मूल्य समझाइए।

1.4 संदर्भ-ग्रंथ

1. *'हिंदी साहित्य का इतिहास'* - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. *'भक्ति का संदर्भ'* - देवीशंकर अवस्थी
3. 'हिंदी साहित्य का इतिहास' - संपा. डॉ. नगेंद्र
4. *'भक्ति रसामृत सिंधु'* - आचार्य रूप गोस्वामी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. भक्ति के प्रमुख संप्रदाय और सिद्धांत

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भक्ति के प्रमुख संप्रदाय
2.2.1 बोध प्रश्न
2.3 भक्ति के प्रमुख सिद्धांत
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 अभ्यास प्रश्न
2.5 संदर्भ-ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित को करने में सक्षम हो सकेंगे:

- भक्ति संबंधी चिंतन परंपरा को समझ सकेंगे।
- भक्ति को प्रतिष्ठित करने में विभिन्न संप्रदायों के योगदान को जान पाएँगे।
- भक्ति की प्रतिष्ठा में भक्ति सिद्धांतों का मूल्य समझ पाएँगे।

2.1 प्रस्तावना

ऐसा माना जाता है कि भक्ति का प्रारंभ दक्षिण में हुआ और भक्ति का निरंतर प्रचार-प्रसार होता गया और भक्ति उत्तर भारत में आई। भक्ति की इस विकास यात्रा में बहुत रुकावटें आईं पर भक्ति के विभिन्न वैष्णव संप्रदाय के आचार्यों ने तथा विभिन्न सिद्धांतों की प्रतिष्ठा करने वालों आचार्यों ने भक्ति के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सामान्य जनता को अपने दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों को सरलता से समझाने का प्रयास किया। भक्ति के क्षेत्र में इन आचार्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैष्णव भक्तों ने अपने विभिन्न संप्रदायों के माध्यम से भक्ति के व्यावहारिक रूप को सामने रखा तो भक्ति के दार्शनिक आचार्यों ने अपने सिद्धांतों के माध्यम से ईश्वर, जीव, जगत्,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

माया और मोक्ष जैसे सिद्धांतों को भक्तों के दार्शनिक सामने रख कर भक्ति के सिद्धांतों की सरल व्याख्या की।

2.2 भक्ति के प्रमुख संप्रदाय

भक्ति का जन्म दक्षिण में जाना जाता है। 'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानन्द' कथन बहुत चर्चित रहा है। दक्षिण से ही भक्ति की धारा उत्तर भारत की तरफ आई। भक्ति के सिद्धांत पक्ष को विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से प्रतिष्ठित किया है। इन आचार्यों ने ब्रह्म, जीव, जगत्, माया मोक्ष संबंधी तत्वों, विचारों को अपने-अपने संप्रदायों और सिद्धांतों के माध्यम से अपना मत प्रस्तुत किया है। भक्ति से जुड़े संप्रदायों में जहाँ भगवान कृष्ण के स्वरूप पर विचार किया गया है उनका भक्ति में क्या स्थान है, यह जाना गया है, जबकि भक्ति का सिद्धांत पक्ष प्रस्तुत करने वाले आचार्यों ने दार्शनिक चिंतन पर बल दिया, उन्होंने ईश्वर जीव माया, जगत् मोक्ष का तात्त्विक चिंतन प्रस्तुत किया है। भक्ति के प्रमुख संप्रदाय और सिद्धांत पक्ष प्रस्तुत करने वाले आचार्यों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

राधावल्लभ संप्रदाय

इसका प्रचार करने वाले हित हरिवंश हैं ये राधा कृष्ण के युगल उपासक हैं। कृष्ण की तुलना में राधा को अधिक महत्त्व दिया है। भक्त राधा के साथ कृष्ण की उपासना करते हैं। इनके अनुसार कृष्ण के अंदर ही सभी शक्तियाँ विद्यमान हैं। कृष्ण की पराप्रकृति राधा है, जो चित-अचित आल्हादिनी शक्ति है उनका मानना है कि सारा जगत् राधा-कृष्ण युगल का प्रतिबिंब है। भगवान कृष्ण का ऐसा वर्णन है कि जिसमें भगवान कृष्ण गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे राधा के पति हैं और उनके श्रृंगार की शोभा बढ़ाने वाले हैं। इस संप्रदाय के भक्तों ने राधा वल्लभ के नाम से राधा कृष्ण की उपासना की है।

निम्बार्क संप्रदाय

मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति के अंतर्गत निम्बार्क संप्रदाय की भी चर्चा होती रही है। इस संप्रदाय के अंतर्गत राधा कृष्ण के वामांग में विराजमान रहती है और भक्त भगवान के इस रूप की उपासना करते हैं। इनका मानना है कि भगवान कृष्ण भक्तों पर कृपा करने के लिए ही अवतार लेते हैं। इतना ही नहीं स्वयं शिव और परब्रह्म कृष्ण के इस रूप की वंदना करते हैं। उनके भगवान चरणों के अतिरिक्त जीवों का और कोई उद्धारक नहीं है। भक्त दैन्य भाव से भगवान की उपासना करते हैं और फिर प्रेम भक्ति के माध्यम से जीवन को अमरत्व प्रदान करते हैं।

© DDCE, COL,SOE, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सखी संप्रदाय

इस संप्रदाय को चलाने वाले स्वामी हरिदास जी हैं। इन्होंने भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। इन भक्तों के अनुसार भगवान कृष्ण सबसे ऊपर हैं। इन भक्तों के भगवान कृष्ण अन्य अवतारों से एकदम भिन्न हैं। ये भगवान कृष्ण अन्य अवतारों की तरह न तो सृष्टि की रचना में संलग्न रहते हैं और न ही ये दुष्टों का दलन कर सामान्य जन की रक्षा करते हैं। इन भक्तों का मानना है कि भगवान कृष्ण जो परब्रह्म हैं उनका लघु अंश सृष्टि की रचना और सृष्टि की रक्षा तथा संहारक का कार्य करता है। ये भगवान तो अपनी श्रृंगारिक लीलाओं में रत रहते हैं। नित्य बिहार करते हुए श्रृंगार लीलाएँ करना इनका काम है और उन लीलाओं का दर्शन करना सखी का अभीष्ट है।

गौणीय संप्रदाय

गौणीय संप्रदाय को चलाने वाले स्वामी चैतन्य महाप्रभु हैं। इनका चर्चित ग्रंथ चैतन्य चरितामृत है। इस ग्रंथ में इन्होंने राधा-कृष्ण के स्वरूप तथा शक्तियों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। श्रीकृष्ण अनंत शक्तियों के स्वामी हैं। उनमें एक विशिष्ट शक्ति आल्हादिनी शक्ति हैं। राधा इसी शक्ति का रूप है। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण को ब्रजेन्द्रकुमार कहा है। जब वे ब्रज में गोलोक की लीलाओं सहित विचरण करते हैं तो उनका परमतत्व रूप विद्यमान रहता है। वे ब्रज के कृष्ण और गोलोकधाम के कृष्ण में अभिन्नता मानते हैं। राधा कृष्ण की इन लीलाओं में उनका माधुर्य भाव अथवा कांता भाव ही परिलक्षित होता है।

वल्लभ संप्रदाय

वल्लभ संप्रदाय को चलाने वाले स्वामी वल्लभाचार्य हैं। वल्लभाचार्य ने ब्रज में कृष्ण भक्ति की प्रतिष्ठा की थी। वल्लभाचार्य के वल्लभ संप्रदाय के अंतर्गत भगवान की सेवा विधि का बड़ा महत्त्व है। इस भक्ति के अंतर्गत अष्टयाम की सेवा पर बल दिया जाता है। इस सेवा-विधि के अंतर्गत मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती और 'शयन' आदि विधियों को इस संप्रदाय में बड़े उत्सव के साथ किया जाता है। वल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं, परब्रह्म हैं। वे सचिदानंद हैं। वे सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा आनंद प्रदायिनी शक्तियों के केंद्र हैं। नित्य लीला ही उनका प्रयोजन है।

इस तरह भक्ति के क्षेत्र में भक्ति के सिद्धांत निरुपण में उसके सिद्धान्तों का योगदान रहा तो भक्ति के विभिन्न संप्रदाय में उसका व्यावहारिक रूप सामने आया। इन्होंने भगवान के स्वरूप को स्पष्ट कर सामने रखा।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.2.1 बोध प्रश्न

1. भक्ति के प्रमुख संप्रदायों के नाम बताइए।
2. राधावल्लभ संप्रदाय को चलाने वाले आचार्य कौन थे?
3. चैतन्य महाप्रभु ने कौन-सा संप्रदाय प्रतिष्ठित किया?
4. निम्बार्क संप्रदाय को चलाने वाले आचार्य का नाम बताइए।

2.3 भक्ति के प्रमुख दार्शनिक एवं उनके सिद्धांत

शंकराचार्य

शंकराचार्य का जन्म दक्षिण में, मलाबार प्रदेश में, मलाबार नदी के किनारे कलाद्रि (कालड़ी) नामक स्थान पर हुआ था। वे नम्बूद्री ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम आर्याम्बा था। दर्शन के क्षेत्र में उनका बहुत प्रभाव था। उन्होंने अनेक स्थानों पर मठों की स्थापना की। उन्होंने स्त्रियों को छोड़कर सभी को संन्यास की दीक्षा दी। जाति-पाति की प्रथा में उनका विश्वास नहीं था। उनका सिद्धांत अद्वैतवाद है। वे ब्रह्म और जीव को एक मानते थे।

शंकराचार्य गौऽपादाचार्य के शिष्य गोविन्दाचार्य के शिष्य थे। उनके पहले और उनके पश्चात् उनके गुरू, शिष्यों के प्रसिद्ध नाम 'मंत्रपुष्पांजलि' में 'शिवमहिमस्तोत्र' के अन्दर दिये गये हैं अद्वैत का तात्पर्य है जिसमें द्वैत न हो-"नास्ति द्वैत भेदा यत्र तद् अद्वैतम्" अर्थात् जिस सिद्धांत में जीव और ब्रह्म में भेद न हो वह अद्वैत है। इस सिद्धांत की बड़ी प्रसिद्धि हुई। पश्चिम के विद्वानों ने भी इसे सराहा है। वैष्णव पद्धति में कोई ऐसा आचार्य नहीं है, जिसने शंकर के अद्वैत को सामने न रखा हो। यह दूसरी बात है कि किसी ने उसे अंशत: माना, किसी ने न माना, परन्तु उनके सामने अद्वैत सिद्धांत रहा।

इसी तरह उपनिषदों में भी ऐसे अनेक वाक्य-वचन हैं जो अद्वैत समर्थक हैं- "एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढसर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा" अर्थात् एक ही ईश्वर सब भूतों में छिपा हुआ है वह सर्वत्र व्याप्त और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है। इसी तरह ईशावास्य मिदं सर्वम्' (यह सारा संसार एक मात्र ईश्वर से व्याप्त है) ऐसे अनेक अद्वैतपरक वाक्यों से श्रुति वांङमय व्याप्त है। आचार्यों ने माना है कि मांडूक्य उपनिषद तो जगद्गुरू शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत का पूर्णतः पर्यायवाची ही समझना चाहिए।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आचार्य शंकर ने 32 वर्ष की अल्पायु में ही लगभग 272 ग्रंथों की रचना की उनमें ब्रह्मसूत्र का भाष्य अधिक प्रमुख और प्रसिद्ध है। उनके सिद्धांतों का विपुल विस्तार है, परन्तु उनका कुछ संक्षेप सार ध्यान देने योग्य है।

ब्रह्म

शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म की सर्वोच्च सत्ता है। यह देशकाल से विलक्षण है। बोधायन ने प्रथम शताब्दी में और भर्तृहरि ने सातवीं शताब्दी में ब्रह्मविषयक जैसे विचारसूत्र दिये थे। भर्तृहरि का ब्रह्म को दिक् काल आदि से असम्बद्ध, अनंत, चिन्मात्र और स्वानुभूतिगम्य कहना अद्वैत ही है। शंकराचार्य ने जड़-चेतन सबका अन्तर्भाव ब्रह्म में ही माना है। ब्रह्य सूक्ष्म है और दृष्टान्त द्वारा सिद्ध होने वाला नहीं है। वह चित् स्वरूप है। एक, अद्वितीय और सत् है। शंकराचार्य ने दर्शन के सिद्धांत अद्वैतवाद के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, माया के विषय में अपने सिद्धांत को इस प्रकार समझाया है–

जीव

ब्रह्म में माया की शक्ति होती है उसके कारण उसे ईश्वर कहते हैं। जीव अविद्या के कारण जीव कहलाता है। शंकराचार्य मानते हैं कि जब तक बुद्धि आदि उपाधि के साथ जीव का सम्बन्ध है तब तक वह जीव भी है और संसारी भी। परमात्मा आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक है, आत्मा उसी का छोटा रूप है। जब आत्मा शरीरबद्ध होता है तो जीव कहलाता है। सामान्यत: आत्मा और जीव दोनों को एक ही कहा गया है। वस्तुतः शरीरादि उपाधियुक्त आत्मा जीव है और वह आत्म, प्राण, मन, विज्ञान, आनंद-इन पाँच कोशों से ढका है। आत्मा और ब्रह्म एक हैं। जीव में परिमाण नहीं है। वह ईश्वर का अंश ही है। ईश्वर मायाशक्ति सम्पन्न है और जीव अविद्या उपाधि से युक्त। ईश्वर का अंश कहलाते हुए भी वह मुख्य अंश नहीं है-'अंश इव अंशन' अग्नि के स्फुलिंग की तरह का अंश है। जीव में जो सुखदुखादि होते हैं, वे मिथ्या हैं। वे पारमार्थिक नहीं हैं। पारमार्थिक तो ब्रह्म ही है। जीव और आत्मा के एक होते हुए भी जीव को आत्मरुपता का बोध नहीं होता क्योंकि वह अविद्या आदि उपाधियों से युक्त रहता है। अविद्या के समाप्त होते ही वह आत्म रूप हो जाता है। वही ब्रह्मात्मकता है।

माया

अविद्या को ही माया कहा गया है। शंकराचार्य ने माया को इन्द्रजाल कहा है। जैसे इन्द्रजाल की सत्ता देखने वालों के लिए है, वस्तुत: है नहीं। ऐसे ही इस नाम-रूप वाले संसार की सत्ता अज्ञानियों के लिए है, परमात्मा के लिए नहीं है। अद्वैत सिद्धांत के अनुसार सत्य ही ब्रह्म है, जगत् माया है। वैसे

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

संसार की व्यावहारिक सत्ता है जो अज्ञान के कारण ही वास्तविक दिखती है। वेदान्त की शब्दावली में इस अविद्या को 'अध्यास' कहा गया है। जैसे शुक्ति में रजत न होकर रजत जैसा लगता है, वह रजत का अध्यास है। ब्रह्मसूत्र में इसे 'स्मृति रूप परत्र पूर्व द्रष्टावभास' कहा है। अर्थात् स्मृति रूप पूर्व दृष्ट का जो दूसरे में अवभास है, वही अध्यास है। इसी को दूसरी तरह समझाते हुए कहा है - "अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद् बुद्धि" अर्थात् अध्यास का अर्थ है–जो जैसा नहीं है उसमें वैसी बुद्धि होना।

शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत का भक्तिकाल के कवियों पर किसी न किसी रूप में प्रभाव देखा जाता है। तुलसीदास ने समन्वयात्मक दृष्टि अपनाई है पर अद्वैत का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। ब्रह्म को नेति नेति कहना उसी का रूप है। सारे संसार को माया के वशीभूत बताना भी उसी का रूप है-

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिल ब्रह्मादिदेवासुराः
नाममा म यत्सत्त्वादमृषव भाति सकल रज्जोर्यथाऽहेभ्रमः।।

अर्थात् जिसकी माया के वश में अखिल विश्व है, ब्रह्मादि, देव और असुर उसी के वशीभूत हैं। जिसकी सत्ता से जगत् असत् होते हुए भी सत् लगता है, जैसे-रस्सी में सर्प का भ्रम बना रहता है उसी प्रकार जगत में सत का भ्रम बना रहता है।

सूरदास ने अपने सूरसागर में यद्यपि सब प्रकार से अव्यक्त को अगम बताकर सगुण लीला के पदगान का कथन किया है,परन्तु चिन्तन करते हुए वे भी अद्वैतसमर्थित उक्तियाँ करने लगते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

चलि सखि तेहि सरोवर जाँहि।
जिहिं सरोवर कमल कमला रवि बिना विकंसाहिं।
हंस उज्ज्वल पंख निर्मल अंग मल मल न्हाहिं।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिं।
देखि नार जु छिलाछला जग समुझि कछु मन माहिं।
सूर क्या नाह चल अड़ तहु बहुार अड़बा नाहि।

(सूरसागर)

एक हंसिनी दूसरी हंसिनी से कहती है या आत्मा दूसरी आत्मा से सखि सम्बोधन करती हुई कहती है कि हे सखि! उस सरोवर पर चलें, जहाँ पर कमल-कमलिनी बिना-सूर्य के ही विकसित होते हैं। वहाँ पर हंस की तरह अपने उज्ज्वल पंखों को नहा-धोकर निखारें। संसार का जल तो बहुत

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

छिछला यानी कम गहरा है। इस संबंध में सूर कहते हैं- कि वहाँ उड़ चलें जहाँ से फिर उड़ना ही न पड़े। यह एकदम अद्वैतपरक भाव है।

सारांश यह है कि शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत व्यापक और निर्गुणपरक है। उसे भक्तों ने भी तत्त्वचिन्तन की दृष्टि से अपनाया है। परन्तु जब भक्त उपासना की ओर बढ़ता है तो वह भावुकता में सगुण को ही आत्मसात करता है। स्वयं शंकराचार्य ने चर्पटमंजरी में 'भज गोविंदं भज गोविंदं गोविंदं भज मूढ़मते' कह कर अपने भक्तिभाव प्रकट किये हैं। इसी तरह आध्यात्मिक उच्च भूमि से उतर कर देवी अपराध क्षमा स्तोत्र में एक बालक की तरह 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' गाने लगते हैं। भाव के साथ सम्बन्ध होता है तो निर्गुणता को छोड़कर शंकराचार्य भावुक भक्त की तरह भगवान का गान करते हैं। अच्युताष्टक का आरंभ का श्लोक इसका प्रमाण है-

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माध्वं गोपिकावल्लभं जानकी नायक रामचन्द्रं भजे।।

रामानुजाचार्य

रामानुजाचार्य का जन्म दक्षिण भारत में भूतपुरी (वर्तमान पेरुम्बुपुरम्) में हुआ था। इनके पिता का नाम केशव और माता का नाम कांतिमती था। ये नाथ मुनि के पौत्र यमुनाचार्य के शिष्य थे। नाथ मुनि ने दक्षिण के वैष्णव आलवार भक्तों के गीतों का संकलन करके 'प्रबन्धम्' नामक ग्रंथ रचा था। उस समय प्रसिद्ध 12 आलवार वैष्णव भक्तों में एक स्त्रीभक्त आंडाल नामक भी थी। ये वैष्णव भक्त थे। कुछ शैव भक्त भी थे। उनमें शिवभक्त कवयित्री कारेक्काल अम्पैयार बहुत प्रसिद्ध थी। जिस प्रकार दक्षिण से उत्तर की ओर भक्ति का प्रचार बढ़ा, उस तरह दर्शन का भी। शंकराचार्य ने अद्वैत की प्रतिष्ठा की, परन्तु उसमें भक्ति कम थी, रामानुजाचार्य ने इस कमी को पूरा किया। नाथ मुनि और यमुनाचार्य के मत को इन्होंने आगे बढ़ाया। उत्तर भारत की ओर भक्ति को बढ़ाने में रामानुजाचार्य का बड़ा महत्त्व है। इन्होंने दीर्घकाल तक प्रचार-प्रसार किया। इनका शरीर 120 वर्ष की आयु में शान्त हुआ (1017 से 1137 ई०)। इन्होंने श्रीणम में अपने सम्प्रदाय की स्थापना की और अनेक विरोध सहने के बावजूद उन्होंने अपने सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

रामानुजाचार्य ने प्रस्थानत्रयी-उपनिषद्,ब्रह्मसूत्र और गीता पर भाष्य लिखे। वेदान्तसार, वेदार्थ संग्रह, वेदान्त दीपिका आदि और भी अनेक ग्रंथों की रचना की। इन्होंने शंकर के मायावाद और जगन्मिथ्या के सिद्धांत का विरोध किया। शंकराचार्य जगत् को असत् मानते थे, पर रामानुजाचार्य जगत् को सत् मानते थे। ये मानते थे कि जीव यानी चित् और जगत् यानी अचित् ये दोनों ईश्वर के शरीर हैं। ईश्वर इन दोनों से विशिष्ट है, इसलिए ब्रह्म को चिद्-अचिद् यानी चिदचिद् से विशिष्ट -

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

चिदचिद्विशिष्ट कहते हैं। इनका सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है। शंकराचार्य ने संन्यास पर बल दिया, पर इन्होंने भक्ति पर बल दिया। ये गृहस्थ थे, पर बाद में संन्यासी हो गये थे।

इन्होंने उपासना और ध्यान के लिए ब्रह्म के पाँच रूप माने हैं -

1. **परब्रह्म** : वैकुंठवासी, शंखचक्रगदापद्मधारी, श्री, भू आदि पत्नियाँ हैं।
2. **व्यूह** : वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध - चार रूपों में ब्रह्म के स्वरूप हैं।
3. **विभव** : मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतारों का स्वरूप।
4. **अन्तर्यामी** : योगियों के हृदय में रहने वाले।
5. **अर्चा**: अनेक मूर्तियों के रूप में साधना करने योग्य।

रामानुज के सम्प्रदाय में श्रीविशिष्ट यानी लक्ष्मी विशिष्ट ब्रह्म की उपासना है, इसलिए यह सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय भी कहलाता है। इनका सिद्धांत पांचरात्र सम्प्रदाय से मिलता जुलता है। ये पाँच रात्रों की तरह ही पूजन करते हैं। 'पुरुष सूक्तं' से स्तुति करते हैं। त्रिकाल संध्या, आरती, भोग, शयन आदि के इनके यहाँ विधान हैं परन्तु पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना की तरह आठों याम की पूजा का क्रम-पालन इनमें नहीं है।

रामानुजाचार्य का ब्रह्म विषयक सिद्धांत यह है कि चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही ईश्वर है। ब्रह्म अंशी, जीव तथा जगत् अंश हैं। ब्रह्म आत्मा है, जीव, जगत् देह हैं। जीव और जगत् ब्रह्म के अन्तर्गत और आश्रित रूप से सत्य हैं, ब्रह्म ये बहिर्भूत अथवा स्वतंत्र रूप से नहीं। तुलसी ने इसी तरह के भाव व्यक्त किये हैं–

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयउ गोसाई।
बंध्यो कीर मर्कट की नाई।। (रा०7/116/23)

श्री रामानुज के सिद्धांत में ब्रह्म प्रलयावस्था में एवं सृष्टिकाल में भी चित् एवं अचित् से विशिष्ट रहता है। वे यह भी मानते हैं कि चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है।

वेदांत में दो कारण बतलाये गये हैं-एक निमित्त कारण और दूसरा उपादान कारण। घड़ा बनाना है तो उसके लिए कुम्हार की जरूरत है। वह दंड-चक्र से घड़ा बनायेगा, तो ऐसे में कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है। कार्य के हो जाने पर निमित्त कारण की कोई जरूरत नहीं रहती। घड़ा बन गया, तब कुम्हार कहीं भी जाय। पर उपादान कारण वह होता है, जिस चीज से कुछ बनता है। घड़ा बनाने में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मिट्टी उपादान कारण है। यदि उपादान कारण न हो यानी मिट्ठी न हो तो चाहे सैंकड़ों कुम्हार आ जायें, वे घड़ा नहीं बना सकते। उपादान कारण कार्य के नष्ट होने पर भी रहता है। घड़ा फूट जाय, तब भी मिट्ठी रहेगी। ऐसे ही ब्रह्म जगत् का उपादान कारण कहा गया है। वह सृष्टि के आदि में, मध्य में और अंत में रहता है।

वेदांत के प्रसिद्ध श्रीभाष्य में रामानुजाचार्य ने जगत् को ब्रह्म का निमित्त कारण मानने के साथ उपादान कारण भी माना है। वे कहते हैं-स्थूल सूक्ष्म चिद् अचिद् प्रकारकं ब्रह्मैव कारणं चेति ब्रह्मोपादानं जगत्।'

रामानुजाचार्य ब्रह्म को सगुण मानते हैं। उसी में सब श्रुतियों का समन्वय करते हैं। शंकराचार्य ने श्रुति का समन्वय निर्गुण में किया है। रामानुज के मत में मुक्ति में भी ब्रह्म का भेद बना रहता है। तभी तो कहा गया है - सगुण उपासक मोक्ष न लेही। यह सिद्धांत सगुण ब्रह्म का उपासक है। इसमें ईश्वर तत्व वैकुंठवासी शंखचक्रगदापद्मधारी महालक्ष्मी के स्वामी सर्वज्ञ समर्थ सम्पन श्रीमन्नारायण है।

मध्वाचार्य

मध्वाचार्य का जन्म बेलिग्राम में एक वेदविद् ब्राह्यण के घर हुआ। कुछ लोग राग पीठ नामक नगर में इनका जन्म मानते हैं। इनके पिता का नाम मधिजी भट्ट तथा माता का नाम वेदवती था। इनका बचपन का नाम वासुदेव था। ये बहुत कुशाग्र बुद्धि थे, पर पढ़ने में इनका मन नहीं लगता था। 11 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अद्वैत मत के संन्यासी अच्युत प्रेक्षाचार्य से संन्यास की दीक्षा ले ली। इनका दीक्षा नाम पूर्णप्रज्ञ था। इनका संन्यास के बाद का नाम आनन्द तीर्थ होने का भी उल्लेख है। जब गुरु ने इनको आनन्द तीर्थ नाम दिया, तब इन्हें मठाधीश बना दिया। अनेक वर्षों तक प्रार्थना, उपासना, स्वाध्याय और समाधि में लगे रहे। इन्हें आनन्द ज्ञान, ज्ञानानन्द और आनन्दगिरि आदि नामों से भी जाना जाता है। इन्होंने गीता और वेदान्त पर भाष्य लिखा। उपनिषदों पर भी भाष्य लिखा। महाभारत के सार के रूप में इन्होंने 'भारततात्पर्य निर्णय' नामक कृति भी रची। विद्वान लोग मानते हैं कि प्रस्थानत्रयी की अपेक्षा इन्होंने पुराणों की बातों को ज्यादा महत्त्व दिया। मध्वाचार्य ने 37 ग्रंथ लिखे। 'माधव विजय' नामक ग्रंथ में इनका जीवन चरित लिखा है।

मध्वाचार्य ने द्वैत सम्प्रदाय की स्थापना की। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों का विरोध किया। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन्होंने वैशेषिक शास्त्र को आधार बनाया है। इन्होंने ब्रह्म के आठ कार्य माने हैं-उत्पत्ति, पालन, लय, नियन्त्रण, आवरण, बोधन, बन्धन और मोक्ष। जीव अनंत है। उनके तीन वर्ग हैं-मुक्तियोग्य, नित्य संसारी और तमोयोग्य। मुक्त होने पर भी जीव ब्रह्म में तथा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL SOL, University of Delhi

जीव जीव में पार्थक्य यानी द्वैत बना रहता है। जीवात्मा विष्णु का निरूपाधिक प्रतिबिम्ब है। परमेश्वर के दो अंश हैं- प्रतिबिबांश तथा स्वरूपांश। जीवात्मा हरि का नित्य अनुचर है। जीव स्वल्प आनंद विग्रह है और परमात्मा पूर्ण आनंदात्मक। विष्णु को जगत् का निमित्त कारण माना है, उपादान कारण नहीं। जगत् अनित्य है, पर असत्य नहीं है। जीव तथा जगत् भगवान के अधीन हैं। भगवान जीव और जगत् से पूर्णतया पृथक है। मध्वाचार्य ने पाँच प्रकार के भेद स्वीकार किये हैं - 1. जीव ईश्वर का भेद, 2. जीव-जीव में परस्पर भेद, 3. ईश्वर जड़ में भेद, 4. जीव जड़ में भेद, 5. जड़-जड़ में भेद।'

1. जीवेशयोर्भिदा चैव जीवभेद परस्परम्।
2. जडेशयोजडानां च जलजीवभिदा तथा।। (महाभारत तात्पर्य निर्णय, 1/70/71)

मुक्ति को इन्होंने चार प्रकार की माना है-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य! इनके मत में बालकृष्ण और गोपियों के नाम नहीं लेते। इन्होंने साधना के ढंग तीन बतलाये हैं -

अंकन : शंख चक्र आदि चित्र शरीर पर बनाना।

काममा नामकरण : विष्णु के नाम पर अपने पुत्र पौत्रादि के नाम रखना।

भजन : धार्मिक, मानसिक, वाचिक भजन।

मध्व के मत में जीव परमात्मा से भिन्न है तथा परतन्त्र है और अणु परिमाण वाला है। परमात्मा की सेवा करने से, उसकी कृपा से जीव मुक्त होता है।

निम्बार्काचार्य

ये तैलंग जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म वैल्लरी जिले के निम्ब या निम्बपुर में हुआ था। इनके जन्म के बारे में ठीक-ठीक पता नहीं है। विद्वान् लोग इन्हें रामानुजाचार्य के बाद और मध्वाचार्य से पहले का बताते हैं। यह भी माना जाता है कि ये दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर वैदूर्यपत्तन के पास अरुणाश्रम में श्री अरुणमुनि की पत्नी वैजयन्ती देवी के पुत्र थे। इनका नाम पहले भास्कराचार्य था। कोई इन्हें सुदर्शन का अवतार बतलाते हैं। इनके सम्बन्ध में एक जनश्रुति है। ये वृन्दावन के पास रहते थे। एक बार कोई अतिथि इनके पास आये। तत्त्व-चिन्तन की बात करते करते सूर्यास्त हो चला। भास्कराचार्य ने अतिथि को भोजन कराना चाहा पर अतिथि ने सूर्यास्त के बाद भोजन करना स्वीकार नहीं किया। इन्होंने अपनी योगशक्ति से सूर्य की गति रोक दी और सूर्य एक समीप के नीम के पेड़ पर स्थित हो गये। अतिथि ने सूर्यास्त न होता देखकर भोजन कर लिया। तब सूर्य अस्त को गये। तभी से भास्कराचार्य की बजाय ये निम्बार्काचार्य अथवा निम्बादित्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये। कोई कोई इनका नाम नियमानंद भी बतलाते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

निम्बार्काचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर 'वेदान्तपारिजातसौरभं' नाम का भाष्य लिखा है। इनके मत को 'द्वैताद्वैत' कहा गया है। उसे भेदाभेद भी कहते हैं। भेदाभेद वाले एक अन्य आचार्य भास्कराचार्य भी हुए हैं। कुछ लोग दोनों को एक मानते हैं।

निम्बार्क दक्षिण के थे पर वृन्दावन में ही रहे। ये प्रथम आचार्य थे, जिन्होंने उत्तर भारत में राधाकृष्ण की भक्ति को आगे बढ़ाया। इनके अनुयायी बंगाल में और ब्रज में हैं। इस सम्प्रदाय के लोग गृहस्थ भी होते हैं और संन्यासी भी।

द्वैताद्वैत सिद्धांत के अनुसार द्वैत भी सत्य है और अद्वैत भी सत्य है। उपनिषदों में आया है कि नारद ने सनत्कुमार से ब्रह्म विद्या सीखी। नारद ने निम्बार्क को उपदेश दिया। निम्बार्क ने अपने भाष्य में सनत्कुमार और नारद का उल्लेख किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय को सनकादि सम्प्रदाय भी सनत्कुमार के उपदेश के कारण कहा जाता है। इसे ऋषि सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय की यह विशेषता है कि इसके अनुयायी आचार्यों के मतों का खंडन नहीं करते। निम्बार्क सम्प्रदाय की गद्दी मथुरा के पास यमुना के समीप के क्षेत्र में है। इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की पूजा होती है। साधक गोपीचंदन का तिलक लगाते हैं। भागवत पुराण इस सिद्धांत के मानने वालों का प्रमुख ग्रन्थ है। ईश्वर और जीव दोनों ही इनकी दृष्टि में आत्मचेतन हैं। जीव परिमित शक्ति का और ईश्वर अपरिमित शक्ति वाला है। जीव भोक्ता है। वह संसार को भोगता है। ईश्वर उसका सबसे ऊँचा नियन्ता है। जीव और जगत् ब्रह्म के अंश मात्र है। अंश का अंशी के साथ भेदाभेद यानी द्वैताद्वैत सम्बन्ध है, वैसा ही जगत् और जीव के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध है। अंश में अंशी की सत्ता है। वह उसका अंगीभूत होने से अभिन्न है,पर अंश में अंशी की सत्ता पर्याप्त नहीं होने से वह भिन्न भी है। अत: दोनों का सम्बन्ध हैं: अंशाशि-सम्बन्ध है अथवा द्वैताद्वैत सम्बन्ध है। सब का तात्पर्य एक है। ब्रह्म कारण है और जीव तथा जगत उसके कार्य। ब्रह्म समग्र है और जीव तथा जगत उसके धमर्गत भेद हैं। यानी भेद भी है और नहीं जैसे हैं, द्वैत भी हैं और नहीं भी हैं। अत: इनका सिद्धांत भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत कहलाता है।

वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य का जन्म दक्षिण में गोदावरी नदी के किनारे बसे काकरवाड़ ग्राम में हुआ था। इनका परिवार तेलुगु ब्राह्मण था। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट और माता का नाम इल्लमागारू था। वल्लभ दिग्विजय नामक ग्रंथ में इनके पूरे जीवनचरित का वर्णन है। इन्होंने 10 वर्षों की अल्प-आयु में ही वेद, पुराण, उपनिषदों का अध्ययन कर लिया था। इन्होंने उत्तर भारत की अनेक यात्राएँ कीं। गोकुल, गोवर्धन, आदि की यात्रा करके इन्होंने श्रीनाथ के मंदिर की स्थापना की। इनका विवाह महालक्ष्मी नामक कन्या से हुआ। इनके यशस्वी पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ थे। वल्लभाचार्य विष्णु स्वामी नामक आचार्य की परम्परा में आते हैं। उन्होंने 'रुद्र सम्प्रदाय' चलाया, जिसे शुद्धाद्वैत कहा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© IDCE, COL, SOL, University of Delhi

जाता है। कहते हैं वल्लभचार्य तक आते आते इस सम्प्रदाय के 700 आचार्य हो चुके थे। वल्लभ सम्प्रदाय में विष्णु स्वामी को ही इस परम्परा का आदि आचार्य माना गया है।

वल्लभाचार्य ने वेदान्त पर 'अणु भाष्य' लिखा। भागवत की सुबोधनी टीका लिखी और कुल मिलाकर लगभग 84 ग्रंथ लिखे। वे वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता और भागवत् को प्रामाणिक मानते थे। इनका मत शुद्धाद्वैत अथवा विशुद्धाद्वैत कहलाता है। इनके सम्प्रदाय को ब्रह्मवादी और अविकृत परिणामवादी भी कहते हैं। इनका दर्शन शुद्धाद्वैत है,परन्तु उसका आचरण पक्ष पुष्टिमार्गीय भक्ति है। निम्बार्क के बाद वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभक्ति का बहुत प्रचार किया है। कृष्ण की लीलाएँ इनकी दृष्टि में अलौकिक हैं। राधाकृष्ण की लीलाएँ नित्य होती हैं। वृन्दावन में होती हैं और वह गोलोक कहलाता है। अधिकारी ही उन लीलाओं का दर्शन कर सकते हैं।

शुद्धाद्वैत शब्द दो शब्दों का योग है - शुद्ध और अद्वैत। शुद्धाद्वैत का मतलब है माया - सम्बन्ध से रहित ब्रह्म। 'शुद्धाद्वैत मार्तण्ड' नामक ग्रंथ में शुद्धाद्वैत का लक्षण इस प्रकार बतलाया है -

मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।

अर्थात् माया सम्बन्ध से रहित ब्रह्म शुद्ध है। इसी के अनुसार इनके सिद्धांत को शुद्धाद्वैत कहा गया है। इन्होंने जगत् को ब्रह्म का ही परिणाम माना है जो विकाररहित है। इसलिए इस मत को अविकृत परिणामवाद कहा गया है।

श्री वल्लभाचार्य का मत शंकराचार्य और रामानुजाचार्य से भिन्न है। ब्रह्म को उन्होंने विरुद्ध धर्मो का आश्रय कहा है। ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव होता है और उसी में तिरोभाव हो जाता है। वह परमेश्वर रस रूप है। 'रसो वै सः' की तरह वल्लभ उसे मानते हैं। वह रसरूप ब्रह्म छह धर्मों से युक्त है - 1. ऐश्वर्य, 2. बल (वीर्य), 3. यश, 4. श्री, 5. ज्ञान और 6. वैराग्य। ब्रह्म ही धर्म - संस्थापन : के लिए अवतार लेते हैं। भागवत पुराण को इन्होंने बहुत महत्त्व दिया है। ब्रह्म का निरूपण अनेक रूपों में भागवतकार की तरह का है।

जीव को उन्होंने अणु और सेवक माना है। जगत् सत्य है। ब्रह्म निर्गुण निर्विशेष है और वही जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। गोलोक के अधिपति श्रीकृष्ण हैं और वे ही ब्रह्म हैं। वे ही जीव के सेव्य हैं। सेवा को दो तरह की माना है - मानसी सेवा, जिसे फलरूपा भी कहते हैं। उसमें श्रीकृष्ण का चित्र लगाये रहने की विधि है। दूसरी सेवा साधनरूपा है। इसमें द्रव्य - अर्पण करना और शरीर से सेवा करना आता है। भगवत् कृपा से गोलोक वृन्दावन में रासोत्सव में रसावेश की अनुभूति करना ही जीव का चरम लक्ष्य है, वही मोक्ष है।

बल्लभ मत में ईश्वर के वश में माया है। वे मायाधीश है। जो माया के द्वारा प्रताड़ित हैं, वे जीव हैं। यानी जीव मायाग्रस्त है, इसलिए वह चेतन होकर भी दुख का आधार है। वल्लभाचार्य के मत में जीव के पाँच क्लेश हैं-1. उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हैं, 2. उसे अपने बारे में अन्यथा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

ज्ञान है, 3. आत्मा से भिन्न वह देह आदि में मैं, पर बुद्धि रखता है, 4. भेदबुद्धि से भय उसे रहता है, 5. शोक उसका एक और क्लेश है। जगत् को उन्होंने अविकृत परिणामी माना है। यानी जगत् रूप बदल कर फिर ब्रह्म में ही मिल जायेगा। अविद्या के कारण ब्रह्म से जगत् बना। स्वर्णकुण्डल की तरह जगत् है। अहंता ममता को रखना ही संसार है। वृन्दावन बिहारी भगवान कृष्ण की आठों याम की सेवा पुष्टिमार्गीय भक्ति कहलाती है। वल्लभ दर्शन के अनुसार सूरदास आदि अष्टछाप के पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित भक्त-कवि उसी परम्परा का पालन करने वाले हैं। भगवान की लीला का गान करने वाले हैं। सूरदास ने इस सम्बन्ध में वल्लभाचार्य का आभार स्वीकार करते हुए कहा है–

श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो। लीला भेद बतायो।।

इस तरह से हम समझ सकते हैं कि भक्ति के संप्रदाय आचार्यों ने भगवान कृष्ण के व्यावहारिक स्वरूप का वर्णन किया जबकि भक्ति के सिद्धांत के आचार्यों ने भक्ति के दार्शनिक स्वरूप को व्यक्त किया है। भक्ति को संपूर्णता में जानने के लिए इन दोनों रूपों को जानना आवश्यक है।

2.3.1 बोध प्रश्न

1. आचार्य शंकर के गुरु का नाम बताइए।
2. आचार्य रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत का नाम क्या है?
3. द्वैत सिद्धांत की स्थापना किस आचार्य ने की है?
4. वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांत का नाम बताइए।

2.4 अभ्यास प्रश्न

(1) भक्ति के विभिन्न संप्रदायों पर विचार कीजिए।

(2) भक्ति के क्षेत्र में आचार्य शंकराचार्य के दार्शनिक सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

2.5 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का इतिहास* - संपा. डॉ. नगेंद्र
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - डॉ. श्रीनिवास शर्मा
3. '*हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास*' - संपा. डॉ. भागीरथ मिश्र

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. भारत की साँस्कृतिक एकता और भक्ति

डॉ. वंदना
सहायक प्रवक्ता (तदर्थ), हिंदी विभाग
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.1.1 बोध प्रश्न
3.2 भारतीय संस्कृति की संकल्पना
3.2.1 बोध प्रश्न
3.3 भारतीय संस्कृति का इतिहास एवं अनेकता का विस्तार
3.3.1 बोध प्रश्न
3.4 भारत में धार्मिक विविधता
3.4.1 बोध प्रश्न
3.5 एकता का इतिहास एवं परंपरा
3.5.1 बोध प्रश्न
3.6 भक्ति का स्वरूप एवं अवधारणा
3.6.1 बोध प्रश्न
3.7 भारतीय भक्ति काल का उदय, भारतीय भक्ति आंदोलन का स्वरूप एवं विशेषताएँ
3.7.1 बोध प्रश्न
3.8 साहित्य, भारतीय साँस्कृतिक एकता और भक्ति मूल्य
3.8.1 बोध प्रश्न
3.9 सामाजिक जड़ता को तोड़ते हुए भक्ति का प्रतिरोधी स्वरूप एवं चेतना
3.9.1 बोध प्रश्न
3.10 भारतीय साँस्कृतिक एकता के स्वरूप पर भक्ति का प्रभाव

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3.10.1 बोध प्रश्न
3.11 निष्कर्ष
3.12 अभ्यास प्रश्न
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को करने में सक्षम हो पायेंगे –

- अनेकता में एकता के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- समाज, धर्म, भाषा, संस्कृति और समुदाय की विविधता के बावजूद भारत को एक संगठित राष्ट्र बनाने वाले तत्त्वों को जान सकेंगे।
- भारत की सांस्कृतिक एकता में भक्ति की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के अखिल भारतीय साँस्कृतिक स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारतीय भक्ति आंदोलन की जड़ें भारतीय समाज और संस्कृति में बहुत गहरे पैठी हैं। यह जड़ें लोकमानस और उसकी संवेदना के साथ गहराई से जुड़ी हैं। मध्यकाल में भक्ति संपूर्ण भारतीय समाज को साँस्कृतिक रूप से एकता के सूत्र में बाँधती है। समाज के सभी वर्ग और ईश्वर के प्रति उनके मनोभावों से भक्ति का विराट कैनवास भारतीय संस्कृति का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। भक्ति आंदोलन की यह विशिष्टता है कि अलौकिक चिंतन की धारा में लौकिक समाज और उसकी प्रतिबद्धता कहीं भी पीछे नहीं छूटती बल्कि यह सामाजिक चेतना और जागरण के स्वर के रूप में मुखरित होती है। देश की विभिन्न भौगोलिक सामाजिक, साँस्कृतिक एवं भाषिक भिन्नता के बावजूद भक्ति की प्रगतिशील चेतना जीवन मूल्यों को मानवता के धरातल पर मजबूती से स्थापित करती है। स्थानीय संस्कृतियों को आत्मसात् करते हुए जिस तरह भारतीय साहित्य में भक्ति की अवधारणा विकसित होती है, वह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। भारतीय समाज के बुनियादी लक्षणों को समझते हुए भक्ति आंदोलन की साँस्कृतिक एकता को समझना रोचक होगा। विभिन्न देशों और समाजों से आई धर्म और उपासना की अनेक पद्धतियों को मानने वालों के बीच, संबंध और उससे पड़ने वाले आपसी प्रभावों को भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में समझना महत्त्वपूर्ण होगा।

3.2 भारतीय संस्कृति की संकल्पना

भारत एक विशाल देश है। इसका भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसी के साथ यहाँ की जनसंख्या भी बहुत विशाल है। भारत की यह बहुलता उसकी भौगोलिक परिधि और संसाधनों में नहीं बल्कि उसकी संस्कृति

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

और धार्मिक प्रवृत्तियों में भी है। भारतीय संस्कृति पर बात करने से पूर्व हमें संस्कृति का अर्थ समझना होगा। संस्कृति की अवधारणा बहुत विस्तृत है। संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग में 'कृ' धातु में 'ति' प्रत्यय के योग से बना है। 'सम्+कृति' अर्थात अच्छी प्रकार से सोच समझकर किया गया कार्य। यह परिष्कृत कार्य और उत्तम स्थिति का बोध कराता है। अंग्रेजी में संस्कृति शब्द के लिए 'कल्चर' का प्रयोग किया जाता है। संस्कृति मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों तथा आचार-व्यवहार और संस्कार से जुड़ी है। इस प्रकार किसी समाज की संस्कृति से अभिप्राय उस समाज के व्यक्तियों के रहन-सहन एवं खान-पान की विधियों, व्यवहारों, मूल्यों, विश्वासों, रीति-रिवाजों, धर्म-दर्शन, भाषा-साहित्य-कला आदि के उन विशिष्ट रूपों से होता है जिसमें उनकी आस्था होती है और जिससे वे अपनी पहचान स्थापित करते हैं। संस्कृति परिवर्तनशील तथा विकासशील होती है। संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होते हैं। एक संस्कृति के भीतर रहते हुए मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। संस्कृति मनुष्य के आंतरिक विकास और उसकी उन्नति तथा इसके प्रभावस्वरूप, उसका सामाजिक व्यवहार है।

भारत की साँस्कृतिक विरासत बहुत समृद्ध और विराट है। यहाँ कई समुदाय और जीवन पद्धतियाँ हैं। भारत एक प्राचीन देश है। सिंधु घाटी सभ्यता का इतिहास बहुत पुराना है। हम जानते हैं कि मनुष्य की विकास यात्रा भी निरंतर जारी है। भारतीय सभ्यता में ज्ञान को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। वेदों, उपनिषदों और महाकाव्यों के रूप में इसका प्रारंभिक और प्राचीन रूप नज़र आता है जो आज भी विभिन्न स्तरों पर जारी है। भारतीय समाज और संस्कृति में विभिन्न धर्मों, विचारों और व्यवहारों को फलने-फूलने और विकसित होने का भरपूर अवसर मिला। इतिहास पर गौर करें तो कई धर्म बाहरी देशों से आते हैं और यहाँ के लोगों के विभिन्न मतों-विश्वासों के साथ ताल-मेल करते हुए एक ऐसा साँस्कृतिक ताना-बाना बुनते हैं जो पूर्ण रूप से भारतीय रंगों से सजा और संवरा है।

3.2.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए–

1. भारत की साँस्कृतिक विरासत बहुत समृद्ध है। (सही/गलत)
2. संस्कृत में संस्कृति शब्द के लिए 'कल्चर' का प्रयोग किया जाता है। (सही/गलत)
3. संस्कृति परिवर्तनशील तथा विकासशील होती है। (सही/गलत)
4. मनुष्य की बसावट भारत में आधुनिक काल से है। (सही/गलत)

3.3 भारतीय संस्कृति का इतिहास एवं अनेकता का विस्तार

भारतीय संस्कृति के विकास का अध्ययन बहुत विस्तृत और रोचक है। मुहम्मद इकबाल जब इन पंक्तियों को लिखते हैं तो वास्तव में वे भारत की विस्तृत और महान संस्कृति को ही बखानते हैं;

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से।
क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

जहाँ विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताएँ नष्ट हो चुकी हैं, वहाँ भारत की सभ्यता और संस्कृति हजारों वर्षों से अक्षुण्ण है। वास्तव में भारत का साँस्कृतिक इतिहास एकता और समन्वय की कहानी है। भारत में विभिन्न

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

धर्म, भाषा और संस्कृति की विविधता है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि यहाँ इतनी विविधता के बावजूद साँस्कृतिक एकता भी मौजूद है। कश्मीर से कन्याकुमारी तथा गुजरात से लेकर मिज़ोरम तक विभिन्न जाति-समुदाय मिल-जुल कर रहते हैं। इन विभिन्न स्थानों की अपनी अलग-अलग भौगोलिक विशेषता है। उसी के अनुसार उनका खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, भाषा, त्यौहार, विश्वास और परंपराएँ भी अलग-अलग हैं। साँस्कृतिक एकता का सूत्र इन्हें राष्ट्रीय एकता में बाँधे रखता है।

3.3.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. भारत की संस्कृति कैसी है?
2. भारत में किन क्षेत्रों में विविधता दिखाई देती है?
3. भारत की भौगोलिक विशेषता कैसी है?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. भारत की विस्तृत और महान संस्कृति है। (सही/गलत)
2. भारत की सभ्यता और संस्कृति कुछ वर्षों से अक्षुण्ण है। (सही/गलत)

3.4 भारत में धार्मिक विविधता

भारत में धार्मिक विविधता के नज़रिए से देखें तो भारत में आठ बड़े धार्मिक समुदाय और आदिवासी समुदायों के अपने धार्मिक विश्वास हैं। हिंदू, मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध, जैन, पारसी और यहूदी आदि प्रमुख धार्मिक समुदाय हैं। इन धार्मिक समुदायों को भी नज़दीक से देखें तो इनमें भी कई संप्रदाय मौजूद हैं। उदाहरण के लिए हिंदू धर्म में मुख्यत: वैष्णव, शैव एवं शाक्त उपासक हैं लेकिन इनके साथ ही संत संप्रदाय जैसे रविदास संप्रदाय, कबीर संप्रदाय आदि तथा विभिन्न समाज जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि हैं। मुस्लिम समाज दो प्रमुख समुदायों शिया और सुन्नी में विभाजित है। इसाई मुख्यतः कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट में। बौद्ध धर्म में हीनयान और महायान संप्रदाय हैं। जैन धर्म में दिगंबर और श्वेताम्बर समाज हैं। इन सभी संप्रदायों में मत विभिन्नता मौजूद है। ये सभी संप्रदाय और धर्म प्राय: भारत के विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं।

भारतीय संस्कृति का इतिहास देखें तो हम पाएंगे कि प्राचीन काल से लेकर अब तक एक सांझा संस्कृति का इतिहास यहाँ मौजूद रहा है। प्रत्येक काल में मिली-जुली संस्कृति के दर्शन होते हैं। प्राचीन भारत के राजनीतिक और साम्राज्य विस्तार को देखें तो तीसरी से छठी शताब्दी में दक्षिण में पाण्डय, चेर और चोल राजाओं ने मन्दिरों का निर्माण करवाया। इनसे आज भी दक्षिण भारत की एक पहचान कायम है। मध्यकाल तक आते-आते भारतीय उपमहाद्वीप विभिन्न धार्मिक विश्वासों और उनकी प्रतीक इमारतें हमारे समक्ष आती हैं। मंदिर, स्तूप आदि में इन्हें चिन्हित किया जा सकता है। इसी समय में धार्मिक आचरणों और विश्वासों में गंगा-जमुनी तहजीब के ताने-बाने को बुनते हुए भी देखा जा सकता है।

3.4.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1. भारत में कितने प्रमुख धार्मिक समुदाय हैं?
2. कुछ संत संप्रदायों का नाम लिखें।
3. बौद्ध धर्म किन समुदायों में विभक्त है?
4. मुस्लिम समाज किन समुदायों में विभक्त है?

3.5 एकता का इतिहास एवं परंपरा

आधुनिक काल तक आते-आते इस संस्कृति में विविधता के गुणों के साथ ही साथ एकता के सूत्र को भी देखा जा सकता है। आप इसे इस उदाहरण से भी समझ सकते हैं कि प्राचीन काल में मंदिरों और मूर्तियों का जो स्वरूप तथा आराधना पद्धतियाँ प्रचलित थीं, वे आज भी थोड़े बहुत बदलावों के बावजूद लगभग वैसी ही बनी हुई हैं। यह भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है कि यहाँ आचार-व्यवहार और विश्वासों की विविधता को सहेजा गया है तो वहीं इनके बीच साँस्कृतिक एकता का स्वरूप भी विद्यमान है।

ऐसा बिल्कुल नहीं है कि इन तमाम उदाहरणों और एकीकरण की प्रक्रिया को देखते हुए हम इन निष्कर्षों पर पहुच जाएँ कि यहाँ किसी भी प्रकार के भेद और संघर्ष मौजूद नहीं थे। वास्तव में आप इसे समझना चाहें तो देखेंगे कि वैदिक परंपरा में जिन देवताओं जैसे इंद्र, सूर्य, सोम आदि को केंद्रीय शक्ति के रूप में आराध्य माना गया, वे लगभग आठवीं शताब्दी तक आते-आते गौण हो जाते हैं। उनके स्थान पर विष्णु, शिव तथा देवी के विभिन्न स्वरूपों की आराधना प्रचलन में आती है।

हमारे देश की बहुलतावादी संस्कृति के बावजूद सांझी संस्कृति की एकता को भी देखा सकता है। विभिन्न मतों, आस्थाओं, विश्वासों और भाषाओं की पृथक पहचान के साथ ही साथ उनमें राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को भी स्पष्ट देखा जा सकता है। आप नज़दीक से देखें तो पाएंगे कि विभिन्न धार्मिक समुदायों और विश्वासों का लक्ष्य एक विराट मानवता की अवधारणा से ही जुड़ता है।

3.5.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. भारतीय समाज में किसी भी प्रकार का भेद और संघर्ष मौजूद नहीं था। (सही/गलत)

(ख) सही शब्द के चुनाव के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. हमारे देश में .....संस्कृति है। (एकलवादी/द्वैतवादी/ बहुलतावादी)

3.6 भक्ति का स्वरूप एवं अवधारणा

भारत में भक्तिकाव्य मुख्यत: आठवीं से अठारहवीं शताब्दी तक की समय-सीमा में फैला हुआ है। मध्यकालीन भारतीय साहित्य और संस्कृति को समझने के लिए हमें इस कालखण्ड की पृष्ठभूमि को समझना होगा। उस समय भी भारत के व्यापारिक संपर्क विश्व के कई देशों से स्थापित थे। परन्तु आठवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में अरब मुसलमानों के भारत पर आक्रमण से भारतीय समाज इस्लाम और अरब के संपर्क में आया। हालाँकि अरबों ने भारत के कुछ हिस्से पर ही शासन किया और अधिकांश भाग अछूता ही था लेकिन

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

फिर भी भारत में अनेक राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होने के कारण एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था तथा किसी राष्ट्रीय संस्कृति का अभाव था। तत्कालीन समाज वर्ण-व्यवस्था की रूढ़ियों के पालन के कारण दयनीय अवस्था में था। अलबरुनी के भारत दौरे के वर्णनों में जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था के संबंध में ब्यौरे प्राप्त होते हैं। इस्लाम संपर्क का दूसरा दौर महमूद गजनवी के साथ शुरू होता है। तुर्की सुल्तानों के शासन का प्रभाव भी यहाँ पड़ा। मध्यकाल के परिवेश में अनेक आक्रमणों को झेलते हुए भारतीय समाज मुस्लिम तथा गैर-मुस्लिम समाज में बँट गया। समाज धीरे-धीरे कट्टरपंथी और पुरातन रुढ़ियों में जकड़ता जा रहा था। ऐसे समय में संत साहित्य समाज-सुधार की दृष्टि से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस संबंध में हजारीप्रसाद द्विवेदी संत साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि के संबंध में लिखते हैं, "मध्यकाल का संत साहित्य प्रधान रूप से धार्मिक साहित्य है, परंतु उसका धार्मिक रूप साधारण जनता के लिए लिखा गया है। इस विषय में तो किसी को भी मतभेद न होगा कि इस साहित्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना की गई है। दीर्घकाल से प्रचलित धार्मिक विश्वासों, सामाजिक और व्यैक्तिक आचरणों के मान तथा विभिन्न संप्रदायों द्वारा स्वीकार सिद्धांतों पर या तो आक्रमण किया गया है, या उनके संबंध में संदेह प्रकट किया गया है। यह विभिन्न संतों के उस तीव्र असंतोष का फल है जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।"

मध्यकाल की इस पृष्ठभूमि को साँस्कृतिक मिलाप और भक्ति के नये स्वर के रूप में भी देखा जा सकता है। मुस्लिम सैनिकों की छावनी से जन्मी उर्दू तथा हिंदी का मिश्रित रूप हिंदवी या हिन्दुस्तानी समन्वय की संस्कृति का प्रतीक है। कई संस्कृतियों के मेल-मिलाप से विभिन्न प्रादेशिक बोलियों में भी अभिव्यक्ति को महत्त्व मिला। इस काल में भक्ति का स्वरूप साँस्कृतिक आंदोलन के रूप में उभरा जिसने प्राचीन भारतीय संस्कृति की परंपरा को जीवंत और गतिशील बनाया। भक्त कवियों ने प्राय: सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में अपना साहित्य रचा। परिणामस्वरूप तत्कालीन संस्कृति को हम आज भी अपने पास सुरक्षित पाते हैं। साहित्य और भक्ति का यह स्वर आज भी प्रासंगिक बना हुआ है और यह हमारे देश की साँस्कृतिक धरोहर है।

संस्कृति की प्रक्रिया को समझें तो उसमें धर्म का सार भी मौजूद रहता है। साहित्य के स्तर पर भक्ति, धर्म को संस्कृति से जोड़ने की प्रक्रिया है। आवश्यकता इस बात की है कि हम भक्ति, संस्कृति और धर्म के अंत:संबंधों को समझने का प्रयास करें। दक्षिण भारत में आलवार भक्ति काव्य से लेकर मध्यकाल में भारतीय सर्जनात्मक क्षमता की उत्प्रेरक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आती है। सगुण भक्त निर्गुण संत एवं सूफियों की भक्ति, आराधना और काव्य अखिल भारतीय स्तर पर साँस्कृतिक एकता को स्थापित करते हैं। भक्तिकाव्य ने निश्चित रूप से साँस्कृतिक एकता के लिए एक आधार भूमि तैयार की।

3.6.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. भारत में भक्तिकाव्य का संबंध मुख्यत: कितनी शताब्दी की पृष्ठभूमि में फैला हुआ है?
2. भक्त कवियों ने किस भाषा में साहित्य रचना है?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. किसके यात्रा वर्णनों में तत्कालीन जाति-व्यवस्था का वर्णन मिलता है?

3.7 भारतीय भक्ति काल का उदय, भक्ति आंदोलन का स्वरूप एवं विशेषताएँ

लगभग छठी शताब्दी में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ विष्णु भक्त अलवारों और शिवभक्त नयनारों के नेतृत्व में हुआ। वे तमिल भाषा में अपने इष्ट की स्तुति में भजन गाते हुए एक-स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते थे। अपनी इन्हीं यात्राओं के दौरान आलवार और नयनार संतों ने अपने इष्ट के निवास स्थल के रूप में कुछ पवित्र स्थानों की घोषणा की। कालांतर में इन्हीं स्थानों पर विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ और वे इन समुदायों के तीर्थस्थल माने गए। संत कवियों के भजनों को मंदिरों में आराधना के समय गाया जाता था। दसवीं शताब्दी तक आते-आते इन अलवार संतों की रचनाओं का एक संकलन 'नलयिरादिव्यप्रबंधम्' नाम से किया गया जिसमें बारह अलवार संतों की लगभग चार हज़ार रचनाओं का संकलन किया गया जिसे जनमानस में एक पवित्र ग्रंथ का दर्जा प्राप्त हुआ।

हिंदी साहित्य में भक्ति काल के उद्भव को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी की व्याख्या को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्तिकाल को बाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया मानते हैं तो हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे भारतीय परंपरा का अपना स्वत: स्फूर्त विकास मानते हैं। यहाँ इन दोनों विद्वानों की व्याख्या में एक तरफ विदेशी प्रभाव तो दूसरी तरफ लोक पक्ष को महत्त्व देने की दृष्टि स्पष्ट लक्षित होती है। भक्ति की शुरुआत द्रविड़ प्रदेश से हुई और उसे उत्तर भारत में लाने का श्रेय रामानंद को दिया जाता है। इसी आधार पर इसके लिए हिंदी में यह पंक्ति प्रसिद्ध हुई;

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाए रामानंद'

दक्षिण भारत में भक्ति परंपरा का जो प्रारंभ हुआ, उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियों ने उस आंदोलन के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच विभिन्न आचार्यों ने भी अपने वादों का प्रवर्तन करके योगदान दिया। इन आचार्यों में कुछ प्रमुख रामानुजाचार्य (विशिष्टाद्वैतवाद), मध्वाचार्य (द्वैतवाद), विष्णुस्वामी (शुद्धाद्वैतवाद), निम्बार्काचार्य (द्वैताद्वैतवाद), स्वामी हरिदास (सखी संप्रदाय), चैतन्य महाप्रभु (चैतन्य सम्प्रदाय), स्वामी हरिदास (हरिदासी सम्प्रदाय), विष्णु स्वामी (रूद्र सम्प्रदाय), रामानंद (रामावत सम्प्रदाय), शंकराचार्य (अद्वैतवाद), स्वामी हित हरिवंश (राधा वल्लभी सम्प्रदाय) हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल का वर्गीकरण दो धाराओं में किया है– निर्गुण धारा और सगुण धारा। सगुण भक्ति परंपरा ईश्वर के सगुण, साकार रूप, अवतारों और लीलाओं को केंद्र में रख कर भक्ति भाव विकसित करता है। सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत यह रामकाव्य धारा एवं कृष्णकाव्य धारा में विभक्त है। निर्गुण भक्ति परंपरा उस परम सत्य का निर्गुण, निराकार, अविकारी रूप में ध्यान करती है। निर्गुण काव्यधारा पुन: दो अन्य भागों, संत काव्य धारा एवं सूफ़ी काव्य धारा में विभक्त है। सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत राम और कृष्ण काव्यधारा का अध्ययन करें तो हम पाएंगे कि भक्ति सूत्रों ने वैष्णव भक्ति भावना को शास्त्रीय धरातल के साथ ही साथ व्यावहारिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित किया। पुराणों में वैष्णव भक्ति के अवतारी रूप राम और कृष्ण के चरित्र और लीलाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। यही आगे चलकर परवर्ती काव्य के लिए आधारभूमि निर्मित करता है। सूफ़ी कवियों ने इस्लाम के कट्टर स्वरूप और बाह्याचारों के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विरोध में प्रेम मार्ग को ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक बताया। ग्याहरवीं शताब्दी तक सूफ़ीवाद एक पूर्ण विकसित आन्दोलन बन गया। जिससे आगे चलकर इस्लामी दुनिया में सिलसिलों का गठन होने लगा। सिलसिला का शाब्दिक अर्थ है जंजीर, जो शेख और मुरीद के बीच एक निरंतर रिश्ते का प्रतीक है।

भक्ति आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय है। देश और काल की दृष्टि से यह साँस्कृतिक आंदोलन अपनी तरह का अनूठा और अद्वितीय आन्दोलन है। भारत के विभिन्न हिस्सों सिंध, कश्मीर, पंजाब, गुजरात, बंगाल, असम, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि प्रदेशों में भक्ति आंदोलन की धारा बहुत सशक्त रूप में प्रवाहमान होती है। भक्त कवियों ने इन विभिन्न प्रदेशों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधा। भारत की जनता को साँस्कृतिक एकता के सूत्र में निबद्ध करने का कार्य भक्ति ने किया। जन सामान्य को भावना के स्तर पर तथा संस्कृति के धरातल पर भक्ति ने ही एकता के सूत्र में बाँधा।

भक्ति आंदोलन की साँस्कृतिक एकता का फैलाव बहुत विस्तृत और गहरा था। यह केवल सुशिक्षित जनता तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि समाज के सभी वर्गों, पेशेवर, कामगारों, किसानों और मजदूरों को भी अपने भीतर सहेजता है। उत्तर भारत में संवाद और असहमति के रूप में नवीन भक्ति पंथ के तौर पर संत कवियों ने जनता से संवाद स्थापित किया। यह संवाद नवीन सामाजिक परिस्थितियों, विचारों और संस्थाओं के साथ स्पष्ट और सांकेतिक दोनों प्रकार का था।

3.7.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. प्रारंभिक भक्ति आंदोलन का प्रारंभ किन के नेतृत्व में हुआ?
2. आलवार संतों की रचनाओं के संकलन का नाम लिखें।
3. भारत की जनता को साँस्कृतिक एकता के सूत्र में निबद्ध करने का कार्य किसने किया?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. लगभग छठी शताब्दी में भक्ति आंदोलन का प्रारंभ हुआ। (सही/गलत)
2. भक्ति आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय नहीं है। (सही/गलत)
3. मध्वाचार्य का संबंध द्वैतवाद से है। (सही/गलत)

3.8 साहित्य, भारतीय साँस्कृतिक एकता और भक्ति मूल्य

इस दृष्टि से उभरने वाले संत कवियों में कबीर अप्रतिम स्थान रखते हैं। कबीर की रचनाएँ अनेक भाषाओं और बोलियों में मिलती हैं। जाति से जुलाहे कबीर निर्गुण संत कवियों में प्रमुख हैं। कबीर के यहाँ ईश्वर निर्गुण, निराकार है। वह धरती के कण-कण में व्याप्त है। उन्हें पाने के लिए किसी प्रकार के कर्मकांड की आवश्यकता नहीं बल्कि आचरण और हृदय की शुद्धता चाहिए। उनके अनुसार ज्ञान के मार्ग पर चलकर ही

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उस परम सत्य को जाना जा सकता है। वे हाथ के मनकों की अपेक्षा मन के मनकों को नाम स्मरण के लिए महत्त्व देते हैं–

माला तौ कर में फिरै जीभ फिरै मुख मांहि।
मनुवां तौ दस दिसि फिरै सो तौ सुमिरन नाहिं॥

कबीर ने भक्ति में सदाचरण पर बल दिया है। वे आचरण की शुद्धता के लिए काम, क्रोध, मद, मोह, लाभ, ईर्ष्या और अहंकार आदि विकार त्यागने पर बल देते हैं। उनके अनुसार 'मैं' के अहंकार भाव को त्यागने पर ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है;

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटि गया दीपक देख्या मांहि॥

कबीर की यह विशेषता है कि उनकी भक्तिभावना में समाज सुधार की भावना को स्पष्ट देखा जा सकता है। अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति की ईमानदारी उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। कबीर ने समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, छुआछूत, ऊँच-नीच की भावना पर प्रहार किया। उन्होंने मनुष्यता को केंद्र में रखकर मनुष्य की समानता पर बल दिया। इसके साथ ही वे जातिवाद की रुढ़िवादी मान्यताओं का कड़ा विरोध करते हैं;

ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा साधू निंदत सोय॥

कबीर ने हिंदू और मुसलमान दोनों को बाह्य आडंबरों और पाखंडों के लिए फटकारा। वे साफ़ कहते हैं, 'अरे इन दोउन राह न पाई'। वे प्रेम, अहिंसा, सत्संग, सेवा, क्षमा, दान, धैर्य, सत्य और परोपकार जैसे शाश्वत जीवन मूल्यों को अपनी वाणी में महत्त्व देते हैं। कबीर की बानी की एक विशिष्टता यह भी है कि परम सत्य की अभिव्यक्ति के लिए वे अनेक नामों का सहारा लेते हैं। इस्लामी दर्शन की तरह वे इस सत्य को कभी खुदा और पीर कहते हैं तो वेदान्त दर्शन से प्रभावित होकर इसे सत्य और अलख, निराकार कह कर भी संबोधित करते हैं। प्रचलित धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं, विचारों और व्यवहारों पर प्रश्न चिन्ह लगाने का उनका साहस अभूतपूर्व है, इसलिए उनकी तर्कप्रधान दृष्टि उन्हें आज भी प्रासंगिक बनाए हुए है। भक्ति का यह स्वर सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक परम्परा पर प्रभाव डालता है।

भक्ति आंदोलन भले ही देश के अलग-अलग हिस्सों में विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ पर उसके कुछ मूलभूत सिद्धांत ऐसे थे जो पूरे भारत के भक्ति-आंदोलन को एक साथ जोड़ते हैं। भक्ति का यह अखिल भारतीय स्वरूप मनुष्य की सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता था। सभी जातिगत, वर्गगत, जन्म तथा धर्म के आधार पर होने वाले भेदभावों का विरोध करते हुए इससे उपजे सामाजिक उत्पीड़न का प्रतिरोध करता था। चण्डीदास, चौदहवीं सदी के बांग्ला भाषा के कवि थे। उन्हें राधाकृष्ण लीला संबंधी साहित्य का आदिकवि माना जाता है। वे भी मनुष्यता को सबसे बड़ा धर्म मानते है;

शुनह मानुष भाई,
शबार ऊपरे मानुष शत्तो।
ताहार उपरे नाई।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उत्तर भारत में वारकरी आंदोलन का आरंभ चौदहवीं सदी में नामदेव के साथ हुआ था। नामदेव और कबीर की रचनाओं में अद्भुत साम्य देखने को मिलता है। यहाँ नामदेव भी हिंदू-मुस्लिम धर्म में व्याप्त कर्मकाण्डों का विरोध कर रहे हैं;

हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद।
नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीद॥

इससे पूर्व संत ज्ञानेश्वर 'गीता' का अनुवाद मराठी में कर चुके थे। इन्हें भी भक्त कवि के साथ ही साथ समाज सुधारक की कोटि में रखा जाता है। इस पद में वे प्रार्थना करते हैं कि पाप का अन्धकार दूर हो जाय। अब वस्तुत: धर्म के सूर्य को अन्धकार मिटाने के लिए उदित होना ही चाहिए;

दुरितांचे तिमिर जावो, विश्व स्वधर्म सूर्ये पाहो

बाबा गुरु नानक का सन्देश उनके भजनों और उपदेशों में मिलता है। उन्होंने धर्म के बाह्याचारों को अस्वीकार करते हुए निर्गुण भक्ति के रूप में नाम जप, परोपकार और सेवा को परम सत्य की प्राप्ति में सहायक बताया है—

झूठी देखी प्रीत
जगत में झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुखसों सब लागे, क्या दारा क्या मीत॥
मेरो मेरो सभी कहत हैं, हित सों बाध्यौ चीत।
अंतकाल संगी नहिं कोऊ, यह अचरज की रीत॥
मन मूरख अजहूँ नहिं समुझत, सिख दै हारयो नीत।
नानक भव-जल-पार परै जो गावै प्रभु के गीत॥

उन्होंने सामुदायिक उपासना के नियम निर्धारित किए। बाबा गुरु नानक तथा उनके उत्तराधिकारियों ने बाबा फरीद, संत रविदास, कबीर की बानी को 'आदिग्रंथ' में संकलित किया गया है।

भक्ति आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसमें स्त्री भक्तों की उपस्थिति थी। अंडाल नामक अलवार धारा की स्त्री भक्त के भक्ति गीत आज भी व्यापक स्तर पर गाए जाते हैं। उन्होंने स्वयं को विष्णु की प्रेयसी मानकर अपनी प्रेम भावना को छंदों में गाया है। इसी के साथ एक और सशक्त स्त्री भक्त शिव उपासक करइक्काल अम्मइयार ने घोर तपस्या का मार्ग अपनाया। यहाँ उनकी कविता का उद्धरण देखिए, जहाँ वे स्वयं के बारे में बताते हुए स्त्री सौन्दर्य की पारंपरिक अवधारणा को भी तोड़ती हैं;

राक्षसी, फूली हुई नाड़ियों वाली
बाहर निकली आँखें, सफ़ेद दाँत और भीतर धंसा उदर
लाल केश और आगे निकले दाँत
लंबी पिंडली की नली जो टखनों तक फैली हुई है।
वन में विचरते समय चीखना और
क्रंदन यह अलकटु का वन है,
जो हमारे पिता शिव का घर है।
वह नृत्य करते हैं...

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDE, COL, SOL, University of Delhi

उनके जटाजूट आठों ओर बिखर जाते हैं।
उनके अंग शांत हैं।

मीराबाई भक्ति परंपरा की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। उनके भजन शताब्दियों तक मौखिक रूप से संप्रेषित होते रहे। मीराबाई मारवाड़ की एक राजपूत राजकुमारी थीं जिनका विवाह एक राज परिवार में किया गया। मीराबाई ने अपने स्त्रियोचित पारंपरिक दायित्वों को निभाने से मना कर दिया। उन्होंने कृष्ण को अपना एकमात्र पति स्वीकार किया। आप कल्पना कर सकते हैं कि मीराबाई के रूप में एक स्त्री का राजकुल और पितृसत्तात्मक समाज में इस विरोधी तेवर को अपना कर ईश्वर की खोज में घर-परिवार और परंपराओं को त्याग कर परिव्राजिका संत बनना बिल्कुल आसान नहीं रहा होगा। समाज का उनके प्रति व्यवहार बिल्कुल भी सहयोगी नहीं रहा होगा। वे अपनी कठिन साधना के संबंध में कृष्ण को संबोधित करते हुए कहती हैं;

अगर-चंदण की चिता बणाऊं, अपणै हाथ जला जा।
जल-बल भयी भसम की ढेरी, अपणै अंग लगा जा।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा॥

मीरा कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति की एकनिष्ठता को प्रकट करती हैं;

राणों जी मेवाड़ों म्हारो कांई करसी,
म्हे तो गोबिंदा रा गुण गास्याँ।
राणों जी रुससी गाँव रखासी, हरी रुस्याँ कुमलाह्या॥

मीरा के गुरु रैदास थे जो जाति से चर्मकार थे। मीराबाई जातिवादी समाज की रूढ़ियों को तोड़ते हुए आगे बढ़ी। मीरा ने भले ही उन्होंने किसी समुदाय या संगठन का गठन नहीं किया किंतु फिर भी वे शताब्दियों तक प्रेरणा की स्रोत रही हैं। आज भी उनके रचित पद जनसामान्य द्वारा गाए जाते हैं।

लोकभाषा कश्मीरी की भक्त स्त्री कवयित्री ललद्यद का नाम भी यहाँ विशेष उल्लेखनीय है। ललद्यद ने धर्म के नाम पर प्रचलित अंधविश्वासों, मिथ्याचारों का भी खुल कर विरोध किया। उन्होंने आत्मज्ञान को ही सच्चा ज्ञान माना। वे इस बात पर जोर देती हैं कि अंत:करण में समभावी होने पर ही मनुष्य की चेतना व्यापक हो सकती है;

खा-खाकर कुछ पाएगा नहीं,
न खाकर बनेगा अहंकारी।
सम खा तभी होगा समभावी,
खुलेगी साँकल बंद द्वार की।

प्रेममार्गी सूफ़ी धारा के कवि मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के प्रतिनिधि कवि के रूप में जाने जाते हैं। भारतीय संस्कृति को आधार बनाकर प्रेम परक कहानियों के साथ सूफ़ियों ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। सूफ़ी कवियों ने जन-मानस में रचे-बसे लोकजीवन को आधार बना कर लौकिक तथा अलौकिक प्रेम को अपने साहित्य में दर्शाया। यहाँ 'पद्मावत' में रानी नागमती के विरह वर्णन को वे मर्मस्पर्शी रूप में लिखते हैं;

ए रानी! मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेललेहु जो खेलहु आजू॥

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम कित तह सरवर पाली॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देहीं॥

सगुण भक्ति धारा में राम भक्ति धारा के अप्रतिम लोकवादी कवि तुलसीदास विशेष उल्लेखनीय हैं। 'रामचरितमानस' में वे राम की कथा के माध्यम से मानव मूल्यों की स्थापना करते हैं। उनका लक्ष्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं बल्कि समाज की मुक्ति है। उनके काव्य में यथार्थबोध और लोकमंगल की भावना को भी विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है;

ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाई एक राम घनश्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥

सूरदास सगुण उपासना में कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। कृष्ण के लौकिक तथा अलौकिक रूप को प्रस्तुत करते हुए वे तत्कालीन सामाजिक चेतना और सामाजिक दशा का भी वर्णन करते हैं। सूरसागर का भाव जगत, प्रेम है। प्रेम के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति के लिए उनके यहाँ लौकिक प्रेम को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। उनके अनुसार सच्चे प्रेम द्वारा ही कृष्ण से मिलन संभव है;

प्रेम प्रेम तैं होई, प्रेम तै पारहिं जइयै।
प्रेम बंध्यौ संसार प्रेम परमारथ लहियै।
सांचौ, निहचै प्रेम कौ, जीवनमुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ, जबै मिलै गोपाल॥

भारतीय भक्ति साहित्य भारत की प्राय: सभी भाषाओं में मिलता है। यहाँ उन सभी का उल्लेख संभव नहीं है। भक्ति साहित्य लोकभाषाओं में लिखा गया जिसने आधुनिक भारतीय भाषाओं को भी अनुप्राणित किया है। भक्ति का संबंध भारतीय संस्कृति के अनेक रूपों से है। भक्ति के मूल में अध्यात्मिक भावना है। इस भक्ति का संबंध सारे देश से है। इसे देश के किसी विशेष स्थान तक सीमित नहीं किया जा सकता। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण तथा पूर्व से लेकर पश्चिम भारत तक भक्ति भावधारा सतत प्रवाहमान हुई जिसका प्रभाव इसी रूप में सारे देश में देखा जा सकता है। भक्ति के भाव की अभिव्यक्ति देश की विभिन्न भाषाओं में मिली पर उनके भीतर जो कुछ व्यक्त हुआ उस स्वर में एकता के सूत्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय संस्कृति में परम सत्य के प्रति जनजीवन की जो प्रतिबद्धता मिलती है, उसे जीवंत बनाए रखने में भक्ति साहित्य की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

3.8.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. कबीर किस धारा के कवि थे?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

2. बाबा गुरु नानक तथा उनके उत्तराधिकारियों की बानी को कहाँ संकलित किया गया है?

3. दक्षिण भारत की संत स्त्री भक्त कवियों का नाम लिखें।

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. कबीर के यहाँ ईश्वर निर्गुण, निराकार, अवतार से परे है। (सही/गलत)

2. मीराबाई मारवाड़ की एक राजपूत राजकुमारी थीं। (सही/गलत)

3. सूरदास सगुण उपासना में कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि थे। (सही/गलत)

3.9 सामाजिक जड़ता को तोड़ते हुए भक्ति का प्रतिरोधी स्वरूप एवं चेतना

भक्ति आंदोलन ने सामाजिक जड़ता को तोड़ते हुए प्रतिरोधी स्वरूप और सामाजिक चेतना का स्वर अपनाया। तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों, धर्म के नाम प्रचलित अंधविश्वासों, पाखण्ड, मिथ्याचार, कर्म-कांडों का भी खुल कर विरोध किया। जाति-व्यवस्था से त्रस्त समाज को मानवता और समानता की रोशनी दिखाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका भक्ति आंदोलन ने निभाई। सदाचार, परोपकार, सत्य, अहिंसा, सत्संगति, दया, प्रेम और हृदय एवं आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए शाश्वत जीवन मूल्यों को भक्तिधारा साहित्य ने स्थापित किया। दिशाहीन समाज को रास्ता दिखाते हुए आत्म-अनुभूतियों को यहाँ महत्त्व दिया गया। भक्ति आंदोलन का उदय निश्चित रूप से अपने समय के गहरे तनाव और संघर्ष का परिणाम है। निर्गुण भक्ति परंपरा में वर्चस्व के खिलाफ प्रतिरोध की चेतना विशेष रूप से दिखाई देती है। साँस्कृतिक चेतना के निर्माण में भक्ति आंदोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। संत कवियों में कबीर, रैदास, नानक और दादूदयाल जैसे कवियों ने जन-सामान्य में आत्म-सम्मान और सच कहने का साहस उत्पन्न किया। मानवीय एकता और ईश्वर के समक्ष सबकी समानता का स्वर भारत के भक्ति आंदोलन का सामूहिक स्वर और चेतना बन कर उभरता है।

3.10 भारतीय साँस्कृतिक एकता के स्वरूप पर भक्ति का प्रभाव

भक्ति आंदोलन प्राचीन भारतीय मनीषा, ज्ञान एवं दर्शन की अविछिन्न धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली और व्यापक है। यहाँ समाज के विभिन्न वर्गों की साझा रचनाशीलता, भक्तिभावना, दर्शन और चेतना अपना विशेष महत्त्व रखती है। भक्ति धारा हमारी साँस्कृतिक एकता का प्रमुख तत्त्व है। देश में अलग-अलग भाषाओं में भक्ति साहित्य लिखे जाने पर भी उसकी चेतना एक है। अपनी विविधता को बनाए रखने के बावजूद इसमें साँस्कृतिक एकता के स्वर को स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है। भक्ति आंदोलन का भारतीय संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। आराधना की पद्धतियों से लेकर उपासना, भाषा, साहित्य, मंदिरों, मूर्तियों, स्थापत्यकला, संगीत, चित्र आदि संस्कृति के विभिन्न आयामों पर भक्ति आंदोलन की स्पष्ट छाप है। यह आज भी भारतीय जन-मानस को गहराई से प्रभावित कर रही है। भक्ति आन्दोलन ने प्रेम को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करके भारतीय संस्कृति को उदात्त धरातल पर स्थित किया है। यह

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीयता के तत्त्वों और मनुष्य की पहचान को धर्म, कुल, जाति, देश, भाषा, संप्रदाय के धरातल से ऊँचा उठाता है। उस समय के साँस्कृतिक सामाजिक आधार से जोड़ कर ही हम भक्ति के अखिल भारतीय स्वरूप को समझ सकते हैं। इसके बहुआयामी चरित्र को भी इन्हीं संदर्भों में रखकर समझा जा सकता है।

3.10.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. भक्ति आंदोलन का स्वर क्या था?
2. भक्ति आंदोलन किस धारा से अविछिन्न रूप से जुड़ा है?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. भक्ति आंदोलन का भारतीय संस्कृति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। (सही/गलत)
2. भक्ति आंदोलन में साँस्कृतिक एकता के स्वर को परिलक्षित नहीं किया जा सकता. (सही/गलत)

3.11 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भक्ति आंदोलन और उसके काव्य में अभिव्यक्त दर्शन और विचारों ने भारतीय संस्कृति से प्रेरणा तो ली ही है साथ ही साथ उसे गहरे और व्यापक रूप से प्रभावित भी किया है। भक्ति आंदोलन का अध्ययन जब हम भारतीय साहित्य की समेकित भूमि पर करते हैं तो उनमें कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं जो इसके केन्द्रीय मूल स्वर के रूप में उभर कर सामने आती हैं। विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं और साहित्य की धाराओं से जुड़े होने के कारण इनमें विविधता मौजूद है लेकिन मानवीय मूल्यों और चेतना के स्तर पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। लोकमानस और लोक संवेदना से जुड़े होने के कारण सामाजिक-साँस्कृतिक स्तर पर एकता और सामंजस्य मिलता है। वर्तमान समय में भी इसकी प्रासंगिकता इस रूप में देखी जा सकती है कि भारतीय समाज आज भी जिस मूल्यहीनता के संकट से गुज़र रहा है, वहाँ भक्ति की इस साँस्कृतिक विरासत से पुन: चेतना ग्रहण कर सकता है। संत कवि इतनी शताब्दियों के बावजूद आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इनके जरिये मानवीय मूल्यों और सामाजिक आदर्शों के प्रति भारतीय लोकमानस से संवाद संभव है। भक्ति आंदोलन देश के विभिन्न भागों में सामाजिक-ऐतिहासिक स्थितियों के अनुरूप विकसित हुआ और साँस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से इन प्रदेशों में सामाजिक चेतना का भी प्रवाह हुआ। वास्तव में भारत की साझा संस्कृति के निर्माण में भक्ति ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एकीकरण की यह प्रक्रिया हमारी संस्कृति के महान लक्ष्य को भी इंगित करती है। भक्ति इस रूप में भारत की साँस्कृतिक एकता की निर्मिती और संरक्षण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ उपस्थित है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3.12 अभ्यास प्रश्न

1. भारत की साँस्कृतिक एकता को स्थापित करने में भक्ति की अवधारणा और महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
2. "भारत की साँस्कृतिक विविधता के बीच भक्ति एकता की धारणा और साझी संस्कृति को विकसित करती है।", स्पष्ट कीजिए।
3. भक्ति आंदोलन से जुड़े संतों और उनके साहित्य का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. भारतीय समाज और संस्कृति पर भक्ति आन्दोलन के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

3.13 संदर्भ-ग्रंथ

1. *भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश : 2*, रामविलास शर्मा, किताबघर प्रकाशन
2. *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य*, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन
3. *परंपरा का मूल्यांकन*, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन
4. *भक्तिकाव्य की भूमिका,* प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन
5. *रतीय भक्ति साहित्य*, राजमल बोरा, वाणी प्रकाशन

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

4. भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

4.0 अधिगम का उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप
4.2.1 बोध प्रश्न
4.3 अभ्यास प्रश्न
4.4 संदर्भ-ग्रंथ

4.1 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम होंगे :

- भक्ति के विकास को आप समझ सकेंगे।
- इसके माध्यम से भक्ति के वैदिक वाङ्मय से भक्तिकाल तक की यात्रा को समझ सकेंगे।
- भक्ति के स्वरूप को समझते हुए उसके विभिन्न प्रकार जान पाएंगे।
- भक्ति की प्रासंगिकता को भी समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

भक्ति के बीज हमें वैदिक वाङ्मय से प्राप्त होते हैं। देशकाल की परिस्थितियों के कारण भक्ति की यह धारा कभी फैलती रही तो कभी संकुचित होती रही। भक्तिकाल तक आते-आते भक्ति निर्गुण और सगुण भक्ति के रूप में विभाजित हो गई। निर्गुण भक्ति ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी भक्ति में तथा सगुण भक्ति रामभक्ति और कृष्ण भक्ति के रूप में उभर कर सामने आई। आज भी भक्ति समाज को अनेक ऐसी मान्यताएँ दे रही है कि यदि समाज उनका पालन करे तो समाज को सुंदर बनाया जा सकता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

4.3 भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप

मानव-जीवन की दो प्रवृत्तियाँ अति प्राचीन काल से देखने में आती हैं–जिजीविषा और मुमुक्षा। जिजीविषा कहते हैं जीने की इच्छा को। जीव का यह स्वभाव है कि वह जीना चाहता है। सामान्य संसारी जीवों में ही नहीं, सुख-भोग की स्पृहा से तटस्थ ऋषियों ने भी 'पश्येम शरदःशतम् जीवेम शरदः शतम्' कहकर या "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" अर्थात् कर्म करते रहकर ही सौ वर्ष की अवस्था तक जीने की इच्छा रखे, ऐसा कहकर उसी भाव को प्रकाशित किया है। वाङ्मय के अगणित प्रसंग ऐसे उद्धृत किये जा सकते हैं जो मनुष्य की जिजीविषा को प्रमाणित करते हैं। जिजीविषा की तरह ही मानव की एक प्रवृत्ति मुमुक्षा की देखने में आती है। मुमुक्षा कहते हैं मुक्त होने की इच्छा को। संसार में जन्म लेने का अर्थ कष्ट भोगना है। सूक्ष्म शरीर के साथ प्राप्त संस्कारों के अनुसार सुख के स्वरूप और मात्रा में न्यूनाधिक्य संभव है परन्तु दुख की व्यवस्था से हर संसारी को गुजरना पड़ता है। दुख को कोई नहीं चाहता। अपनी व्यापकता में दुख की परिधि के आयाम असीम हैं। भारतीय चिन्तकों ने अपने-अपने ढंग से दुःख से मुक्त होने का वर्णन किया है। गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्य बतलाकर बुद्धिवादियों को संसार के दुख के विषय में अपना दृष्टिकोण समझाया है–दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निरोध है, दुःख की निवृत्ति का उपाय है। इस तरह से अनेक चिन्तकों ने विचार व्यक्त करते हुए संसार के दुःखों के समूह से अलग रहने की, दुःख को दूर करने की, संसार की सांसारिकता से मुक्त रहने की कामना की है। इसे ही दूसरे शब्दों में मुमुक्षा कहा गया है। भारतीय मनीषियों ने दुःखात्मक और आनन्दात्मक और अमर जीवन के लिए सदैव व्याकुलता व्यक्त की है। यह भारत की अन्तरात्मा का सार है। जीवन की परिणति यहाँ परलोक कामना-भावना में आकर होती है। उसके लिए आत्मा-परमात्मा के ऐक्य की अनुभूति और साधना के करने वाली अमरवाणी प्राचीन आर्यावर्त की थाती है, भारतीय जीवन में प्रसारित अमर धारा है। इसे ही दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक दृष्टि कहा गया है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार यह धारा कभी फैलती रही है, कभी होती रही है, कभी काल के प्रस्तरों में विलीन होकर पुनः प्रकट होती रही नाना रूप धारण करती रही है। भक्ति का अनेक रूपी विपुल साहित्य उसी से सिंचित फल है।

भक्ति के प्रादुर्भाव के समर्थन में विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय को उद्धृत किया है। ऋषियों ने अपनी पवित्र वाणी द्वारा वरुण के प्रति या रुद्र के प्रति करुणोत्पादक निवेदन किया है, वहीं से भक्ति का आरम्भिक उत्स प्रवाहित होना है–क्रः तानि नौ सखा बभूवुः उतः स्वया तन्वा संवदे कदानु अन्तःवरुणे भुवान क्रत ते रुद्र मृडया कुहस्तः अस्तभेष जो जलांषुः। भक्ति के प्रसार में उसकी सीमा चाहे जो रही हो, सबसे दृढ़ रुकावट बौद्धधर्म ने उपस्थित की। संसार की क्लेश वेदना को दूर करने के लिए उन्होंने चार आर्य सत्य प्रसारित किये हैं। उनके निरीश्वरवादी विचारों ने बौद्धिकता को तो उभारा, पर जनमानस को कोई संबल नहीं दिया। जनता के हृदय को आकर्षित करने के लिए

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

गोपालकृष्ण की उपासना सबसे अधिक उपादेय रही। विद्वानों ने माना है कि ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य की सभा में आये मेगास्थनीज ने जिस 'हिरक्लीज' को मथुरानगरी के शौरसेनियों का उपास्य बतलाया है वे 'हरिकृष्ण' हैं। कृष्ण को अपने प्रेम का आलम्बन बनाना बड़ा रसमय रहा। कृष्ण की उपासना का यह भाव पाँचरात्र में गहीत किया तो वहाँ पाँचरात्र कहलाया और सात्वत लोगों ने गृहीत किया तो सात्वत धर्म कहलाया। विष्णु के अवतार के रूप में गृहीत होने से यह धर्म वैष्णव धर्म कहा गया। कृष्ण के भगवान कहलाने से यही भागवत धर्म के रूप में जाना गया। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसा को चौथी शताब्दी के बीच में भागवत धर्म के अनुयाइयों के उल्लेख विदेशियों के लेखों और हमारे यहाँ के शिला लेखों में मिल जाते हैं। बाणमट्ट ने सातवीं-शताब्दी में पाँचरात्र और भागवत धर्म का उल्लेख किया है। ये संकेत भक्ति के प्रसार में साक्षी हैं। बौद्ध और जैन धर्म ने इस भावना को बहुत रोका। शंकराचार्य ने सातवीं-आठवीं शताब्दी में अपनी मेधा और बुद्धि बल से अध्यात्म को शक्ति सम्पन्न बनाया, परन्तु उनकी सूक्ष्म बातें जनमत के लिए अधिक आकर्षक नहीं बन सकीं। शुष्क तत्त्वचिंतन में मनुष्य के हृदय के लिए सरस आकर्षण नहीं होता।

दक्षिण के वैष्णव भक्तों ने भक्ति को एक पुष्ट संबल दिया। ये आलवार भक्त हैं। ये आलवार पाँचवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक होते रहे हैं। इनमें 12 आलावर भक्त बहुत प्रसिद्ध हैं –भूतत्तनालवार, पोयगै आलबार, पेयालवार, परियालवार, तिरुमलिसई आलवार, कुलशेखरालवार, तिरुप्यान आलवार, तोंडरडी पोडी आलवार, तिरुपंगै आलवार, नम्मालवार, मधुर कवि आलवार, आंडाल आलवार। इन भक्तों ने भक्ति-गीतों की रचना की जो प्रायः मौखिक गाये जाते रहे। नवीं शताब्दी में नाथमुनि ने इनका संग्रह एक जगह 'प्रबन्धम्' नाम से किया। इसमें लगभग 4000 गीत हैं। वैष्णव भक्तों के साथ और भक्तों का भी प्रचार बढ़ा। सन्त नायनमार शैव थे। इन्होंने बौद्धों और जैनों के प्रभाव को रोका–सातवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक वैष्णवों व शैव भक्तों का बौद्धों और जैनों से तीव्र विरोध रहा। नवीं शताब्दी में जब वैष्णवों और शैवों को राजाश्रेय मिला तो ये प्रबल हो गये। इन भक्तों का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। एक तो ये गान करने वाले थे। इनके गीतों ने लोकमानस को मुग्ध कर दिया। फिर इनमें स्त्री भक्तों के होने से स्त्री समाज में भक्ति का आकर्षण बढ़ा। वैष्णवों में आण्डाल एक स्त्री भक्त थी। शैवों में 'कादैक्काल अम्मैयार' एक प्रसिद्ध संत कवयित्री थी। ये भक्त जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेद-भाव को दूर करने वाले थे। नम्मालवार एक शूद्र थे उनके शिष्य मधुर कवि ब्राह्मण थे। कुलशेखर क्षत्रिय थे और तिरुप्पाण आलवार चांडाल थे। इन भक्तों ने ईश्वर-शरणागति और प्रेमलक्षणा भक्ति के कारण लोगों का मन मोह लिया।

दक्षिण में भक्ति के तीव्र प्रसार में सातवीं-आठवीं शताब्दी से भक्ति और दर्शन के आचार्यों का बड़ा योग रहा। शंकराचार्य इनमें से सर्वप्रमुख हैं। उन्होंने ब्रह्म और जीव के ऐक्य की प्रतिष्ठा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

करके अद्वैतवाद का प्रचार किया। अद्वैतवाद के इस प्रयास ने बौद्धों और जैनों के प्रभाव को तो बहुत कम कर दिया, परन्तु भक्ति को उससे अधिक लाभ नहीं हुआ। जीव, जब ब्रह्म ही है, उससे अभिन्न है तो भक्ति का सुख कैसे प्राप्त करेगा? रामानुजाचार्य ने इस कमी को पूरा किया। रामानुजाचार्य का समय 1037 ई० है। इससे पूर्व नाथमुनि और यामुनाचार्य इस मत के पोषक हो गये थे। रामानुजाचार्य का सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद है। उन्होंने जीव यानी चित् और जगत् यानी अचित् गुण से ब्रह्म को विशिष्ट माना। ब्रह्म चिदचिद्विशिष्ट है। इसी से उनकी भक्ति का सिद्धांत पक्ष विशिष्टाद्वैत कहलाता है। इनके सिद्धांत में शरणागति या प्रपत्ति का बड़ा संबल है। इस सिद्धांत ने आलवार भक्तों द्वारा प्रसारित भक्ति के प्रवाह को और तीव्र गति दी। दक्षिण से उत्तरभारत की ओर भक्ति को बढाने में रामानुजाचार्य का अप्रतिम महत्त्व है। शंकराचार्य के सिद्धांत ने भक्ति की जो महत्ता कम कर दी थी, रामनुजाचार्य ने उसे पल्लवित किया। इसी तरह 12वीं शताब्दी में निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत, 1119 ई० में मध्वाचार्य का द्वैत मत और पन्द्रहवीं शताब्दी (1479 ई०) में वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धांत भक्ति का पोषण करते हुए उत्तर भारत की ओर बढ़ा। रामानुजाचार्य की विचार परम्परा में काशी के राघवानन्द और उनके शिष्य रामानन्द 14वीं शताब्दी में बहत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने रामानुजाचार्य सम्मत भक्ति के सिद्धान्तों का बहुत अधिक प्रसार किया। कबीरदास इन्हीं के शिष्य थे। राघवानन्द के 12 शिष्य थे–अभेदानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावति, नरहरि आत्मानन्द, रैदास, घन्ना पीपा, सेन, घरहरि। इनमें कबीर और रैदास पहुँचे हुए भक्त हुए। रामानन्द की दृष्टि संकुचित नहीं थी। उन्होंने निराकार और साकार दोनों उपासना-पद्धतियों में विश्वास जगाया था। वे सीताराम की भक्ति के पोषक थे–उनके कबीर आदि शिष्य निरगुनिया जरूर बने। कबीरपंथियों ने भक्ति के प्रसार में रामानन्द के योग को स्वीकार करते हुए ही यह कहा था– "भक्ति द्रावड़ी ऊपजी, लाए रामानन्द। परगट किया कबीर ने सप्तदीप नव खंड।"

उत्तर भारत की ओर प्रवहमान भक्ति की रसधारा 1240 ई. में महाराष्ट्र में पहुँची। उस समय वहाँ के संत ज्ञानेश्वर बड़े प्रसिद्ध संत थे। महाराष्ट्र में उस समय शैवमतावलम्बी नाथपंथियों का प्रभाव बहुत था। ये लोग योग की साधनाओं के साधक थे, संत ज्ञानेश्वर स्वयं नाथपंथी थे। उन्होंने गीता पर ज्ञानेश्वरी व्याख्या लिखी थी जो भक्ति की अपेक्षा ज्ञानपरक अधिक थी, पर भक्ति के प्रवाह में ज्ञानेश्वर आये। उनके समकालीन संत नामदेव, 1270 ई० ने भक्ति के मार्ग में नाम स्मरण पर बड़ा बल दिया। नामदेव ने 'विट्ठल' सम्प्रदाय चलाया। इस सम्प्रदाय में वैष्णव और शैव भावों का अद्भुत व्यामिश्रण था–विट्ठल की मूर्ति का ऐसा स्वरूप बनाया गया कि विष्णु ने अपने सिर पर शिवलिंग को रखा हुआ है। महाराष्ट्र के साथ ही कर्नाटक में भी 1275 ई० में विट्टल की उपासना का प्रसार था और यह भागवतधर्म की ही उपासना थी। महाराष्ट्र में चकधर, गोरा कुम्हार, साँवलामाली, नरहरि सोनार, चोखाभंगी, सेना नाई आदि प्रसिद्ध संत हुए। ये संत जाति-बंधन को न मानते हुए

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्ति की गंगा में डूब गये। कर्नाटक में और गुजरात में माघवाचार्य मत सम्मत वैष्णव भक्ति 13वीं शताब्दी से प्रसरित हो गई थी। इस तरह भक्ति का यह प्रचार-प्रसार दक्षिण से उत्तर तक समग्र रूप में फैलने लगा। महाराष्ट्र के संतों और नाथ लोगों के प्रभाव से जाति-पाँति रहित शुद्ध निर्गुण भक्तों की परम्परा चली। गुजरात में भक्ति आन्दोलन राधा-कृष्ण की भक्ति तक सीमित रहा। राम की भक्ति चली, पर वहाँ उतना नहीं फैली। बंगाल में 15वीं शताब्दी चैतन्य और उनके शिष्यों ने भक्ति की ऐसी आनन्द की धारा बही जो बहुत प्रभावशाली सिद्ध हई। जयदेव और विद्यापति का साहित्य बंगाल की अमूल्य भक्ति निधि है। उत्तर भारत में हिन्दुओं में मुस्लिम लोगों की विजय के कारण और हिन्दुओं के प्रति बहुत उपेक्षा-भरे व्यवहार के कारण जो उदासीनता आई तो उन्हें संसार में दुख ही दुख दिखलाई दिया। उनकी परिस्थिति ने उन्हें विपत्ति में ऐसा पीसा कि उनका आनन्द प्राप्त करने का मन ही मर गया। भक्ति की धारा ने उनको आनन्द की अनुभूति का अवसर प्रदान किया। इस संदर्भ में उन सूफी सन्तों का का भी योग उल्लेखनीय है जिनका प्रवेश यहां 12वीं शताब्दी में चिश्ती सम्प्रदाय, 13वीं में सुहरावर्दी सम्प्रदाय, बाद में कादरी और नक्शबन्दी सम्प्रदाय–सूफी संतों के प्रसिद्ध सम्प्रदाय थे। इन भक्त-संतों ने हिन्दू और मुस्लिम लोगों को मिलाने का मार्ग सरल बनाकर प्रशंसनीय कार्य किया।

भक्ति पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि विद्वानों के विचारों में ऐक्य का अभाव रहा है। भक्तिमार्ग में ईश्वर के सामीप्य की सभी भक्त आचार्यों-कवियों ने स्पृहा रखी है परन्तु उनके साधनों में अतीव विभिन्नता देखने में आती है। फिर भी मोटे रूप में उसके दो प्रकार भक्ति-साहित्य में स्पष्ट रूप से उभरे हैं–निर्गुण निराकार और सगुण साकार। ब्रह्मोन्मुखी प्रवृत्ति के पक्ष में ये भक्ति के प्रकार, साधन ही हैं। दोनों को परमेश्वर के अनुभवात्मक ज्ञान से ही अंत में मोक्ष मिलता है। चरम लक्ष्य एक है, साधन भिन्न-भिन्न हैं। एक में ब्रह्म अव्यक्त है, बुद्धिगम्य है यानी ज्ञानगम्य है। उसे अव्यक्तोपासना या ज्ञानमार्ग या ब्रह्म विचार कहा गया है। कबीर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है–'तुम जनि जानो गीत है यह निज ब्रह्म विचार।' दूसरे में अव्यक्त ब्रह्म के बदले भगवान के व्यक्त स्वरूप को स्वीकृत किया गया है। सूर, तुलसी ने ब्रह्म को अव्यक्त मानते हुए भी व्यक्त स्वरूप पर मन रमाया है। सूर ने उसका अनुभव किया 'रूपरेख गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै। सब बिधि अगम बिचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै।' गीता में अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान् ने भी कहा कि अव्यक्त में चित्त की एकाग्रता करनेवालों को कष्ट होता है–'क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्।' इस तरह परमेश्वर की प्राप्ति में दोनों साधन परिणाम में सम हैं परन्तु सगुणभक्ति का मार्ग सरल है। भक्ति-साहित्य के दोनों शिरोमणि महात्माओं ने इस तत्त्व को पहचाना था। तुलसीदास 'जय सगुन निर्गुण रूप' कहकर सगुण के साथ निर्गुण को भी स्वीकार करते चलते हैं। वे अन्ततः परम विश्राम की स्थिति यानी ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति करते हैं। सूर भी सगुण स्वरूप

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

लीला-चिंतन में अनेक स्थलों पर अव्यक्त की दृष्टि रखते हैं। फिर भी वे ब्रह्मैक्य की कामना करते हैं–

चलि सखि तिहि सरोवर जाहिं ।
जिहि सरोवर कमल कमला रवि बिना विकसाहि ॥
हंस उज्ज्वल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहि ।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि चुनि खाहिं ।।

× × ×

देखि नीर जु छिलछिलौ जग, समझि कछु मन माहि ।
सूर क्यौं नहिं चलै उड़ि तह, बहुरि उड़िबौ नाहि ॥

इन भक्त कवियों का उपास्य ब्रहा सगुण है तो भी वह अव्यक्त अर्थात निराकार है। वस्तुतः मनुष्य के मन की स्वभाव की वृत्ति ऐसी है कि नेत्रादि इन्द्रियों के अगोचर में वह तदाकार हो नहीं पाता। मनुष्य की कामना ऐसे सर्वशक्तिसंपन्न, अचिन्त्य अभेद्य, ब्रह्मा की है जो उसके सुख-दुख का साथी हो, उसका अपना हो, उसका माता-पिता-बन्धु-सखा हो। उससे प्रेम करे, हँसे, बोले, उलाहना दे, उसके काम आये और अपने प्रत्येक कार्य में उसे साथ पाये। यह भावना सगुण रूप के माध्यम से साकार हुई।

कृष्ण, राम, शिव, शक्ति, हनुमान, गणेश–किसी की भी भक्ति करे, ये ईश्वर के प्रतीक हैं- उनके पीछे शक्ति सर्वान्तर्यामी की है। अतः भक्ति मार्ग में आराधना किसी भी देवता की की जाय, उसका फल सर्वव्यापी परमेश्वर ही देता है, न कि देवता। उच्च कोटि के भक्तों ने इसी से विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना के भेद को मिटाया है–यह भावना आज भी बड़ी अर्थभरी लगती है। इस सम्बन्ध में तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध कवि पोतन्ना का बड़ा अच्छा उदाहरण है। पोतन्ना शैव थे। उनके इष्टदेव राम थे। एक दिन पोतन्ना ध्यान में बैठे हुए थे कि उनके सामने उनके इष्टदेव राम आये और उन्होंने पोतन्ना से कहा कि तुम कृष्ण की कथा कहो। जब अपने इष्टदेव ही कृष्ण की कथा कहने को कहते हैं, तब क्या रुकावट है और पोतन्ना ने कृष्ण-कथाश्रित 'आंध्र महाभागवत' की रचना की। यह प्रसंग भक्तों की उस भावना का द्योतक है कि वे प्रतीक या विग्रह के पीछे निहित सत्य को पहचानते हैं। शिव, राम और कृष्ण को एक करने की यह भावना कलात्मक प्रतीत होती है। भक्तों के हृदय का यह रूप देश-काल-पर्यवसित नहीं है। इन प्रतीकों के मूल के सत्य को पहचानने से मतवादों की सहज ही समाप्ति हो सकती है। आज यह भावना अपने धर्म-सम्प्रदाय के अतिरिक्त, अन्य मतावलम्बियों के मूल के सत्य को पहचानने के लिए, विश्वव्यापी होती जा रही है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कृष्ण-भक्ति का प्रसार अष्टछाप के सम्प्रदायदीक्षित कवियों और सम्प्रदाय निरपेक्ष कवियों मीरा, रसखान आदि के चित्त को द्रवित करने वाले गीतों में हुआ। अष्टछाप के कवियों ने पुष्टिमार्गीय सेवा भावना से भगवान् कृष्ण और राधा के प्रति हृदय का आवेग व्यक्त किया। निम्बार्क, राधावल्लभ सम्प्रदाय, सखी और चैतन्य सम्प्रदाय ने उसे बढ़ाया। राम की भक्ति में तुलसीदास का अलग स्थान है। यों नाभादास, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान, आदि रामभक्त कवि हुए हैं, पर तुलसी के जैसा सम्पूर्ण भक्त और कवि कोई अवतरित नहीं हुआ। रामभक्ति में कृष्ण भक्ति के अधिक प्रचार के अनेक कारण इंगित किये गये हैं परन्तु मूल बात यह है कि राम का चरित एक बँधी हुई कथा है–उसमें कथा का क्रम विकास है। कृष्ण की लीलाओं में सम्बन्ध का सूत्र तो है परन्तु एक कथा का वह बन्ध नहीं है। मैथिली शरण गुप्त ने 'राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है' कहकर इसी ओर संकेत किया है। विदेशों तक में राम की लीला आज भी होती है। वहाँ उनके मर्यादित, आदर्श-रक्षक, भक्तवत्सल रूप में कम से कम विकसित कथाप्रसंग का गुण है। इसी से रामकथा अधिकतर प्रबन्ध काव्यों में ही लिखी गई और कृष्ण कथा मुक्तकों में। लोकरंजनकारी कीर्तन गीतों में उनका अपना सुरक्षित मूल्य है।

निर्गुण भक्ति में अन्तःसाधना पर बल है। पिंड में ब्रह्माण्ड की कल्पना ने साधक-भक्तों के एक वर्ग को अन्तर्मुखी बना दिया। छल रहित, संयमित, सात्त्विक जीवन के मूल्यों के साथ मन की साधना यहाँ आकर अधिक बलपूर्वक उभरी है। उसके लिए योग की क्रियाएँ सन्त-लोगों का प्रिय विषय रही हैं। बौद्ध सिद्धों और नाथसिद्धों के साथ गीता और भागवत पुराण में जिस व्यक्ति-साधना की प्रशंसा की गई है, हिन्दी के निर्गुण सन्तों ने उसको अपने जीवन में उतारा। यही कारण है कि इनमें से अनेक सन्त पहुँचे हुए व्यक्ति थे। उनसे सम्बन्ध रखने वाली अनेक चमत्कारी कथा-किंवदन्तियाँ प्रचलित रही हैं। इन्हें योग की क्रियाओं का दैनिक अभ्यास था। अष्टांग योग की साधना और उसकी अनुभूति निरगुनिये सन्तों ने नित्य नूतन रूप में की थी। कबीरदास के अनेक पदों में कुंडलिनी के जागरण की और समाधि-अवस्था की अनुभूति की अभिव्यक्ति–'चुवत अमीरस भरत ताल जँह शब्द उठै असमानी हो। सरिता उमड़ सिंधु को सोखे नहिं कुछ जात बखानी हो।' जैसे पदों में खूब मिलती है। दादू, नानक, रैदास, सुन्दरदास आदि निर्गुण सन्तों की इस ऐकान्तिक साधना का आज के युग में महान् मूल्य है। भक्तों ने समाज के कल्याण के साथ जो वैयक्तिक उच्चता के योगिक अभ्यास वर्णित किये वे आज और अधिक वांछनीय हैं। 'आज के संघर्षभरे वातावरण में व्यक्ति का जीवन अनिश्चय और विशृखलता से भर गया है। महानगरों के धुआँ, धुन्ध गर्द गुबार, ध्वनि और प्रदूषण से युक्त परिवेश में जीवन प्रतिदिन दूभर होता चला जा रहा है। ग्रामीण जनमानस भी कम उद्वेलित और सहज नहीं है। यानी आज मानव एक बड़े तनाव की जिन्दगी जी रहा है। उसका मन बेचैन और अशांत है, उसका तन दुर्बल और रोगग्रस्त है।' ऐसे समय में भक्ति-साहित्य की वैयक्तिक योग

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साधना के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आज योग के अनेक आश्रम देखने में आते हैं जहाँ ऐसे रोग-ग्रस्त व्यक्तियों का उपचार होता है। योग साधना के पक्ष की दृष्टि से भक्तिसाहित्य आज के युग में अत्यधिक उपयोगी होने से अत्यधिक प्रासंगिक है।

भक्ति के प्रसंग में सबसे उपयोगी आचरण की व्यावहरिकता है। भक्ति साहित्य के अनेक कोणों में–चाहे निराकार हो, साकार हो, वह कृष्णभक्ति हो या रामभक्ति, शिव के प्रति समर्पण हो या शक्ति के, बुद्ध को नमस्कार हो या महावीर स्वामी को–सबके पीछे उसका सिद्धांत पक्ष होता है, उसे ही दूसरे शब्दों में 'दर्शन' कहा गया है। दर्शन दृष्टि देता है; ज्ञान देता है। भक्ति उनका विवेक सम्मत व्यावहारिक प्रयोग है। यह व्यावहारिकता प्राचीन और नवीन नहीं होती। महाभारत के वनपर्व में एक कथा-प्रसंग है। [कौशिक नाम का ब्राहाण तप में संलग्न था कि वृक्ष के ऊपर बैठी बगुली ने उसके ऊपर बीट कर दी। ब्राहमण क्रोध भरी दृष्टि से बगुली की ओर देखा तो वह निष्प्राण होकर गिर पड़ी। ब्राहमण दुखी भी हुआ और भिक्षा के लिए गाँव में गया। वहाँ गृहिणी उसके लिए भिक्षा लेने भीतर गई तो उसका पति आ गया और वह पति को जल-भोजन देने में लग गई। विलंब से आई तो ब्राहमण कुपित हुआ। स्त्री ने कहा कि मैं वह बगुली नहीं हैं जिसे तुम जलाकर भस्म कर दोगे। मैं व्यावहारिक भक्ति में व्यस्त थी। ब्राहमण प्रभावित हुआ और स्त्री के कहने से जनकपुर में धर्मव्याध के यहाँ गया। धर्मव्याध मांस बेचने में व्यस्त था। ब्राहमण को आया देखकर अलग में उससे मिला और बतलाया कि आप ब्राहमण हैं और मुझसे व्यावहारिक धर्म-भक्ति को सुनने आये हैं। ब्राहमण पुनः विस्मित हुआ। व्याध ने उसे उपदेश दिया और अंत में अपना प्रत्यक्ष धर्मव्यावहारिक भक्ति का स्वरूप-अपने माता-पिता की सेवा शुश्रूषा बताया। व्याध की उच्च पितृभक्ति उसके व्यवहार में आयी हुई थी। व्यावहरिकता भी देशकाल में नहीं बँधती। भक्तों के संसार में ऊँच-नीच नहीं होता, ब्राहमण, व्याध नहीं होता। विवेकपूर्वक किया गया सात्विक कर्म प्रशंसनीय हो सकता है। आज दान-परोपकार के अनेक सात्विकशील वाले व्यक्ति मिलते हैं। उनकी सत्त्वनिष्ठा भक्तिमार्ग की निष्ठा है।

आज मनुष्य का जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण है। ऐसे में जो कर्मशील होगा वही सफल रहेगा। गीता के अर्जुन जब विषादग्रस्त हो जाते हैं तो कृष्ण उन्हें कर्म में प्रवृत्त करते हैं। भक्ति साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आज हमें कर्म की प्रेरणा देते हैं। आज वह अत्यन्त सार्थक और सटीक लगती है। इसक लिए गीता का उदाहरण बड़ा उपयुक्त है। अर्जन को जब विषाद हो जाता है और वह सगे-सम्बन्धी कौरवों को मारने की अपेक्षा भीख माँगना भी श्रेयस्कर समझ बैठता है, तो कृष्ण उससे कह सकते थे कि ठीक है। संन्यास ले लो और सारे प्रयत्न छोड़ो परन्तु कृष्ण उसे कर्म में प्रवृत्त करते हैं। जिसका जो कर्त्तव्य कर्म है उसके करने में ही कल्याण है। भक्ति-साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आज हमें प्रेरणा देते हैं। हनुमान जी ने अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का पद-पद पर परिचय दिया। महाभारत के भीष्म पितामह भगवद्भक्त थे। आजीवन ब्रहमचारी रहे, उन्हें क्या जरूरत पड़ गई थी कि

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

जीवनभर संघर्ष करते रहे? वे अपने आचरण की, अपने राज्य की, अपनी, स्वकीयजनों की रक्षा करने के कर्म में सतत निरत रहे। भक्ति साहित्य में वर्णित भक्तों ने दूसरों के उपकार के लिए, लोकसंग्रह के लिए प्रवृत्ति मार्ग को अपनाया। वह प्रवृत्ति आज भी वैसे ही स्तुत्य कही जाती है। जो कर्म में प्रवृत्त रहता है, लोकहितार्थ कर्म करता है, वह एक प्रकार से परमेश्वर की ही पूजा करता है। इसलिए जो व्यक्ति यह समझते हैं कि हम तो गृहस्थी आदमी हैं, हमारी परिस्थिति घर-बार छोड़कर भक्ति करने की नहीं है–यह उनकी भूल है। भक्ति तो प्रेरक है, शुभ की प्रेरक है। जिसकी सत् प्रवृत्ति है वह चाहे बढ़ई है, चाहे सुनार है, चाहे शिल्पी है या चित्रकार है, मजदूर है या महन्त है, वही महान् है। सचाई और ईमानदारी से नियम और निष्ठा से कर्म में प्रवृत्त होने वाला ऊँचा उठता है-वह चाहे अजामिल हो या गणिका हो, आम्रपाली हो या अंगुलि माल हो, निर्धन हो या भूमिपाल हो। यह भक्ति शाश्वत सत्य है–प्राचीन काल में भी, भक्ति-युग में भी और आज भी–अतः भक्ति-साहित्य इस दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है।

ऋषियों के इस देश के रक्त में, आस्तिकता के अमिट जीवाणुओं का सर्वांश में तिरोभाव कभी नहीं हुआ, अंश सदैव बना रहा है। भक्ति-साहित्य ने उस प्रच्छन्न प्रभाव को उभारने का काम किया है। भक्ति का कोई भी प्रकार हो, भगवतभक्त का आलम्बन किसी भी स्वरूप का हो, कुछ भी उसका प्रतीक हो, उसमें सात्विकता, उदात्तता, आस्तिकता, क्षमा, दया, प्रेम और सहिष्णुता का सहज ही समावेश हो जाता है। आधुनिक काल में भी उसकी उपादेयता आँखों से ओझल नहीं की जा सकती। भक्ति के आचार्यों-पंथियों ने देश के कोने-कोने में अगणित देव-मन्दिरों की स्थापना करके भक्तिभावना को साकार किया है। कश्मीर का व्यक्ति कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, मद्रास और मदुरै जाता है और दक्षिण का ईश्वरानुरागी सोम त्र्यम्बकेश्वर, अमरनाथ, बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी और मथुरा-काशी आता है। सबको सारा देश भक्ति के प्रसंग में एक-सा लगता है। भक्ति का स्वर भावना का है और भावना के सामने सारे तर्क निरस्त हो जाते हैं। अनेक स्थलों पर भक्ति-साहित्य के चिन्तकों के आयोजन-प्रवचन उस मूल भावना के प्रेरणा स्रोत हैं। यहाँ आकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो अच्छा हिन्दू है, वह अच्छा मुसलमान भी है और अच्छा सिख भी है, वही अच्छा जैनी है और बौद्ध भी है। भावना का सत्य त्रिकालबाधित होता है। विज्ञान के इस युग में मानव जाति के सामने अस्तित्व और अनस्तित्व का भयंकर प्रश्न उपस्थित हो गया है। भक्ति-साहित्य के प्रस्तोता सभी सिद्धान्तों के मूलभूत तत्त्वों में निहित सचाई का पूरी ईमानदारी से उपयोग-प्रयोग-प्रसार करें, तो उसकी प्रासंगिकता और अधिक बलवती दृष्टिगत होगी।

इस तरह से भक्ति के बीज हमें वैदिक काल से मिल जाते हैं। भक्ति की यह धारा न्यूनाधिक मात्रा में सदैव प्रवाहित होती रही। समय-समय पर अनेक भक्त संप्रदाय, सिद्धांत इसमें जुड़ते चले

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

गए। भक्ति की यह धारा दक्षिण से बहती, महाराष्ट्र से होती हुई उत्तर भारत में प्रवाहित हुई। उसके प्रचार-प्रसार में अनेक भक्तों, आचार्यों और कवियों का समय-समय पर योगदान होता चला गया और इस तरह से भक्ति का अखिल भारतीय स्वरूप उभर कर सामने आया।

4.3.1 बोध प्रश्न

1. भक्ति के विकास से संबंधित आलवार भक्तों के नाम बताइए।
2. भक्ति के दो रूप बताइए।
3. निर्गुण भक्ति का अर्थ समझाइए।
4. अष्टछाप के कवियों के नाम लिखिए।

4.4 अभ्यास प्रश्न

(1) भक्ति का उद्भव और विकास समझाइए।

(2) निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति का अंतर स्पष्ट कीजिए।

(3) भक्ति की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए।

4.5 संदर्भ-ग्रंथ

1. *'हिंदी साहित्य का इतिहास'* - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. *'हिंदी साहित्य का इतिहास'* - डॉ. नगेंद्र
3. *'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास'* - डॉ. भगीरथ मिश्र
4. *'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय'* - डॉ. दीनदयाल गुप्त

© DDCE, COL, SC University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत के कुछ प्रमुख भक्त और उनके विचार

(i) संत तिरुवल्लुवर (ii) आंडाल (iii) संत अक्कमहादेवी

डॉ. ऋषिकेश सिंह
गेस्ट टीचर
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संत– (i) तिरुवल्लुवर (ii) आंडाल (iii) संत अक्कमहादेवी
  1.2.1 जीवन वृत
  1.2.2 बोध प्रश्न
  1.2.3 धर्म
  1.2.4 बोध प्रश्न
  1.2.5 कृतित्व/ रचना कर्म
  1.2.6 बोध प्रश्न
  1.2.7 विचार
  1.2.8 निष्कर्ष
1.3 अभ्यास प्रश्न
1.4 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप निम्नलिखित कार्य को कर सकने में सक्षम हो सकेंगे–

- भारतीय भक्ति की महान परंपरा प्राचीनता और इसके अखिल भारतीय स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- भारतीय भक्ति परंपरा के माध्यम से आप अपने अंदर मानव मूल्यों का विकास कर सकेंगे।
- आप भारतीय नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति जागरूक हो सकेंगे।
- इन संत भक्त कवियों के जीवन और कर्म से परिचित हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य लेखन के अन्तर्गत भक्ति एक प्रधान विषय है। 'भक्ति' शब्द 'भज' धातु से बना है। जिसका अर्थ भजना या उपासना करना है। अपने इष्ट के प्रति एकनिष्ठ एवं अनवरत प्रेम ही भक्ति है। हिंदी के प्रतिष्ठित निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल का भी कहना है कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। भारतीय मध्यकालीन साहित्य के केंद्र में भक्ति क्षेत्र के प्रसिद्ध भक्तों एवं संतों की सुविख्यात बानियाँ, सूक्तियाँ, उपदेश एवं विचार हैं। जिनमें एक तरफ अपने आराध्य (ईश्वर) के प्रति अनन्य सपर्पण का भाव है तो वहीं दूसरी ओर सामूहिक तौर पर लोकमंगल, जनकल्याण एवं सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की मंगलकामना भी है। इस प्रवृत्ति ने ही न केवल उस काल को भक्तिमय बनाया बल्कि दूसरी ओर एक व्यापक जनजागरण की आधारशिला भी रखी। यही कारण है कि उस दौर के साहित्य को स्वर्णकालीन साहित्य कहा गया। हालाँकि उपरोक्त के अतिरिक्त इसके केंद्र में पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण अर्थात् चहुँ ओर से चूडांत भक्तकवियों के द्वारा लिखा गया कालजयी साहित्य है। भारत के कुछ प्रमुख भक्त एवं विचार नामक इस दूसरी इकाई में हम इन्हीं विभिन्न क्षेत्रों के भक्त कवियों के बारे में पढेंगे।

1.2 (i) संत तिरुवल्लुवर (ii) आंडाल (iii) संत अक्कमहादेवी

(i) संत तिरुवल्लुवर

1.2.1 जीवनवृत्त

'संत' शब्द भारतीय साहित्य, दर्शन, धर्म एवं अध्यात्म क्षेत्र में बहुप्रचलित है। हरदेव बाहरी के 'हिंदी शब्दकोश' के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ–सज्जन, महात्मा, परम धार्मिक एवं साधु व्यक्ति है। शायद इसीलिए कालजयी महाकवि तुलसीदास ने लिखा है–"संत हृदय नवनीत समाना।" अर्थात् संत का हृदय मक्खन (नवनीत) के समान शुभ एवं मुलायम होता है। ठीक वैसे ही (मक्खन) परम निर्मल संत दूसरों के दु:ख या वेदना को देखकर पिघल जाते हैं। कबीरदास ने भी अपने पदों में बार-बार 'सन्तों' (जैसे- संतों! आई ज्ञान की आँधी रे) पद का प्रयोग किया है, किन्तु इस संदर्भ में यह महत्त्वपूर्ण है कि भक्तिकालीन साहित्य में 'संत'

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

एवं 'भक्त' शब्द में प्रायः समानार्थ का भाव होते हुए भी गुणात्मक अंतर रखा गया है। यह अंतर न केवल साधना पद्धति का है बल्कि इष्ट के स्वरूप का भी है। जहाँ एक ओर 'संत' शब्द को निर्गुणोपासना से जोड़कर बताया गया है तो वहीं 'भक्त' शब्द सगुण भक्ति से संबंधित माना जाता रहा है। शायद यही कारण है कि डॉ. रामकुमार वर्मा जैसे साहित्येतिहासकार, शुक्ल जी द्वारा नामित निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा को' संतकाव्यधारा' नाम देते हैं, जो आज न केवल सर्वमान्य है बल्कि इस धारा के प्रमुख कवियों यथा कबीर, रैदास, दादू आदि को 'संत' कहने का साहित्यिक प्रचलन भी है। सुप्रसिद्ध साहित्येतिहासकार डॉ. बच्चन सिंह का यह मानना है कि चौदहवीं शताब्दी इस्वी में महाराष्ट्र के 'वारकरी संप्रदाय' के भक्तों के लिए संत शब्द का प्रयोग किया जाता था। वहीं इस मामले में प्रख्यात प्रगतिवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा–'अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा' को पूरी तरह मानते हैं और साथ ही सगुण मार्गियों के लिए भी 'संत' विशेषण को उपयुक्त मानते हैं ।

संत तिरुवल्लुवर दक्षिण भारत के सर्वधर्म समभाव रखने वाले इसी प्रवृत्ति के तमिल संत कवि हैं। यदि इनके जीवन वृत्त की बात की जाए तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जिस प्रकार कालिदास, कबीर, तुलसी, सूर आदि का प्रामाणिक जीवनवृत्त ज्ञात नहीं हो पाता ठीक उसी प्रकार से संत तिरुवल्लुवर का भी। उनके जीवन काल के बारे में प्रचलित किंवदंतियों में उनके समय का अनुमान 200 ई. पू. से लेकर 8वीं-9वीं शताब्दी के मध्य लगाया जाता रहा है। उनके एक व्यापारी मित्र एलेला शिंगन की ऐतिहासिक उपस्थिति के आधार पर उन्हें 2160 वर्ष पूर्व उपस्थित माना जाता रहा है। श्री एम. निवास अयंगर उन्हें 125 ई. में आस-पास का सिद्ध करते हैं। इस संदर्भ में ज्यादा प्रचलित मत श्रीमान वी. वी. एस. अय्यर का माना जाता है। उनके अनुसार इनका समय पहली से तीसरी शताब्दी के मध्य है जो कि इनका रचनाकाल भी है।

तिरुवल्लुवर को दक्षिण का कबीर कहा जाता है क्योंकि कबीर एवं इनके जीवन में आश्चर्यजनक समानता है। न केवल जीवन बल्कि विचारों में भी। सर्वप्रथम यदि जीवन परिचय की बात करें तो जिस प्रकार कबीर के संबंध में लहरतारा तालाब प्रकरण के साथ-

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साथ उनके वास्तविक माँ-बाप के स्थान पर पालित माता-पिता का नाम नीरू-नीमा ही पता चल पाता है, ठीक उसी प्रकार संत तिरुवल्लुवर के वास्तविक माता-पिता की जानकारी के बारे में भी कई प्रवाद प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार इनके जैविक पिता उच्चकुलीन नाम 'भगवान' एवं माता 'अडि' या 'आदि' परैया श्रमिक वर्ग से संबंधित थीं। इनके कुल सात पुत्र-पुत्रियाँ हुईं जिसमें संत तिरुवल्लुवर सबसे छोटे थे। यह प्रचलित है कि इस दंपति ने किसी कारणवश ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि अब जो संतान होगी उसे जहाँ वह पैदा होगी ईश्वरार्पित कर देंगे। कहते हैं कि भ्रमण के दौरान पाण्ड्य राजाओं की राजधानी मदुरा वर्तमान मद्रास महानगर में महाबलीपुरम से 36 किलोमीटर सुदूर उत्तर के एक छोटे से गाँव मयलापुर के एक बाग में संत तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। शर्तानुसार जन्म के समय ही न चाहते हुए माँ-बाप को इन्हें त्यागना पड़ा। इसके पश्चात कबीर के समान ही एक नि:संतान जुलाहा दम्पत्ति की निगाह इन पर पड़ी। ईश्वरीय कृपा समझकर दोनों ने सहर्ष न केवल बच्चे को स्वीकारा बल्कि बड़े यत्न और लाडपूर्वक बालक को पाला।

तमिल क्षेत्र में जुलाहा को 'वल्लुव' कहा जाता है। अतः वल्लुव के घर में लालन-पालन के कारण बच्चे का नाम 'वल्लुवर' पड़ा जो बाद में अपने उच्च दर्शन, धार्मिक भाव एवं विचारों के कारण तिरुवल्लुवर नाम से विख्यात हुआ। तिरुवल्लुवर नाम भी 'तिरु' और 'वल्लुवर' दो शब्दों के योग से बना है। जिसमें 'तिरु' शब्द 'श्री' अथवा 'माननीय' के समान आदरार्थक उपसर्ग है। इस प्रकार उनके नाम का अर्थ 'श्री वल्लुवर' माना जाता है। जिस प्रकार प्रसिद्ध शैव भक्त कवि विद्यापति को अन्य कई नाम व उपाधियों से जाना जाता है। ठीक उसी प्रकार संत तिरुवल्लुवर को भी थेवापुलवर, पोयामोड़ी पुलवर आदि अन्य नामों से जाना जाता है। जैसे महाराजा विक्रमादित्य के जन्मवर्ष के आधार पर विक्रमी संवत को मनाने का प्रचलन है ठीक उसी प्रकार संत तिरुवल्लुवर को केंद्र में रखकर 'तिरुवल्लुवर आन्दु' (वर्ष) मनाने की परंपरा है। हालाँकि वर्तमान अवधि में आमतौर पर पूरे तमिलनाडु में 15 या 16 जनवरी को 'तिरुवल्लुवर दिवस' मनाया जाता है जो कि प्रसिद्ध पोंगल समारोह का हिस्सा भी माना जाता है।

जनश्रुति के रूप में यह ज्ञात होता है कि तिरुवल्लुवर जब वयस्क हुए तो अपने जीवन की कथा जानकर उनके मन में वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ, जिसके फलस्वरूप माता-पिता से अनुमति लेकर वे तप हेतु जंगल की ओर चले गए। कठिन साधना से ध्यान, योग, सिद्धियाँ आदि प्राप्त कीं किंतु जिस प्रकार एक सीमा के पश्चात कबीर का योगमार्ग से मोहभंग हुआ

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

और उन्होंने कहा कि 'गगन पवाना दोनों बिनसैं, कहाँ गया अब जोग तुम्हारा' ठीक उसी प्रकार कुछ समय बाद तिरुवल्लुवर का भी जी उचट गया और उन्हें यह बोध हुआ कि संसार या गृहस्थी में रहकर ही सच्ची सेवा एवं साधना की जा सकती है।

तत्पश्चात तिरुवल्लुवर घूमते हुए एक नगर पहुँचे और किसी कारणवकश एक बड़े संकट में फंस गए। इस संकट से बाहर निकलने में उनकी मदद उस नगर के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति मार्गसहाय ने की। मार्गसहाय के एक रूप-गुण सम्पन्न, विदुषी पुत्री थी जिसका नाम वासुकी था। मार्गसहाय के आग्रह के पश्चात तिरुवल्लुवर ने वासुकी के आज्ञापालन की परीक्षा ली। उन्हें कीलों और लोहे के टुकड़े को पकाने के लिए कहा गया, उन्होंने बिना किसी वाद-विवाद के ऐसा ही किया। तिरुवल्लुवर ने वसुकी के साथ न केवल विवाह किया बल्कि जीवनपर्यंत बड़े ही श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रेम से इसका निर्वाह भी किया। कहा जाता है कि वासुकी अपने पति के प्रति इतनी अनुरक्त थीं कि अपने व्यक्तित्व को समर्पित कर एक आदर्श पत्नी का न केवल प्रतिमान स्थापित किया बल्कि तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ जीवन की प्रधानता संबंधी विचार को स्थापित करने में सर्वाधिक प्रमुख भूमिका भी निभाई।

विवाह के बाद तिरुवल्लुवर अपनी पत्नी के साथ गाँव मयलापुर में आकर रहने लगे। जिस प्रकार कबीर ने अपने जीविकोपार्जन के लिए लोई के साथ अपने पैतृक व्यवसाय बुनकरी जीवन को अपनाया ठीक वैसे ही उनसे पूर्व 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के तर्ज पर तिरुवल्लुवर ने आजीविका हेतु अपने पैतृक व्यवसाय बुनाई के काम को आरंभ किया। वासुकी जब तक जीवित रहीं, बड़े आनंद से उनका गार्हस्थ जीवन सादे, सहज एवं सरल तरीके से व्यतीत हुआ किंतु वासुकी की मृत्यु ने तिरुवल्लुवर को असह्य वेदना दी। जीवन सहचरी के न होने पर कभी न मिटने वाले वियोग से दु:खी होकर तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला जिसका आशय था- "ऐ प्रिये! तू मेरे लिए स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की। तू रात को मेरे पैर दबाती थी। मेरे सो जाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहले जाग उठती थी। ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझे छोड़कर जा रही है? हाय अब इन आँखों में नींद कब आएगी।" यह प्रसंग बताता है कि वासुकी यदि आदर्श स्त्री थीं तो तिरुवल्लुवर भी संत थे। केवल पत्नी के प्रति ही नहीं बल्कि संपूर्ण मानव एवं प्राणी समुदाय के लिए उनके हृदय में अगाध स्नेह एवं कल्याण का भाव था। मनुष्य और मनुष्य में उन्होंने कभी भेद नहीं किया। इसीलिए कुछ विद्वानों का यह मानना है कि द्रविड़

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

समुदाय द्वारा उन्हे संत कवि इसलिए माना जाता है क्योंकि वे जाति व्यवस्था में विश्वास नहीं रखते थे ठीक उसी प्रकार जैसे "जाति-पाति पूछै नहिं कोई" के उद्घोषक कबीर। शायद इन्हीं समानताओं के कारण उन्हें 'दक्षिण का कबीर' भी कहा जाता है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जी. अब्दुल कलाम का यह कहना है कि- "एक महान व्यक्ति जो मानवता के पथ-प्रदर्शकों में उच्च स्थान रखते हैं। वे संत तिरुवल्लुवर हैं। उन्होंने कपड़े बुनकर अपनी आजीविका चलाते हुए एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया। तिरुवल्लुवर शब्दों के बड़े गुणी थे- दो पंक्तियों की शब्द रचना में उन्होंने जैसे गागर में सागर भर दिया ।"

1.2.2 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए-
   (क) संत तिरुवल्लुवर हेतु कौन सी उपाधि सर्वाधिक प्रचलित है?
   (ख) तिरुवल्लुवर दिवस कब मनाया जाता है?
   (ग) द्रविड़ समुदाय द्वारा तिरुवल्लुवर को संत क्यों कहा गया?
2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
   (क) तिरुवल्लुवर दिवस.....समारोह का हिस्सा है। (पोंगल/ओणम)
   (ख) तमिल क्षेत्र में.....को वल्लुव कहा जाता है। (दर्जी/जुलाहा)
   (ग) मार्गसहाय के एक रूप-गुण सम्पन्न, विदुषी पुत्री थी जिसका नाम..... था। (आंडाल/वासुकी)

1.2.3 संत तिरुवल्लुवर का धर्म

संत तिरुवल्लुवर की सहजता, सरलता, समर्पण एवं निष्काम तथा निष्पक्ष प्रेम एवं कल्याण की चाह ने उन्हें अत्यंत लोकप्रिय बना दिया। जैसा कि इतिहास प्रसिद्ध है कि सुविख्यात व्यक्तित्व को प्रत्येक संप्रदाय अपने से जोड़कर बताने का प्रयास करता है, भले ही आरंभिक दिनों में उनका विरोध करते रहे हों। ठीक यही स्थिति तिरुवल्लुवर के संबंध में भी है अर्थात ये विषय बेहद विवादग्रस्त है कि वे किसी विशिष्ट समुदाय से संबधित थे। शैव, वैष्णव, जैन, और बौद्ध सभी उन्हें अपना बताने की चेष्टा करते हैं जहाँ सगुण मतावलंबियों का यह कहना है कि उन्होंने अपने ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' का आरम्भ सर्वशक्तिमान भगवान को

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

सादर नमन करते हुए किया है, तो वहीं निराकारवादियों का यह कहना है कि उन्होंने इस ग्रंथ का पहला अध्याय जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को समर्पित किया है। इस प्रकार दोनों संप्रदायों में उनकी प्रसिद्धि भक्तिक्षेत्र में उनके स्तर और महत्व को बताती है। इस संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे एक सच्चे उदारमना धर्मनिष्ठ संत थे। उनकी ख्याति का ये प्रमाण है कि चेन्नई के कोविल मंदिर से लेकर लंदन यूनिवर्सिटी एवं कन्याकुमारी के दक्षिणी सिरे पर स्थापित प्रतिमाएँ उनके आकाशधर्मी व्यक्तित्व का प्रसार कर रही हैं।

1.2.4 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए-

   (क) संत तिरुवल्लुवर के प्रसिद्ध ग्रंथ का क्या नाम है?

   (ख) चेन्नई के किस मंदिर में उनकी प्रतिमा है?

2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

   (क) अपने ग्रंथ का पहला अध्याय.....को समर्पित किया है। (ऋषभदेव/नेमिनाथ)

   (ख) संत तिरुवल्लुवर का व्यक्तित्व.....है। (समुद्रधर्मी/अकाशधर्मी)

1.2.5 कृतित्व/रचना कर्म

संत तिरुवल्लुवर को जीवन और जगत का व्यापक यथार्थ अनुभव था। पत्नी की मृत्यु के बाद वियोग की उस घनीभूत पीड़ा ने गहरी जीवनानुभूतियों के साथ मिलकर उनकी कवित्व शक्ति को जो आकार दिया उसी प्रकार का फल उनकी महानतम रचना 'तिरुक्कुरल' है। इस रचना के नाम में दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं- (1) तिरु (2) कुरल अर्थात तिरुवल्लुवर के द्वारा रचित 'कुरल'। दरअसल कुरल तमिल भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ 'छोटा' होता है। यह तमिल भाषा का सबसे छोटा छंद है जो लगभग पौने दो पंक्तियों में ही पूरा हो जाता है, ठीक कुछ दोहे की तरह। जिस प्रकार कबीर ने साखियों में दोहे के माध्यम से आँखों देखी जीवन-जगत की प्रभावी बातें कहीं हैं, ठीक वैसे ही संत तिरुवल्लुवर ने कुरल में। इसीलिए डॉ. कलाम ने अपने साक्षात्कार में कहा कि- "दो पंक्तियों की शब्द रचना में उन्होंने जैसे गागर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

में सागर भर दिया है।" भारतीय साहित्य एवं तमिल जाति की सम्यक समझ इस ग्रंथ के बिना नहीं की जा सकती। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का भी इसके संबंध में यही मानना था- "तमिल जाति की अंतरात्मा और संस्कार ठीक तरह से समझने के लिए 'तिरुक्कुरल' का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं यदि कोई चाहे कि भारत में समस्त साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाए तो तिरुक्कुरल को बिना पढ़े उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता।"

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व लिखे 'तिरुक्कुरल' में कुल 133 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में 10 पद हैं। इस तरह इस ग्रंथ में कुल 1330 कुरल है। 'कुरल' की अधिकता के कारण इस ग्रंथ को संक्षेप में 'कुरल' भी कहा जाता है। ये अध्याय कुल तीन मुख्य भागों या खंडों में विभक्त हैं। प्रथम खंड 'अरम' है इसमें कुल 38 अध्याय व 380 कुरल हैं। यह खंड 'अरथुपल' यानि सद्गुणों पर आधारित है, जिसमें विवेक और सम्मान के साथ अच्छे नैतिक व्यवहार अर्थात सदाचरण की चर्चा की गयी है। वहीं दूसरा खंड 'पोरुल' है। यह सबसे बड़ा खंड है। इसमें 70 अध्याय व कुल 700 कुरल हैं। यह भाग 'पोर्तुत्पल' यानी संपत्ति एवं सांसारिक व्यवहारों की चर्चा पर आधारित है। इस खंड में न केवल सामाजिक जीवन की आधारभूत बातें हैं बल्कि शासन व राजव्यवस्था पर भी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ हैं। तीसरा खंड 'काममं' या 'इनबम' नाम से प्रचलित है। इसमें शेष 25 अध्याय एवं 250 कुरल हैं। यह सबसे छोटा खंड है जो 'कामाथुप्पल' या 'इनबाथुप्पल' अर्थात मानवीय प्रेम एवं मनुष्य के आत्मिक विजय पर आधारित है। अपने साक्षात्कारों में डॉ. कलाम ने इसके स्वरूप पर बेहद सटीक टिप्पणी की है- "कुरल न तो धर्मग्रंथ है, न ही महाकाव्य; बल्कि यह जीवन की कला पर लिखा गया एक असाधारण ग्रंथ है, जो मानवीय जीवन की नींव में पैठकर हमारा दिशा-निर्देशन करता है।" भारत के सुदूर दक्षिण कन्याकुमारी में स्थापित संत तिरुवल्लुवर की विशाल प्रतिभा का निर्माण उनके ग्रंथ की संकल्पना से संबंधित है। प्रतिमा की 133 फीट की ऊंचाई, 133 अध्यायों पर आधारित है तो वहीं उनकी तीन अंगुलियाँ अरम, पोरुल और काममं नामक तीन प्रमुख विषय सदाचार, समाज और प्रेम को सूचित करती हैं।

'तिरुक्कुरल' में संपूर्ण मानवीय जीवन को उच्च आदर्शों, मूल्यों आदि को केंद्र में रखते हुए चित्रित किया गया है। इसमें सभी प्रकार के उच्च-निम्नगत भेदभाव का विरोध, समानता, एवं बंधुत्व आदि का प्रचार है। इस ग्रंथ पर पारंपरिक हिंदू विचार एवं जीवन-संस्कृति की सर्वत्र छाया व्याप्त है। इसीलिए 'तमिल वेद' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का यह मानना है- "तिरुक्कुरल विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

व्यवहारिक ज्ञान की खान है। इस अद्भुत ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता और चमत्कार यह है कि इसमें मानव चरित्र और उसकी दुर्बलता की तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकता का प्रतिपादन किया गया है। विचार के सचेत और संयत औदार्य के लिए तिरुक्कुरल का भाव एक ऐसा उदाहरण है जो कि बहुत काल तक अनुपम बना रहेगा। कला की दृष्टि से भी संसार के साहित्य में इसका ऊँचा स्थान है।"

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि इस ग्रंथ पर हिंदू विचार पद्धति की स्पष्ट छाप है। यही कारण है कि हिंदू धर्म दर्शन के तीनों प्रमुख पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तीनों का समुचित प्रतिपादन तीन खंडों में किया गया है। डॉ. रवींद्रनाथ सिंह द्वारा लिखित लेख 'तमिल काव्य सर्वधर्म समभाव' में इस तथ्य पर जोर है कि उन्होंने इन तीनों पुरुषार्थों का न केवल बहुत सुंदर एवं सजीव वर्णन किया है बल्कि इतनी सरल एवं सटीक व्याख्या अन्य ग्रंथों में दुर्लभ है।

वस्तुतः यह ग्रंथ एक मुक्तक काव्य है। फिर भी प्रत्येक कुरल स्वतंत्र तौर पर न केवल अर्थवत्तापूर्ण हैं, बल्कि विषय की दृष्टि से भी ये पूर्व के कुरल एवं अपने पूर्ववर्ती अध्याय से परस्पर जुड़े हुए हैं। मुक्तक काव्य होते हुए भी संत तिरुवल्लुवर ने महाकाव्य की भाँति इस ग्रंथ के आरम्भ में ईश्वर वंदना की है। इसके प्रथम कुरल का भावानुवाद कुछ प्रकार किया गया है-

"जैसे 'अ' है सब अक्षरों का मूल।
वैसे भगवान हैं सारे जगत का मूल।।"

अर्थात् जैसे वर्णमाला का आरंभ 'अ' नामक स्वर जो कि प्रकृति में शुद्ध और मात्रा में अपरिवर्तनीय है, वैसे ही इस जगत का सार ईश्वर निर्मल, अखंड और सर्वव्यापी है। वस्तुतः तिरुवल्लुवर के भगवान सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक हैं। इसलिए यह निश्चित तौर कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ऋषि अगस्त्य, आदि शंकराचार्य, गुरु गोरखनाथ, एवं गुरु रामानंद जैसे युग-प्रवर्तक महात्माओं ने पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण के मध्य सांस्कृतिक एकता की नींव रखी ठीक उसी प्रकार तमिल के महान संत कवि तिरुवल्लुवर ने भी दक्षिण क्षेत्र में सर्वप्रथम यही प्रयास अपनी रचना 'तिरुक्कुरल' के माध्यम से किया।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

संभवतः यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की अस्मिता के आधार स्तंभों में जिस प्रकार वेदों को केंद्र में रखा जाता है। ठीक उसी प्रकार तिरुक्कुरल को भी 'तमिल का वेद' कहा जाता है। प्राचीनतम तमिल संगम साहित्य में 'तिरुक्कुरल' का स्थान 'नालियार दिव्य प्रबंधनम' की भांति ऊँचा एवं श्रद्धेय है। इसी कारण इसे 'तमिल वेदम' की संज्ञा दी गयी है। इस 'कुरल' के लोकप्रियता एवं कालजयिता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि संभवतः रामायण, गीता, बाइबिल, कुरान के बाद 'कुरल' ही सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित ग्रंथ है। 1730 ई. में इसका लैटिन अनुवाद कोस्टांजो बेस्ची द्वारा किया गया। हिन्दी में इसका प्रसिद्ध अनुवाद 1930 ई. में श्री क्षेमानंद 'राहत' ने 'तमिल-वेद' नाम से की जिसकी भूमिका श्री चक्रवर्ती गोपालाचारी ने लिखी थी। इसके अतिरिक्त इसका फ्रेंच, जर्मन, संस्कृत, सिंहली, मलयालम, बांग्ला, कन्नड़, तेलगु, थाई, गुजराती आदि में अनुवाद हो चुका है। इसके थाई एवं गुजराती संस्करण का लोकार्पण तत्कालीन माननीय प्रधानमंत्री द्वारा भी किया गया। अपने लोकार्पण उद्बोधन में उन्होंने इस ग्रंथ को धरोहर बताते हुए जीवन-जीने के लिए एक 'गाइडिंग लाइट' कहा। इस ग्रंथ को केंद्र में रखकर जी. यू. थोप ने संत तिरुवल्लुवर को 'विश्व मानवता का अनुगायक' कहा। अल्बर्ट श्वाइत्जर ने इस ग्रंथ में व्यक्त उदात्त भावना एवं प्रज्ञा को विश्व साहित्य में अप्रतिम कहा। 'राष्ट्रीय धरोहर' नामक पुस्तक के लेखक वेदव्यास का इस ग्रंथ के संबंध में सर्वोचित सटीक टिप्पणी है कि- "तमिल साहित्य में इसका वही स्थान है जो संस्कृत में गीता, हिंदी में रामचरितमानस और अंग्रेजी में बाईबिल का है।" साहित्य अकादमी द्वारा 'तिरुवल्लुवर' नामक एक लघु पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसके लेखक एस. महाराजन हैं। उन्होंने लिखा है कि- "आज से करीब दो हजार वर्ष पूर्व तमिलनाडु प्रदेश में तिरुवल्लुवर नाम से एक बड़े मनीषी संत हुए। उनकी वाणी से निःसृत अमर रचना 'तिरुक्कुरल' तमिलनाडु के बौद्धिक, साहित्यिक, धार्मिक क्षेत्रों में दो शताब्दियों से अपना वर्चस्व कायम किए हुए है।" इस प्रकार संत तिरुवल्लुवर के जीवनवृत्त एवं कृतित्व के विशिष्ट पक्षों को पढ़ा व समझा जा सकता है। इसके आगे अब हम उनके विचारों को समझने का प्रयास करेंगे।

1.2.6 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में दीजिए-

   (क) चैन्नई के किस मंदिर में संत तिरुवल्लुवर की प्रतिमा है?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) संत तिरुवल्लुवर के ग्रंथ 'तिरुक्कुरल' में कुल कितने अध्याय एवं कुरल हैं?

(ग) 'तमिल वेद' नाम से कौन सा ग्रंथ प्रचलित है?

(घ) 'तिरुक्कुरल' का हिंदी अनुवाद किसने किया?

2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) कुरल तमिल भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ..... होता है। (छोटा/बड़ा)

(ख) कुरल..... भाषा का सबसे छोटा छंद है, जो लगभग पौने दो पंक्तियों में ही पूरा हो जाता है। (तेलुगु/तमिल)

(ग) 'तिरुक्कुरल' के प्रत्येक अध्याय में कुल.....छंद/कुरल हैं। (10/15)

(घ) 'तिरुक्कुरल' ग्रंथ एक..... काव्य है। (मुक्तक/प्रबंध)

1.2.7 संत तिरुवल्लुवर के विचार

संत तिरुवल्लुवर के विचारों के दो स्त्रोत हैं। प्रथम उनसे संबंधित प्रेरक प्रसंग एवं प्रकरण तथा दूसरा 'तिरुक्कुरल' में निहित प्रमुख जीवन-दर्शन। इन दोनों स्त्रोतों में सर्वप्रथम हम उनसे संबंधित प्रेरक प्रकरणों एवं प्रसंगों की चर्चा करेंगे।

सर्वप्रथम गृहस्थ जीवन की महत्ता को स्थापित करने संबंधी एक बेहद चर्चित प्रसंग है। वस्तुतः भारतीय दर्शन क्षेत्र में गृहस्थ बनाम संन्यास का मुद्दा बहुत प्राचीन है। भक्त-प्रवर तुलसीदास के 'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग संत कहंत जे अंत लहा है' की तर्ज पर उनसे पूर्व संत तिरुवल्लुवर वैराग्य एवं सन्यास जीवन की जगह गृहस्थ एवं सांसारिक जीवन को महत्त्वपूर्ण मानते थे और मयलापुर में अपनी पत्नी के साथ सरलतापूर्ण, सादा एवं दिव्य जीवन भी जी रहे थे जो दूसरों के लिए मानक या आदर्श था। कहते हैं इसकी चर्चा सुनकर एक संन्यासी उनके घर आया जिसका यह विश्वास था कि स्त्री के साथ रहने पर ईश्वर भक्ति नहीं हो सकती। उसने तिरुवल्लुवर से भी इस संबंध में पूछा पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया बल्कि यह कहा कि आतिथ्य स्वीकार कर आप स्वयं अनुभव कर लें। पति-पत्नी की परस्पर निष्ठा, प्रेम, सहयोग एवं समर्पण ने उनकी धारणा बदल दी और जाते समय प्रसन्न होकर कहा कि आप दोनों जैसा दांपत्य हो तो गृहस्थ जीवन ही श्रेष्ठ है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

दूसरा प्रमुख प्रसंग श्रम के महत्व एवं कठिन से कठिन समय में भी धैर्य एवं संयम की शिक्षा देता है। प्रकरण है मयलापुर नगर के सबसे समृद्ध व्यापारी शिंगन के उदंड एवं आशिष्ट व्यवहारी पुत्र का, जिसने तिरुवल्लुवर से एक साड़ी मांगी और उसका मूल्य पूछकर लगातार उसके आधे-आधे टुकड़े करता गया और तब तक नहीं रुका जब तक कि तिरुवल्लुवर ने उसका मूल्य शून्य न बोल दिया। साड़ी फटकर तार-तार हो चुकी थी। लेकिन अभी भी उसका अहंकार आसमान पर था। यही नहीं इस मदांधता में अपने धन का प्रदर्शन करते हुए तिरुवल्लुवर को पूरी साड़ी का मूल्य देने लगा। तिरुवल्लुवर ने बड़ी ही शांति, धैर्य और विनम्रता का परिचय देते हुए कहा पुत्र! बात धन की है ही नहीं बात श्रम की है जिसे तुमने फाड़ा है उसे बनाने में लगे कपास को पैदा करने में किसान, उससे सूत बनाने में जुलाहा, रंगने में रंगरेज एवं साड़ी तैयार करने में बुनकर ने कितनी मेहनत की है। तुमने उन सभी के परिश्रम का निरादर किया उसकी कोई कीमत नहीं है। साड़ी तो दूसरी बन सकती है किंतु इस श्रम की पूर्ति एवं उसका सम्मान कैसे करोगे? लड़के को न केवल अपनी गलती का एहसास हुआ बल्कि क्षमा मांगते हुए उनके पैरों पर गिर पड़ा।

तीसरा प्रमुख प्रसंग 'अन्न ही ईश्वर है' से संबधित है। तिरुवल्लुवर जब भी भोजन ग्रहण करते नियमित रूप से एक कटोरी में साफ पानी और सुई रखवा लेते। आज्ञापरायण (पत्नी) होने के कारण उन्होंने कभी इसका कारण नहीं पूछा। परंतु मृत्यु के समय उन्होंने तिरुवल्लुवर से इसका रहस्य जानना चाहा। उन्होंने कहा कि यदि परोसते समय कोई अन्न का दाना जमीन पर गिर पड़ता तो उसे सुई से उठाकर पानी में धोकर मैं स्वयं खा जाता किंतु तुम्हारी सावधानी ने कभी ऐसा होने का मौका ही नहीं दिया। इस प्रकरण से उनकी अन्न के महत्व एवं उपयोगिता संबंधी चिंता का पता चलता है।

इन तीन प्रसंगों के अतिरिक्त कई ऐसे संक्षिप्त प्रसंग हैं जिनसे जीवन संबंधी उपयोगी बातों का पता चलता है। यथा- एक कथा सहनशीलता की है। जिसमें एक अविवाहित युवती द्वारा गर्भवती होने पर तिरुवल्लुवर के ऊपर लांछन लगाना, लोगों द्वारा भला-बुरा कहना किन्तु 'जैसी प्रभु की इच्छा' कहकर स्वीकार करना एवं संत की सहनशीलता देखकर युवती का पूरे गाँव के सामने माफी मांगना व सत्य बात को बताना। दूसरा एक शराबी द्वारा शराब न पिए जाने के लिए दिए जाने वाले उपदेश के संबंध में कुतर्क करते हुए यह पूछना कि क्या अंगूर और चावल बुरी चीज है? फिर उसके मिश्रण से बने शराब का सेवन बुरा क्यों?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तिरुवल्लुवर द्वारा उसके प्रश्न का उत्तर मिट्टी, पानी एवं उसके मिश्रण से बने ईंट के प्रहार का उदाहरण देकर बुराई पर तार्किकता को स्थापित करना आदि।

इन प्रेरक प्रसंगों के साथ-साथ उनके नाम से कुछ चमत्कारिक प्रकरण भी प्रसिद्ध हैं। जैसे- तिरुक्कुरल की ग्रंथ परीक्षा में सरोवर में खिले स्वर्णकमल का ग्रंथ को अपने में सिकोड़कर स्वयं को उसका बाहरी आवरण बना देना या अपने श्रद्धालु भक्त एवं मित्र एलेलिशिगन की रेती में फंसी जहाज को 'एलेलैया' कहकर निकाल देना, जिसके बाद से आज तक मद्रास के तट पर नाव उतारते समय नाविकों और मजदूरों द्वारा 'एलेलैया' शब्द का उच्चारण उनकी अहंभाव शून्यता एवं लोगों का उनके प्रति विश्वास एवं स्नेह दिखता है।

प्रेरक प्रसंगों एवं प्रकरणों के पश्चात संत तिरुवल्लुवर के विचार 'कुरल' के पंक्तियों के पद्यात्मक एवं गद्यात्मक अनुवादों में देखे जा सकते हैं। सर्वप्रथम उनके विचार संबंधी पद्यात्मक काव्य पंक्तियाँ निम्न हैं-

- "तियवै तीय पयतलाल कीयवै। तीयिनुम अंज पड़य।"
  (अर्थात् बुरे कर्म का फल बुरा होता है। अतः इन्हें करने से डरना एवं बचना चाहिए)
- "तालाट्रि तंद पोरुल-एल्लाम तक्करक वेलाणमई सइदर पोरुट्ट"
  (अर्थात् योग्य व्यक्ति परिश्रम से जो धन कमाता है उसे दूसरों की भलाई में लगाता है।)
- "कैमारू वेंता कटप्पुट मरिमट्टु एन अर्रुन कोल्लो उलूक।"
  (अर्थात् कर्तव्य के बदले में कुछ भी नहीं चाहता, वर्षा की कीमत संसार कैसे अदा कर सकता है।)
- "वेल्लत तनैया मलारनित्यम मंतरतम उल्लत तनैयतु उयर्वु।"
  (अर्थात् कमल सदैव ताल के ऊपर खिलता है, मन की अवस्था भी ऐसे ही विचारों के तल पर निर्भर है।)
- "इतुंपइक्की इतुंपई पटुप्पर इतुंपइक्कू इतुंपई पटाटवर।"

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(अर्थात् जो विपत्ति के समय कठिन परिस्थितियों का सामना शांत मन से करते हैं। वे उससे श्रांत न होकर उस पर विजय प्राप्त करते हैं ।)

- "उल्लुवा तेल्लम उयर्वुल्लल मर्रतु तल्लिनन तल्लामई नीरत्तु।"
  (अर्थात् विचार सदैव सुंदर और महान होने चाहिए । ऐसे विचारों की असफलता से भी उनकी गुणवत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है।)
- "उपकारी नहीं चाहते,पाना प्रत्युत्पकार।
  बादल को बदला, भला क्या देता संसार ।।"
  (अर्थात् उपकारी व्यक्ति भलाई के बदले कुछ नहीं चाहता भला बादल को वर्षा के बदले ये संसार क्या दे सकता है?)
- "दान-पुण्य-तप-कर्म भी करते हैं जो लोग।
  उनसे बड़े हैं हृदय से, सच बोलें जो लोग ।।"
  (अर्थात् दान-तप जैसे पुण्य कर्म महान हैं वह व्यक्ति और भी महान हो जाता है जो इनके साथ-साथ सच भी बोलता है।)
- "करे जो बुराई, तुम उसकी भी करो भलाई।
  नहिं संतों की संगति से तुम्हें लाभ क्या भाई ।।"
  (अर्थात् जो तुम्हारी बुराई करे करने दो किन्तु समय पड़ने पर तुम उसकी भलाई ही करो अन्यथा संतों की संगति से क्या लाभ हुआ।)
- "सर्वोत्तम धर्म संसार में उसे ही माना जाय।
  जहाँ किसी को थोड़ा भी न सताया जाय ।।"
  (अर्थात् संसार का सर्वोत्तम धर्म दूसरों को कष्ट न देना बल्कि उनका कल्याण करना है।)
- "सीखो खाना बांटकर, करो जीवों की रक्षा।
  सब ग्रंथों-शास्त्रों में यही धर्म है अच्छा ।।"
  (अर्थात् सभी से मिल बांटकर खाना-पीना रहना चाहिए, जीवों पर दया करें यही सर्वोत्तम कर्म व धर्म है।)

© UDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इन काव्यात्मक पद्यों के अतिरिक्त संत तिरुवल्लुवर के विचार सूक्तियों के रूप में भी बहुप्रचलित हैं। ऐसी ही कुछ गद्यात्मक सूक्तियाँ निम्न हैं-

- "मन को निर्मल रखकर सदाचार का पालन करने वाले पर भगवान स्वयं कृपा को आतुर रहते हैं।"
- "हंसी-मजाक में भी कड़वे वचन आदमी के हृदय में चुभ जाते हैं।"
- "नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना निःसंदेह बुरा है, मगर सामने हँसकर बोलना और पीछे चुगलखोरी करना उससे भी बुरा है।"
- "संस्कृति में जितनी श्रेष्ठता होती है। व्यक्ति की प्रकृति में भी उतनी ही श्रेष्ठता रहती है।"
- "सुनने वालों की क्षमता को ध्यान में रखकर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा धर्म, अर्थ का कोई महत्त्व नहीं रहेगा।"
- "जिसकी चाह मिट गयी वही पूर्ण रूप से स्वतंत्र है बाकी स्वतंत्र नहीं हो सकते।"
- "भूख को मिटाने में ही तप साधना की परीक्षा है। परंतु उससे भी अधिक बड़ी विजय दूसरों की भूख को दूर करने में है।"
- "पानी मिट्टी के गुण को बताता है, धरती पर बहता है और उसी के समान हो जाता है।"
- "जो लोग दूसरों के साथ खुशीपूर्वक रहना नहीं जानते उन्हें यह संसार दिन में भी रात के समान अंधकारमय दिखेगा।"
- "खेतों में हल चलाने वाले किसान ही अन्य कार्य में लगे लोगों की प्राण रक्षा करते हैं। इसलिए वही इस संसार के आधार हैं।"
- "व्यक्ति की आसक्ति जैसे-जैसे मिटती जाएगी वह दुःखों से मुक्त होता जाएगा।"

1.2.8 निष्कर्ष

इस प्रकार कुछ प्रमुख प्रसंगों, प्रकरणों, उक्तियों, सूक्तियों आदि के माध्यम से संत तिरुवल्लुवर के विचारों को समझा जा सकता है, इसके केंद्र में ईश्वर भक्ति, सदाचार, परोपकार, भाईचारा, लोकमंगल, जनकल्याण, धर्म एवं संस्कृति रक्षा जैसे विचारों के साथ-

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

साथ राजशासन, कृषि, चरित्र, सज्जनता, ज्ञानार्जन, निर्मल एवं पवित्र सदगृहस्थ जीवन जैसे मूल्यों की व्यापक चर्चा है। अतः 'तमिल वेद' के सृजनकार एवं 'दक्षिण के कबीर' कहे जाने वाले संत तिरुवल्लुवर को यदि भारतीय धर्म, अध्यात्म व संस्कृति का प्रतीक पुरुष कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि उनके कालजयी ग्रंथों के एक-एक पदों में विश्वकल्याण का गायन है। वे वास्तविक अर्थों में वैश्विक मानवता के संरक्षक अमर व्यक्तित्व हैं।

1.3 अभ्यास प्रश्न

1. संत तिरुवल्लुवर के जीवनवृत्त एवं रचनाकर्म को सविस्तार लिखें?
2. संत तिरुवल्लुवर को दक्षिण का कबीर कहना कहाँ तक उचित है? सविस्तार चर्चा करें?
3. संत तिरुवल्लुवर कृत 'तिरुक्कुरल' में निहित मानव मूल्यपरक शिक्षाओं पर प्रकाश डालें?
4. संत तिरुवल्लुवर के जीवन संबंधी प्रसंग किस प्रकार मानव जीवन हेतु प्रेरक हैं? विवेचना करें?

1.4 संदर्भ ग्रंथ

1. *हिंदी साहित्य का इतिहास* - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*- बच्चन सिंह
3. *भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता*- डॉ. कृष्ण गोपाल
4. *भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य*- शिवकुमार मिश्र
5. *भक्ति का उद्भव और विकास और वैष्णव भक्ति के विविध रूप*- डॉ. नगेंद्र
6. *संत तिरुवल्लुवर*- एस. महाराजन

(ii) आंडाल

1.2.1 व्यक्तित्व एवं जीवनवृत्त

संत तिरुवल्लुवर की भाँति सुप्रसिद्ध द्रविड़ भक्त कवियत्री आंडाल का संबंध भी तमिलनाडु के प्रसिद्ध शहर मदुरा या मदुरै से है। भक्ति के लिए प्रसिद्ध मदुरा को दक्षिण की मथुरा भी कहते हैं। यहीं के श्री विल्लीपुत्तूर गांव में 'दक्षिण की मीरा' कही जाने वाली

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आंडाल की जन्मभूमि माना जाता है। हालाँकि अन्य संतों एवं भक्तों की भाँति आंडाल के भी जन्म संबंधी विवरण हेतु प्रचलित जनश्रुतियों का ही आश्रय लेना पड़ता है। यह माना जाता है कि उनका जन्म सामान्य रूप से नहीं हुआ बल्कि आठवें आलवार एवं परम वैष्णव भक्त पेरियाल्वार जिनका सुप्रसिद्ध संस्कृत नाम विष्णुचित्त है को उनकी फुलवारी में तुलसी पौधों को सींचते हुए रहस्यमय ढंग से शिशु रूप में प्राप्त हुई थीं। जन्म का उचित आधार न मिल पाने के कारण आंडाल को भी पृथ्वी तनया सीता की भाँति माना गया। जिस प्रकार सीता को 'भूमिजा' कहा जाता है ठीक उसी प्रकार आंडाल को भी 'भूदेवी का अवतार' माना जाने लगा।

जीवनवृत्त की भाँति जन्मकाल एवं उपस्थित समय को लेकर भी विद्वानों में मतभिन्नता है। हालाँकि कुछ मान्य मतों में श्री राघवय्यंगर एवं मीरा के साथ आंडाल पर तुलनात्मक शोध कार्य करने वाले शोधार्थी डॉ. एन. सुन्दरन इनकी जन्मतिथि 715 ई. के आसपास मानते हैं जबकि 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "दक्षिण में आंडाल इसी प्रकार की एक प्रसिद्ध भक्तिन हो गयी हैं जिनका जन्म संवत् 773 में हुआ था।" अतः शुक्ल जी ने भी इनका समय 716 ई. के आसपास ही माना है। इस प्रकार ये कहा जा सकता है कि आंडाल का जन्म 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। हालाँकि शुक्ल जी ने इसी प्रकरण के आगे आंडाल को देवदासी प्रथा से संबंधित भक्तिन भी कहते हैं जिसके बारे में अन्य साहित्येतिहास ग्रंथों के भिन्न मत भी हैं।

आंडाल को गोदा, गोदांबा, कोदै आदि नामों से भी जाना जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जहाँ आंडाल इनका तमिल नाम एवं गोदा संस्कृत नाम माना जाता है, वहीं एक मान्यता यह भी प्रचलित है कि बचपन में देवी आदेश पाकर शिशु का नाम गोदा रखा गया। तमिल में 'कोदै' शब्द का अर्थ फूल के समान कोमल एवं सुंदर होता है। जबकि आंडाल नाम अपने प्रियतम इष्ट भगवान श्री रंगनाथ की मधुरोपासना के बाद मिला। आंडाल नाम के भी कई अर्थ प्रचलित हैं जिनमें लक्ष्मी, ईश्वर द्वारा उद्धार, शासिका, ईश्वर प्रेयसी आदि प्रमुख हैं।

विष्णुचित्त ने ईश्वरकृपा मानकर बड़े प्यार और श्रद्धा भाव से आंडाल का लालन-पालन किया। घर के सात्विक एवं अध्यात्मिक परिवेश और दैव कृपा के कारण बचपन से ही आंडाल में कृष्ण भक्ति के रूप में भगवद्भक्ति एवं भगवत्प्रेम के प्रति आकर्षण बढ़ा। प्रतिदिन वे

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ईश्वर भक्ति के गीत गातीं और पिता के साथ बड़े प्रेम से मन्दिर के लिए माला गूंथा करतीं। ये माला विष्णुस्वरूप भगवान श्री रंगनाथ को समर्पित की जाती। 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई' भाव से आंडाल ईश-प्रेम में इतना खो जातीं कि गुँथी हुई माला को पहले स्वयं पहनकर भगवान के सामने खड़ी होकर कहतीं, क्या मैं आपकी योग्य पत्नी बन सकती हूँ। इसके बाद वह माला श्री रंगनाथ को अर्पित करने के लिए भेजतीं। संयोग से एक दिन फूल की माला में सिर का एक बाल चिपका रह जाने के कारण यह भेद खुल गया कि आंडाल द्वारा प्रभु श्री रंगनाथ को जूठी माला चढ़ायी जाती है। तत्पश्चात मंदिर के पुजारी द्वारा आगे से आंडाल द्वारा बनाई गई माला को चढ़ाने से मना कर दिया गया। कहते हैं कि भगवान ने स्वयं स्वप्न में विष्णुचित एवं पुजारी को दर्शन देकर यह आदेश दिया कि मुझे वही माला अर्पित की जाए जिसे आंडाल ने पहना हो। तभी से आंडाल को "धृतमुक्तमाला नायिका" (शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार) कहा जाने लगा।

गोदा का प्रेम अपने इष्ट के मीरा की भाँति ही दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह कृष्ण प्रेम में ही खोयी रहतीं। उन्होंने एक रात स्वप्न देखा कि उनका विवाह श्रीकृष्ण के साथ हो गया है। सदैव श्री रंगनाथ के उपस्थिति की अनुभूति करतीं और स्वयं को उनकी दासी मानकर उनके ध्यान में डूबीं रहतीं। उनकी भक्ति के स्वरूप को बताते हुए डॉ. एन. सुंदरम ने लिखा है कि- "वह मीरा की भाँति प्रियतम-वियोग के दुःख को तथा मिलन-सुख को तरह-तरह से व्यक्त करने लगीं। प्रेमान्ध होकर कभी वह हंसती कभी विरह में तड़पती रोती रहतीं। प्रियतम के बिना उनसे पल भर भी न रह जाता। भगवत्प्रेम में उन्मत्त गोदा के मन में श्रीकृष्ण के गुण तथा लीलाओं की प्रतिच्छवियाँ इतनी गहरी पड़ गई कि ब्रजमोहन की लीलाओं का आंतरिक अनुभव करने लगीं। उनका मन सदैव श्रीकृष्ण के साथ किसी कुंज गली में भटकता रहता, कभी वह उनके साथ रासलीला करतीं तो कभी चीरहरण लीला होती और कभी पांचजन्य बजाकर वह उनके चित्त को चुरा लेते हैं। कभी वह रो-रोकर कोकिला सी मेघों से प्रार्थना करती हैं कि उसे वेंकटाद्रि नाथ से मिला दो।" कहा जाता है कि स्वप्न में भगवान ने विष्णुचित्त को आदेश दिया कि गोदा को उनके पास लाया जाए। जिसके बाद विष्णुचित्त गोदा को लेकर वैष्णव तीर्थ की यात्रा पर निकले और सभी पावन स्थानों से होते हुए श्रीरंग मंदिर पहुँचे। प्रसिद्ध है कि श्रीरंग मंदिर से गोदा को लेने के लिए पालकी, छत्र, एवं गाजे-बाजे की धूमधाम के साथ पुजारी आए। विष्णुचित अपनी पुत्री को श्रीरंग-क्षेत्र में ले गए। वहाँ पहुँचकर भगवान श्री रंगनाथ की प्रतिमा को देखकर गोदा भाव-विभोर हो गयीं और मूर्ति के निकट

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

चली गईं। गर्भगृह में प्रवेश करते ही वह श्रीरंगनाथ की प्रतिमा से एक दिव्य ज्योति निकली और गोदा मीरा की भाँति ही अपने गिरिधर गोपाल में विलीन हो गईं। तभी से गोदा, "आण्डाल" के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जिसका तात्पर्य भी इसी संदर्भ से जोड़कर 'जिसने भगवान को प्राप्त किया' माना जाता है।

आंडाल अपने पालित पिता विष्णुचित्त या पेरियाल्वार की भाँति ही प्रसिद्ध आलवर भक्तिन थीं। प्रसिद्ध बारह आलवारों में वे नौवीं आलवार थीं। बारह आलवारों में आंडाल एकमात्र महिला भक्त कवयित्री थीं। जिस प्रकार मीरा ने अपने समय के तमाम सामाजिक अंतर्विरोधों अस्वीकार करते हुए उसकी दिशा परिवर्तित करते हुए भक्तिक्षेत्र के महाकाश में एक दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति अमिट प्रतिमान स्थापित किया ठीक उसी प्रकार द्रविड़ भक्त कवियत्री आंडाल ने भी। इस संदर्भ में दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए बेहद सटीक टिप्पणी डॉ. एन. सुंदरम ने किया है- "मीरा और आंडाल दोनों कृष्णभक्त हैं यह दोनों ही अपनी पराभक्ति द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के विराटत्व में एकाकार हो गई हैं। मीरा और आंडाल ने अपने पदों में जन्मजन्मांतरों के लिए विराटत्व में एकाकार होने की भावना व्यक्त की है।"

1.2.2 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए-
   (क) आंडाल को किसका अवतार माना जाता है?
   (ख) आंडाल के प्रियतम आराध्य इष्ट कौन थे?
   (ग) आंडाल को किस प्रकार की नायिका कहा जाता है?
2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
   (क) तमिल में 'कोदै' शब्द का अर्थ ..... के समान कोमल एवं सुंदर होता है। (फूल/मलमल)
   (ख) आंडाल प्रसिद्ध बारह आलवारों में..... आलवार थीं। (नौवीं/दसवीं)

1.2.3 कृतित्व

आंडाल द्वारा रचित दो ग्रंथ माने जाते हैं- १) तिरुप्पावै २) नाच्चियार तिरुमोलि। 'तिरुप्पावै'

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

'तिरुप्पावै' का शाब्दिक अर्थ 'श्री व्रत' लिया जाता है। इसीलिए कई स्थानों पर इसे 'तिरुप्पावै-श्री व्रतं' भी कहा एवं लिखा जाता है। यह ग्रंथ तीस सुंदर छंदों का एक मुक्तक काव्य है। यह एक व्रतानुष्ठान की ललित पद्यों में लिखित पुस्तक है। जिसका संबंध भागवत में वर्णित बालू से निर्मित कात्यायनी देवी की पूजा से संबंधित है। इसमें कात्यायनी व्रत के अनुकरण के तौर पर मार्गशीर्ष व्रत के रूप में कृष्ण से गोपियों की प्रार्थना का वर्णन किया गया है। अनेक पद्यों में 'एलोर एम पावाय' जैसा पदबंध आता है जिसका अर्थ हे देवी माना गया है इस रूप में 'पावै व्रत'(देवी व्रत या कात्यायनी व्रत) ग्रंथ भी कहते हैं।

'नाच्चियार तिरुमोलि'

इस ग्रंथ को 'गोदा श्री सूक्ति' भी कहा जाता है। इसमें कुल चौदह दशक एवं 143 पद्य हैं। गीतिकाव्यात्मक शैली में लिखे गए ये पद स्वप्नद्रष्टा विवाह को लेकर हैं। इस ग्रंथ में कृष्ण साक्षात्कार, अनेक लीला वर्णन, विरह-व्यथा वर्णन, कृष्ण-संयोग एवं विवाह वर्णन का निरूपण किया गया है। आंडाल के द्वारा तमिल भाषा में लिखे गए ये पद "आंडाल पासुरंगल" भी कहलाते हैं। इस प्रकार आंडाल द्वारा लिखे हुए कुल पदों की संख्या 173 (30+143) है। जिसे 173 पासुरंगल भी कहते हैं।

आंडाल की रचनाओं में वेद, पुराण एवं उपनिषदों की वाणी के रहस्यमय तत्त्वों को देखकर बाद में विशिष्टाद्वैत के प्रतिष्ठापक श्री रामानुजाचार्य द्वारा भी अंडाल के गीतों को महत्त्व दिया गया। श्री वेदान्तदेशिक आचार्य ने आंडाल को आधार बनाकर 'गोदा-स्तुति' नामक ग्रंथ लिखा है। राजा श्री कृष्णदेवराय ने भी आंडाल के जीवन एवं भक्ति को विषय बनाकर तेलुगू भाषा में 'आमुक्तमाल्यदा' महाकाव्य लिखा। तमिल प्रदेश के प्रत्येक प्रमुख विष्णु मंदिर में आंडाल की मूर्ति स्थापित होना यह प्रमाणित करता है कि आंडाल लोक जीवन में देवी के समान पूज्य एवं प्रेरणा की प्रतीक थीं। वृंदावन स्थित श्री रंगनाथ मंदिर में भी 'गोदांबा उत्सव' मनाया जाता है। दस दिनों तक चलने वाले इस उत्सव में 'दिव्य प्रबंध' के पाठ के तीसरे दिन आंडाल द्वारा लिखित 143 पदों का पाठ होता है।

1.2.4 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए-

   (क) 'तिरुप्पावै' का शाब्दिक अर्थ क्या है?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(ख) आंडाल ने कुल कितने पदों की रचना की है?

2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) 'तिरुप्पावै' ग्रंथ..... सुंदर छंदों का एक मुक्तक काव्य है। (बीस/तीस)

(ख) आंडाल के द्वारा तमिल भाषा में लिखे गए ये पद .....भी कहलाते हैं। (वारांगल/पासुरंगल)

(ग) ..... स्थित श्री रंगनाथ मंदिर में भी 'गोदाम्बा उत्सव' मनाया जाता है। (भोपाल/वृंदावन)

1.2.5 आंडाल के विचार

आंडाल दक्षिण भारत की प्रसिद्ध आलवार या विष्णु भक्त कवियत्री हैं। उनकी साधना मीरा की भाँति ही माधुर्य एवं दांपत्य भाव की है। इस कारण उनके ज्यादातर मत या विचार भक्ति के इसी क्षेत्र से संबंधित हैं। आंडाल एवं मीरा दोनों के पदों में कृष्ण के प्रति अनन्य समर्पण, प्रपत्ति, व कैंकर्य का भाव दिखता है। यदि मीरा कहतीं हैं कि -" मीरा हरि रे हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी।" तो आंडाल ने भी लिखा है-"इरैक्कुमेलेल पिरविक्कुम उन्तन्नोडु/ उर्रोमे यावोभुनक्के नामाट्शेय्वोम्।।" अर्थात हे! रंगनाथ सदा सर्वदा जनम- जनम में तुम्हारे साथ ही संबंध रहे, तुम्हारी ही सेवा करें, और तुम हमारी अपेक्षाओं की पूर्ति करो। इस प्रकार आंडाल के अभिव्यक्ति क्षेत्र का सर्वाधिक संबंध आत्मनिवेदन एवं आत्मसमर्पण की शैली में निर्मल भाव से विराटत्व में एकाकार होने की भावना से ही है।

आंडाल का यह दृढ़ विश्वास है कि भगवान सर्वभूतरत है और श्री नारायण को छोड़कर अन्य किसी सत्ता में संरक्षा का सामर्थ्य नहीं है। अतः आंडाल इस पर ज़ोर देकर कहती हैं कि श्रद्धा और समर्पण से किया जाने वाला व्रतोपवास आदि पुण्य कार्य ही मुक्ति प्रदान करेगा ऐसा सोचना भ्रम मात्र है। इसलिए आंडाल का यह मानना है कि जो मनुष्य एकनिष्ठ परमगति के दृढ़ विश्वास की भावना से भगवान की शरण में जाता है वहीं उसकी कृपा का पात्र बनता है वहीं अपने प्रयत्न अथवा अन्य देवताओं पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति भगवान कृष्ण की कृपा का पात्र नहीं हो सकता। भक्ति के क्षेत्र में आंडाल का यही उपदेश है कि देवत्व का अनुभव एकांतिक रूप से नहीं करना चाहिए इसीलिए ईश्वर की अनुभूति के बाद

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

भी उन्हें ईश्वर के भक्तों के दर्शन की आकांक्षा रहती थी। आंडाल का यह भी विचार है कि यदि संसारी व्यक्ति भक्ति साधना का अभिनय भी करता है तो भगवान उसकी रक्षा में तत्पर हो जाते हैं।

1.2.6 निष्कर्ष

आंडाल ने अपनी रचनाओं में भक्ति के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ अपने युग के विविध सांस्कृतिक चित्र एवं सामाजिक पक्षों का भी अत्यंत सजगता से चित्रण किया है। उनके वर्णन में देशजता की गंध जगह-जगह दिखाई पड़ती है। 'तिरुप्पावै' में उन्होंने लिखा है- "हे कौतूहलनी पौ फट गई। पूर्व दिशा किरणों से प्रकाशित हो उठी। गाय घास चरने के लिए चारों दिशाओं में निकल गई।... दूध दूहने वालों के अभाव में वेदना से पीड़ित होकर भैंसे रम्भा रही हैं। अपने बछड़े की याद कर और उस पर द्रवित होकर वे अपने थनों से दूध की धारा प्रवाहित कर रही हैं।"

भक्त कवि एवं कवयित्रियों में भक्ति एवं अध्यात्म के साथ-साथ लोक संग्रह एवं लोक मंगल का भाव भी समान रूप से देखने को मिलता है। आंडाल के विचार के संदर्भ में यहाँ उनके एक पद का भावार्थ देना उचित होगा जिसमें उनकी मानव-कल्याण एवं देशप्रेम भावना, लोक संग्राहक चेतना स्पष्ट रूप में दिखती है। उनका यह कथन है- "यदि हम त्रिविक्रम विष्णु के नाम पर कीर्तन करते हुए व्रत आदि के लिए स्नान आदि करके सदाचरण करेंगी, तो समस्त देश कष्टरहित हो जाएगा। महीने में तीन बार वर्षा होगी। देश लहलहाते खेतों से सुंदर बनेगा। सरोवरों में कमल फूल सुशोभित होंगे। रंग-बिरंगी मछलियाँ होंगी। देश अक्षय धन-धान्य से परिपूर्ण होगा। गायों के नीचे दूध भरपूर होगा। ग्वाले दिन-रात दोहन में व्यस्त रहेंगे। उनकी गागरें दूध से लबालब भरी रहेंगी।"

1.3 अभ्यास प्रश्न

1. आंडाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सविस्तार उद्घाटित करें?
2. "आंडाल दक्षिण की मीरा है" इस कथन की संदर्भ सहित समीक्षा करें?
3. आंडाल के रचनाकर्म में निहित मानव मूल्य संबंधी विचारों का यथोचित मूल्यांकन करें?
4. आंडाल का जीवन स्त्री समाज हेतु किस प्रकार प्रेरणास्पद है सविस्तार समझाएं?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.4 संदर्भ-ग्रंथ

1. *हिंदी साहित्य का इतिहास* - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. *भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास* - डॉ. नगेंद्र
3. *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास* - डॉ. रामकुमार वर्मा
4. *मीरा और आंडाल का तुलनात्मक अध्ययन* - डॉ. एन सुंदरम
5. *संत साहित्य की परख* - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

(iii) संत अक्कमहादेवी

1.2.1 जीवनवृत्त / व्यक्तित्व

भारत के प्रमुख भक्त कवि एवं उनके विचार के क्रम में संत तिरुवल्लुवर एवं आंडाल के बाद तीसरा प्रमुख नाम अक्कमहादेवी का है। अक्कमहादेवी बसव (महान संत) समकालीन सुप्रसिद्ध संत थीं। कर्णाटक के वर्तमान शिवमोग्गा जिले के उडतडि नामक स्थान में सुमति तथा निर्मल दम्पत्ति के घर उनका जन्म (1150 ई.) में हुआ था। वे अपने माता-पिता की इकलौती संतान थीं। तमिलनाडु की आंडाल एवं राजस्थान की प्रेमयोगिनी मीरा की तरह अक्कमहादेवी ने भी मनुष्य के स्थान पर ईश्वर को अपना पति चुना। बचपन में ही उनका मन उस सलोने चेन्न मल्लिकाकार्जुन (शिव) पर रीझ गया था। जैसे आंडाल एवं मीरा के प्रभु नटनागर गिरिधर गोपाल कृष्ण हैं तो अक्कमहादेवी के इष्ट शिव हैं। हालाँकि साधना की पद्धति के रूप में जहाँ इन तीनों में अपने ईश को दांपत्य भाव से भजने के तौर पर एकरूपता देखने को मिलती है वहीं सगुण ईश्वर होते हुए इनके इष्ट के स्वरूप में एक प्रमुख अंतर आलवार एवं नायनार का दिखाई पड़ता है। जहाँ आलवार वैष्णव एवं उनके अवतारी स्वरूप के भक्त कहे जाते हैं वहीं नायनारों का संबंध शैव भक्ति एवं उसके प्रमुख अवतारों एवं संप्रदायों से है। अक्कमहादेवी के लिए शिव की आराधना ही उनके जीवन का एक मात्र साध्य या लक्ष्य था। वह अनुपम सुंदरी थीं। उनके इसी रूप लावण्य से संबंधित एक प्रसिद्ध घटना उनके जीवन वृत्त से जुड़ी हुई है। उनके नगर का राजा कौशिक जो एक जैन था। एक बार शिकार से लौटते समय उसने द्वार पर खड़ी अक्कमहादेवी को देखा। इस अपूर्व सुंदरी के सौंदर्य को देखकर वह उस पर मोहित हो गया। उसने उनसे प्रेम निवेदन किया किन्तु

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

अक्कमहादेवी ने यह कहकर साफ इनकार कर दिया कि उनका विवाह भगवान चेन्नमल्लिकार्जुन से हो चुका है। राजा कौशिक ने इसे अपनी अवहेलना मानते हुए प्रणय याचना को राजा की आज्ञा के रूप में बदल दिया। अंत में अपने माँ-बाप का ख्याल करके अक्कमहादेवी ने कौशिक से विवाह करना स्वीकार किया, किंतु कुछ शर्तों पर। इन प्रस्तावों में उपासना की आजादी भी एक थी किंतु राजा कौशिक ने उन शर्तों का पालन नहीं किया। परिणामस्वरूप अक्कमहादेवी ने वैवाहिक जीवन का परित्याग कर दिया और राजमहल के सामंती जीवन को मीरा की भाँति बिना किसी देरी के ठोकर मारकर बाहर निकल पड़ीं। अपने प्रभु चेन्नमल्लिकार्जुन की तलाश में वह चल पड़ीं। नारी को युग-युग से बंदिनी बनाकर रखने की प्रथा को एक झटके में तोड़ दिया।

राजा कौशिक के राज महल से निकलकर वह अपने प्रियतम (चेन्नमल्लिकार्जुन यानि शिव) को यायावरों की भाँति खोजने लगी। अंत में वह कल्याण नगर पहुँची जहाँ पर संत बसवेश्वर ने ज्ञान भक्ति और कर्म का सदाव्रत रखा था तथा "अनुभव मण्टप" की स्थापना की थी। उस आध्यात्मिक गोष्ठी में जब अक्कमहादेवी पहुंची तब वहाँ के संत जौहरी अल्लमप्रभु ने उनसे तरह-तरह के प्रश्नों किए। उनको विभिन्न साधना की कसौटियों पर कस-कर देखा,घिसकर देखा। अंत में सारी प्रक्रियाओं में सफल होने पर उन्हें खरे सोने जैसा साधक मानकर उनका स्वागत किया गया। कुछ समय तक वहाँ (अक्कमहादेवी) रहकर अपने प्रभु चेन्नमल्लिकार्जुन की तलाश करती रहीं बाद में श्री शैल चली गईं। ऐसा माना या कहा जाता है कि वहाँ के करली वन में वह अपने प्रभु चेन्नमलिकार्जुन में ठीक उसी प्रकार विलीन हो गयीं जैसे आंडाल और मीरां अपने साध्य में।

1.2.2 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए-
   (क) अक्कमहादेवी का जन्मकाल क्या माना गया है?
   (ख) अक्कमहादेवी की तुलना भक्ति क्षेत्र में किस-किससे की जा सकती है?
   (ग) अक्कमहादेवी किसकी एकनिष्ठ उपासिका थीं?
2. सही शब्द चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-
   (क) अक्कमहादेवी ने नारी को युग-युग से..... बनाकर रखने की प्रथा को एक झटके में तोड़ दिया। (बंदिनी/तपस्विनी)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) अक्कमहादेवी ने अपने प्रभु चेन्नमलिकार्जुन में ठीक उसी प्रकार..... हो गयीं जैसे आंडाल और मीरां अपने साध्य में। (विलीन/अलग)

1.2.3 कृतित्व/रचनाकर्म

भक्त एवं संत साहित्य के साथ सदैव एक बड़ी समस्या उनके लिखित रूप की रही है। प्रायः कई भक्त एवं संतों ने साहित्य लेखन की दृष्टि से उपासना नहीं की है इस कारण उनकी वाणियों, वचनों आदि के बारे में सम्यक जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती। फिर भी अक्कमहादेवी के बारे में यह प्रचलित है कि अक्कमहादेवी ने भी संत बसवेश्वर की तरह ही वचन रचना की है। उनके करीब चार सौ वचन मिलते हैं। "चेन्नमल्लिकार्जुन" उनका अंकित नाम देखें तो वह कुछ इस प्रकार हैं-

1. वचन, 2. योगांग (त्रिपदि छंद में), सृष्टि वचन (सृष्टि के वचन)।

1.2.4 अक्कमहादेवी की भक्ति

अक्कमहादेवी की भक्ति आंडाल एवं मीरा की भाँति माधुर्यभाव की रही है। जिसमें परमात्मा को पति और जीवात्मा को पत्नी मानकर उपासना की जाती है। अक्कमहादेवी के ये मधुर रस मंडित वचन भारतीय साहित्य की महत्वपूर्ण थाती हैं। मधुरोपासना के कारण रहस्यवाद का मधुरतम रूप उनकी वाणियों में मिलता है। 'मेरे नैन विरह की बेल भई' के तर्ज पर प्रियतम विरह के हृतन्त्री की झंकार मीरा की भाँति उनके पदों में देखने को मिलता है। वे प्रश्न करती हैं-

"हे आम्र-मंजरियो,हे शरद चंद्रिके, मन्द्र मधुर गुंजन करने वाले मिलिंद वृन्द, ऐ! मतवाली कोयल, आपने मेरे सर्वस्व चन्न मल्लिकार्जुन को कहीं देखा है? यदि हाँ, तो मैं आँचल पसारकर, प्रार्थना करती हूँ कि उन्हें कृपया मेरे यहाँ भेज दें। ऐ! चहचहाने वाले शुकगण! तुमने कहीं देखा है? ऐ! कलकूजन करने वाली कोयलों, तुमने कहीं देखा है? ऐ! मधुर गुंजार करने वाले अलिकुल, तुमने तो देखा नहीं? सरोवर की सैर करने वाले मरालगण, क्या तुमने देखा है? गिरिकंदराओं में विहार करने वाले केकीगण। कहीं तुमने तो नहीं देखा? मेरे प्रभु चेन्नमल्लिकार्जुन कहाँ हैं? तुम लोग बताओ, तनिक बताओ तो सही।"

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अक्कमहादेवी की प्रेमसाधना में वे सभी अवस्थाएँ एवं समानताएँ हैं जोकि ब्रजांगनाओं की मधुर एवं स्वकीया साधना में घटित होती हैं। राजस्थान की अमर कृष्ण प्रेयसी मीरा की तरह अक्कमहादेवी भी एक राजा की रानी रहीं और दोनों कवित्रियों का जीवन एक आईने के समान साम्यता रखता है। कृष्ण के पीछे दीवानी मीरा की तरह बचपन से ही निज आराध्य भगवान शंकर (चेन्न मल्लिकार्जुन) के लिए वह पागल बनीं। घरवालों के निर्मम क्रूर व्यवहार का भी शिकार हुईं, और अंत में उन्हें भी घर-बार छोड़ देना पड़ा। इनके बारे में गगन गिल का यह अनुमान सटीक है कि -"अक्कमहादेवी का जीवन नारी की अध्यात्म साधना का, उसकी अस्मिता का, उसके विद्रोही स्वर का रम्योज्वल इतिहास है। कविकला की दृष्टि से अक्कमहादेवी की बानियाँ अनूठे रत्न हैं।"

1.2.5 अक्कमहादेवी के विचार

अक्कमहादेवी ने अपने वचनों में मन के विविध विकारों एवं भावों को अभिव्यक्त किया है। उनका कहना है कि-भूख-प्यास उसे व्याकुल न करे, नींद सताये नहीं, क्रोध उत्तेजित होकर उथल-पुथल न मचाये, मोह-पाश में बांधे नहीं, लोभ ललचाये नहीं, ईर्ष्या जलाये नहीं, समस्त सचराचर (जड़-चेतन) प्रणियों को इससे मुक्ति मिले, जिससे वे ईश्वर भक्ति कर सकें।

- हे नींद मत सता/क्रोध मचा मत उथल-पुथल/हे मोह! पाश अपने ढीले/लोभ! मत ललचा/हे मद! मत कर मदहोश/ईर्ष्या जला मत/ओ चराचर! मत चूक अवसर/आई हूँ संदेश लेकर चेन्नमल्लिकार्जुन (शिव) का.

अक्कमहादेवी अपने वचन में ईश्वर से स्तुति करते हुए कहती हैं कि- आप मेरे मन में विद्यमान हर प्रकार के अहंकार को नष्ट कर दें। तुम मेरा सब कुछ छीनकर मुझे भीख माँगने पर बाध्य कर दो। इस तरह मेरे मन के अहंकार को नष्ट करके मेरे मन को पवित्र कर दो। तुम मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं अपना घर इस (सांसारिक मोह-माया) को ही भूल जाऊँ। इस प्रकार मैं अपनी सभी इच्छाओं को त्यागकर भगवान शिव के प्रति पूरी तरह समर्पित हो जाऊँ।

- हे मेरे जूही के फूल जैसे ईश्वर/मंगाओ मुझसे भीख/और कुछ ऐसा करो/कि भूल जाऊँ अपना घर पूरी तरह/झोली फैलाऊँ और न मिले भीख/कोई हाथ बढ़ाये कुछ देने को/तो वह गिर जाय नीचे/और यदि मैं झुंकूँ उसे उठाने/तो कोई कुत्ता आ जाए/और उसे झपटकर छीन ले मुझसे.

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अक्कमहादेवी अपने वचन के माध्यम से कहती हैं कि- पक्षी भी तुम हो, शिकार भी तुम, सभी जड़ और चेतन में आप हो आप ही में सब हैं, ओ मेरे देव मल्लिकार्जुन (शिव) कभी तो अपना मुख दिखाओ। इस समस्त संसार में आप हो और समस्त संसार आप में ही समाया हुआ है-

- आवन हो तुम/वन के समस्त पेड़ भी तुम/पक्षी भी तुम शिकारी भी तुम/डाल-डाल खेलते को खेल/सब में तुम, तुम में सब/ओ मल्लिकार्जुन दिखलाओ तो सही अपना मुख.

कवयित्री इसी वचन में माया के आम मनुष्यों पर होने वाले प्रभावों को प्रदर्शित करती हैं, वे कहती हैं कि-

- छाया बनकर काया को सताया मन ने/मानस बनकर प्राण को सताया माया ने/स्मृति बनकर मन को सताया माया ने/विस्मृति बनकर ज्ञान को सताया माया ने/ जन समूह को चाबुक लगाकर सताया माया ने/चेन्नमल्लिकार्जुन देव,आपकी की रची माया पर किसी को विजय प्राप्त करना आसान नहीं.

अक्कमहादेवी अपने अगले वचन में मिलन और विरह के स्वरूप को बताते हुए कहती हैं-

- मिलन सुख की अपेक्षा/थोड़े समय के लिए बिछुड़कर/मिलने का सुख बेहतर हैं, सखि/परंतु थोड़े समय का अलगाव/मेरे लिए सहय नहीं, मेरे देव चेन्नमल्लिकार्जुन के बिछुड़कर/न बिछुड़ने का सुख कब मिलेगा?

निम्न वचन में कवयित्री ने सूर्य के प्रतीकात्मक माध्यम से 'भक्तिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा' की बात करतीं हैं-

- सूर्य जैसा ज्ञान/सूर्य किरण जैसी भक्ति/सूर्य बिना किरणे नहीं/किरणों के बिना सूर्य नहीं/ज्ञान रहित भक्ति, भक्ति रहित ज्ञान कैसा मल्लिकार्जुन?

1.2.6 निष्कर्ष

इस प्रकार अक्कमहादेवी के विचार अपने एकनिष्ठ आराध्य शिव या चेन्नमल्लिकार्जुन को आधार बनाकर विभिन्न वचनों के माध्यम से अभिव्यक्त हैं। इनके केंद्र में प्रायः अपने

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

इष्ट से मिलन हेतु न केवल विविध आध्यत्मिक संभावनाओं की चर्चा है बल्कि उसके मार्ग में आने वाली व आ सकने वाली सभी मायाजन्य चुनौतियों एवं बाधाओं का वर्णन भी है किंतु इसके साथ ही उसके यथासंभव समाधान का एक यथोचित प्रयास भी दिखता है। यह ध्यातव्य है कि इस विलययात्रा का उद्देश्य स्व की मुक्ति या अलौकिकता की स्थापना मात्र नहीं है बल्कि जनमंगल एवं लोककल्याण की उत्कट आकांक्षा भी है।

1.3 अभ्यास प्रश्न

1. अक्कमहादेवी के जीवन परिचय के साथ-साथ उनके रचना लेखन का वर्णन करें?
2. अक्कमहादेवी के भक्ति पद्धति की विधिवत चर्चा करें?
3. अक्कमहादेवी के पदों में निहित जीवन मूल्य के विविध पक्षों का विश्लेषण करें?
4. भक्ति क्षेत्र के सुप्रसिद्ध महिला कवयित्रियों की परंपरा में अक्कमहादेवी के साहित्यिक अवदान की समीक्षा करें?

1.4 संदर्भ ग्रंथ

1. *हिंदी साहित्य का इतिहास* - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. *मानवमूल्य और साहित्य*- डॉ. धर्मवीर भारती
3. *भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता*- डॉ. कृष्ण गोपाल
4. *तमिल वेद*- डॉ. क्षेमचंद 'राहत'
5. *भक्ति का उद्भव और विकास और वैष्णव भक्ति के विविध रूप*- डॉ. नगेंद्र
6. *संत साहित्य के प्रेरणास्रोत*- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

© DDCE, COL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. मीराबाई

डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 जीवन–परिचय
2.2.1 बोध प्रश्न
2.3 साहित्यिक परिचय
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 मीराबाई की भक्ति एवं विचारधारा
2.4.1 बोध प्रश्न
2.5 निष्कर्ष
2.6 संदर्भ–ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी –

- मीराबाई के जन्म और जन्म स्थान के विषय में जानेंगे।
- भक्तिकाल में मीराबाई की भक्ति के स्वरूप का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मीराबाई किसकी भक्त थीं, इसके विषय में जानेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मीराबाई मध्यकाल की कृष्ण भक्ति काव्यधारा की महान कवयित्री थी। इन्होंने कृष्ण भक्ति के पदों की रचना की। इन्हें 'राजस्थान की राधा' भी कहा जाता है। मीराबाई श्रीकृष्ण के प्रति अत्यंत अनुरक्त थीं, उनका सम्पूर्ण काव्य कृष्ण के प्रति भक्ति की भावना से ओतःप्रोत है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की थी। इन्होंने राग–गोविंद, गीत–गोविंद, नरसी जी का मायरा, मीरा–पदावली, राग–सोरठा, गोविंद टीका इत्यादि रचनाएँ की। मीराबाई की पदावलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी भक्ति में भावना एवं श्रद्धा का सामंजस्य है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.2 जीवन-परिचय

मीराबाई के जन्म संवत् के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। नवीन अनुसंधानों के अनुसार अनेक प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर उनका जन्म संवत् 1561 (लगभग) स्वीकार कर लिया गया है। मीरा का जन्म-स्थान मेड़ता से कुछ दूर 'कुड़की' नामक गाँव माना जाता है। वे मेड़तिया राठौर वंश में उत्पन्न हुई थीं– यह सर्वसम्मत है। इस वंश के प्रवर्त्तक राव दूदा माने जाते हैं। राव दूदा जोधपुर नगर के संस्थापक राव जोधा जी के पुत्र थे। अपने पिता के आदेश पर राव दूदा ने मालवा के सुलतान महमूद खिलजी से मेड़ता को जीतकर वहाँ नई बस्ती बनाई और वहीं सपरिवार रहने लगे। राव दूदा के पाँच पुत्रों में से तीसरे पुत्र रत्नसिंह के यहाँ मीरा का जन्म हुआ था। मीरा अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। उनके ताऊ वीरमदेव का ज्येष्ठ पुत्र जयमल अपनी चेचरी बहन मीरा से विशेष आत्मीयता रखता था, क्योंकि वह भी वैष्णव भक्त था। जब मीरा दो वर्ष थी, तभी उनकी माता का देहान्त हो गया था। पिता का जीवन अनेक युद्धों में लिप्त रहने के कारण अत्यन्त व्यस्त था। अतः राव दूदा ने अपनी पौत्री मीरा को अपने पास मेड़ते में बुला लिया। इसलिए मेड़ते में ही उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ।

मीराबाई की विधिवत् शिक्षा नहीं हुई थी। पारिवारिक भक्तिमय वातावरण और समाज में प्रचलित लोकगीतों के प्रभाव स्वरूप मीरा की आत्मा का संस्कार और परिष्कार हुआ। साथ ही कभी-कभी राजमहलों में आने वाले सिद्ध-संन्यासियों या रमते जोगियों के भक्तिमय उपदेश ही मीरा की पाठशाला बने। इस प्रकार लोकगीतों की मधुरता और राजसी कला-प्रियता ने एक ओर उन्हें अनायास संगीत प्रेमिका बना दिया तो दूसरी ओर साधु-संगति के प्रभाववश उनका हृदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ।

मीरा गिरिधर गोपाल की रूप-माधुरी में इतनी आसक्त हुई कि मन ही मन उन्होंने अपने आराध्य को पति रूप में वरण कर लिया। इस सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं, जिनके अनुसार मीरा गिरिधर गोपाल की मूर्ति को अपना सर्वस्व समझती थी। एक जनश्रुति के अनुसार नन्ही मीरा ने किसी बारात को देखकर अपनी माँ से पूछा– 'मेरा वर कौन है?' माँ ने उस अबोध बालिका का मन रखने के लिए कृष्ण की मूर्ति की तरफ संकेत करते हुए उत्तर दिया– 'यह गिरधर गोपाल।' तभी से उसके सरल हृदय ने अपना सर्वस्व गिरिधर गोपाल के प्रति अर्पित कर दिया। दूसरी जनश्रुति के अनुसार एक दिन कोई साधु राव दूदा के घर पधारे जिनके पास गिरिधर गोपाल की बहुत मोहक मूर्ति थी। बालिका मीरा ने मूर्ति पर मुग्ध होकर उसे लेने के लिए हठ किया और साधु को मानना पड़ा। तभी से मीरा उस मूर्ति को सदैव अपने साथ रखने लगी। यहाँ तक कि विवाह के पश्चात् भी उस मूर्ति को अपने साथ ससुराल ले गई।

मीरा का विवाह चित्तौड़ नरेश राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। मीरा के जीवन में अन्तः संघर्ष बहुत पहले ही आरम्भ हो गया था। 'गिरिधर गोपाल' की मूर्ति का पति रूप में वरण वह बहुत पहले ही कर चुकी थी। भोजराज के साथ विवाह सूत्र में बँधने के पश्चात् मात्र उनका लौकिक शरीर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ही ससुराल में गया था। श्रीकृष्ण की मूर्ति भी वह अपने साथ ले गई थी। सदैव उसी के ध्यान में लीन रहती थी। चित्तौड़ के रण-बाँकुरों की आराध्य देवी भवानी की अपेक्षा रसिक नटवर नागर कृष्ण की भक्ति उस राज-परिवार में विवाद और द्वेष का विषय बनने लगी। इसी बीच कुछ ही वर्षों के पश्चात् पति भोजराज का देहान्त हो गया। मीरा ने तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार सती होना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उनके स्वामी तो अजर-अमर और अविनाशी 'हरि' हैं। वे 'चिरसुहागिनी' अपने को विधवा कैसे मान लेती। यथा–

जग सुहाग मिथ्या रही सजणी होंवा हो मिट ज्यासी।
वरन् कर्याँ हरि अविनाशी म्हारों काल-व्याल न खासी।।

× × ×

गिरिधर गास्या सती न होस्यां मन मोहयो धननामी।।

अब मीरा लौकिक बंधन से मुक्त होकर गिरिधर की प्रेम साधना में और भी दृढ़ता से तल्लीन हो गई और कुल परिवार के मर्यादावादी नियमों की परवाह किए बिना साधु-संगति एवं भक्तिपूजा में अपना समय व्यतीत करने लगीं। मीरा के ससुर राणा सांगा उदारवादी वृत्ति के थे। अंतः राजरानी मीरा की उस उन्मुक्त साधु-संगति में बहुत अधिक व्यवधान और विरोध नहीं आया। ससुर की मृत्यु और उधर पिता की मृत्यु हो जाने से मीरा के जीवन में उथल-पुथल और बढ़ गई। सांगा के छोटे पुत्र को राजगद्दी मिली। उनकी असामयिक मृत्यु के पश्चात् विक्रम सिंह को राजा बनाया गया। धीरे-धीरे मीरा को अपने देवर और राजघराने से प्रताड़ना, लाञ्छना और भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट झेलने पड़े। किन्तु जैसे-जैसे संघर्ष तीव्र होता चला गया वैसे-वैसे उनकी साधना प्रखर होती चली गई।

मीरा को विष दिए जाने की घटना के पश्चात् उनका ससुराल में रहना कठिन हो गया था। अतः मीरा के ताऊ वीरमदेव ने उन्हें मेड़ता में वापिस बुला लिया। जयमल ने अपनी चचेरी बहन को भक्ति निवेदन में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। कुछ समय पश्चातृ वे अजमेर चली गईं जहाँ उन्होंने तीर्थराज पुष्कर की यात्रा की। वहाँ से वे वृन्दावन आ गईं। वृन्दावन आने से पूर्व उनकी भक्तिधारा में सिद्धों, योगियों और रसिक-भक्तों की साधना पद्धति का प्रभाव था। यहाँ आकर स्वाभाविक रूप से उनकी भक्तिधारा माधुर्यभाव के निश्चित मार्ग की ओर अग्रसर हो गई। साधु-संगति का स्वच्छन्द आनन्द, भगवत्-वार्ता-श्रवण करने का परम सुख एवं अपने गिरिधर गोपाल की नित्य लीला-भूमि वृन्दावन की कुंज-गलियों में उन्मुक्त विहार का अनुकूल-अवसर पाकर मीरा गा उठीं–

'आली म्हांने लागे वृन्दावन नीको।'

वृन्दावन में भक्ति-संगीत की सुमधुर लहरी बिखेरने के पश्चात् वे द्वारका चली गईं। उन्होंने अपने जीवन में द्वारका में ही रणछोड़ जी के मन्दिर में भगवान कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र भाव से भजन कीर्तन करते हुए अपना जीवन व्यतीत किया। रणछोड़ जी के मन्दिर में उनकी मूर्ति में ही मीरा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

अन्तर्ध्यान हो गईं, ऐसी बात प्रचलित है। मीरा का निधन काल विक्रमी संवत् 1615 और 1620 के बीच माना जाता है।

2.2.1 बोध प्रश्न

प्र. 1. मीराबाई का जन्म कब और कहाँ हुआ?

2. मीराबाई के माता–पिता का क्या नाम था?

3. मीराबाई का विवाह किसके साथ हुआ?

4. मीरा ने अपनी भक्ति का केंद्र किसको बनाया?

2.3 साहित्यिक परिचय

मीरा द्वारा रचित कही जाने वाली पूर्ण या अपूर्ण रचनाओं की संख्या 11 है। यथा– गीत गोविंद की टीका, नरसी जी का मायरा (माहेरा), राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविंद, सतभामाणुं रूपणां, मीरा की गरवी, रुकमणी-मंगल, नरसी मेहता नी हुंडी, चरीत (चरित्र) स्फुट पद। लेकिन अनेक निरीक्षण परीक्षण के उपरान्त यह माना गया कि स्फुट पद ही मीरा की प्रामाणिक रचना हैं, शेष रचनाएँ अन्य कवियों की हैं जो मीरा के नाम से प्रचलित हो गईं।

मीरा के पदों में गीत-संगीत और रागात्मक भाव–प्रवणता का माधुर्य इतना अधिक है कि प्रत्येक प्रदेश और जनपद में जन-जन का कण्ठहार होने में उन गीतों को बहुत देर नहीं लगी। स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उनका मूल पद गुजरात, राजस्थान, ब्रज, पंजाब आदि जिन-जिन भाषा-भाषियों के कण्ठ का अंग बना अथवा मीरा स्वयं उपर्युक्त प्रदेशों में जहाँ-जहाँ गईं उन गीतों की शब्दावली और गीत–संगीत का स्वरूप उनके अनुरूप हो गया। फलतः उनके मूलपद के अनेक रूप प्रचलित हो गए। इससे मीरा की लोकप्रियता, और लोकोन्मुख चेतना का सहज उन्मेष लक्षित होता है।

मीराबाई सबसे पहले भक्त थीं, बाद में कवयित्री। इस कारण उनकी पदावली में भाव पक्ष अत्यधिक प्रबल है। भावों को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना उन्हें भली-भाँति आता है। किन्तु कलात्मकता की अपेक्षा उनके काव्य में सहजता और स्वाभाविकता है। वे गहन से गहन और कठोर से कठोर भाव को इतनी सहजता से कह जाती है कि उसका प्रभाव तीव्रता से और शीघ्र ही पड़ता है।

भाषा

मीरा का जन्मस्थान मेड़ता है। यह मारवाड़ (राजस्थान) में स्थित है। अतः उनकी मातृभाषा मारवाड़ी थी। मीरा का युग साहित्यिक दृष्टि से ब्रजभाषा के विकास का युग था। ब्रजभाषा उन दिनों वैष्णव भक्तों की वाणी-सुधा का प्रमुख साधन थी।

मीरा बहुत समय तक वृन्दावन में वैष्णव भक्तों के सान्निध्य में भी रही थीं। उसके पश्चात् द्वारिकापुरी में भी उन्होंने पर्याप्त समय व्यतीत किया था। अतः उनकी भाषा अधिकांशतः राजस्थानी और

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ब्रजभाषा का मिश्रित रूप है। गुजराती और कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली तथा पूरब का थोड़ा-बहुत संकेत उनके पदों में प्रयुक्त शब्दों से मिल जाता है।

स्पष्टतया मीरा की भाषा का अन्य गुण है। उनके पदों को पढ़कर लगता है कि वे अपने हृदय के समस्त भावों को उड़ेल देना चाहती हैं। चाहे वह कृष्ण के प्रति प्रेम हो, या पारिवारिक कलह, समाज द्वारा प्रताड़ना हो या साधु-संगति द्वारा स्वीकृति।

मुहावरे भाषा का प्राण हैं। इनके प्रयोग से भाषा अत्यंत सजीव और व्यंजनापूर्ण हो जाती है। मीरा की काव्य-भाषा में मुहावरों का प्रयोग बहुत मिलता है जिससे वाणी हृदयस्पर्शी और प्रभावशाली हो उठी है। कुछ उदाहरण लीजिए–

(क) अलख जगाना–जागृति फैलाना
तेरे कारण जोग लियो है घर घर अलख जगाई।

(ख) पलक न लगना–नींद न आना
निसिदिन पंथ निहाराँ पिवरो, पलक णा पल भर लागी।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मीरा जहाँ भी गईं, वहीं की भाषा का प्रभाव ग्रहण करके उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को सरल, सरस, सहज और भावगम्य बनाया।

मीरा का काव्य भावना-प्रधान है। उनके हृदय के सहज उद्‌गार ही शब्दों के माध्यम से प्रकट हुए हैं।

मीरा ने कहीं भी केवल चमत्कार और कलात्मक प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। अलंकार सहज और स्वाभाविक रूप में अनायास ही उनके काव्य में आए हैं।

मीरा के काव्य की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है–उनके भावों का संगीत की लय में बँधा होना। प्रत्येक पद से पहले उसके 'राग' या 'रागिनी' का निर्देश किया गया है। इससे मीरा के लोक-व्यवहार-ज्ञान और भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाने की क्षमता का परिचय मिलता है।

मीरा ने लोक में प्रचलित रागिनियों में बाँध कर अपने भावों को सहजता से प्रस्तुत किया और जन–सामान्य ने उन्हें उसी सहजता से अपना लिया। यही कारण है कि आज भी मीरों के पद यत्र-तत्र गाए और सुने जाते हैं। भक्ति-संगीत की दुनिया में लोकगीतों और उनकी धुनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूरदास, कबीर, मीरा आदि भक्तों ने जनमानस की इस ग्राहक प्रवृत्ति को पहचाना और लोकगीतों की धुनों पर भक्ति-भाव पर प्रसार किया।

गीत-योजना में मीरा की विशेषता यह है कि वे शास्त्रीय नियमों से नहीं बँधी हैं। इसी कारण शास्त्रीय दृष्टि से उनके पदों में कही मात्राएँ बढ़ जाती हैं, कहीं घट जाती हैं। कहीं दो-तीन शब्द तक बढ़ जाते हैं, तो कही यतिभंग हो जाता है। किसी स्थान पर लघु के स्थान पर गुरु और गुरु के स्थान

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पर लघु वर्णों की योजना भी मिलती है। यह मीरा के गीति-विधान की सीमा भी हैं और उसका निजी स्वरूप भी। इसका कारण स्पष्ट है–उनके हृदय में भावों का उमड़ना और दीवानेपन में उन भावों का प्रकाशन स्वच्छन्द रूप में कर देना।

भावोत्कर्ष और अभिव्यक्ति की स्पष्टता के कारण भक्ति काव्य-परम्परा में मीरा का योगदान स्वतन्त्र तथा महत्त्वपूर्ण है। आज भी हम मीरा की निश्छलता और दीवानेपन से प्रभावित हैं।

2.3.1 बोध प्रश्न

(क) निम्न प्रश्नों का उत्तर एक या दो पंक्ति में दीजिए।

1. मीराबाई की रचनाओं के नाम बताइए।
2. मीराबाई के पदों की भाषा के बारे में बताइये।
3. मीराबाई को किस काव्यधारा की कवयित्री माना जाता है?
4. मीराबाई के पदों की विशेषता बताइए।

(ख) सही/गलत का निशान लगाइए–

1. 'नरसी जी का मायरा' मीराबाई की रचना नहीं है। (.....)
2. मीराबाई ने अवधी भाषा का प्रयोग किया है। (.....)
3. मीरा ने शिव की आराधना की। (.....)

2.4 मीराबाई की भक्ति एवं विचारधारा

मीराबाई के पदों में उनके निजी जीवन की सजीव झाँकी देखने को मिलती है। बचपन से ही मीरा के हृदय पर कृष्ण की मोहिनी मूर्ति की छाप पड़ चुकी थी। कृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम और आत्मीयता थी, कृष्ण को अपने पति रूप में स्वीकार करने की उनकी आकांक्षा निरन्तर सघन होती गई। यद्यपि मेवाड़ के कुँवर भोजराज से मीरा का विवाह हो गया था। फिर भी श्री गिरिधर गोपाल की मूर्ति उनके मन में बसी रही। पारिवारिक कलह और कष्ट, वैमनस्य और राजदंड भी उनकी श्रीकृष्ण के प्रति आस्था में कमी न ला सके। मीरा का सम्पूर्ण काव्य घर, परिवार, समाज से संघर्ष का काव्य है। भोली मीरा ने हंसी–ठिठोली में कही गई बात कि 'तेरा, दूल्हा तो कृष्ण है' गम्भीरता से ले लिया और बचपन का वह राग निरंतर तीव्र से तीव्रतर होता गया। कोई अन्य भाव उनके मन पैठ नहीं बना सका।

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।

बालपन की प्रीति के कारण वे कृष्ण के प्रेम के सिवाय कुछ जानना और समझना ही नहीं चाहती थी। उन्हीं के सामने वे अपनी आत्मा के भावों को सदैव प्रकट करती रहीं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आराध्य का स्वरूप

मीरा के इष्टदेव और स्वामी कृष्ण थे। उन्होंने स्थान-स्थान पर ईश्वर के सम्बन्ध में विरोधी बातें कहीं हैं। कहीं तो वे ईश्वर को अविनाशी कहकर निर्गुण ब्रह्म के समान बतलाती हैं और कहीं परम ऐश्वर्यशाली तथा लीलामय बतलाती हैं। इसलिए प्रश्न उठता है कि उनके आराध्य का स्वरूप कैसा है?

ईश्वर के निर्गुण रूप के विषय में उन्होंने कई विशेषणों का प्रयोग किया है। जैसे भगवान नित्य हैं 'हरि' अविनाशी हैं। उनका साँवरा उस 'अगम देश' का वासी है, जहाँ 'काल' भी नहीं पहुँच सकता। वहाँ 'हंस केलि' करते हैं और साधुओं तथा संतों के साथ 'ग्याण जुगति' की जाती है। मीरा के अनुसार उनका सांवरा उनके मन में बसता है। सारांश यह है निर्गुण ब्रह्म की लगभग सभी विशेषताओं का वर्णन मीरा के कुछ पदों में मिलता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान उन्हें संत मत को मानने वाली साधिका मानते हैं।

मीरा के कुछ पदों में यद्यपि निर्गुण ईश्वर से संबद्ध विशेषताओं का वर्णन अवश्य मिलता है, तथापि मीरा निर्गुण ब्रह्म को मानने वाली नहीं थीं। उन्होंने कृष्ण को अपना स्वामी माना है। मानव की सभी क्रियाएँ और भावनाएँ कृष्ण द्वारा भी मीरा ने व्यक्त करवाई हैं। उन्होंने निरन्तर गिरिधर गोपाल का स्मरण किया है। उनके सुन्दर और मनमोहक रूप का वर्णन किया है। कृष्ण को 'भक्त वत्सल' बताया है। कृपानिधान, शरण में आए हुए को तारने वाला ('अगम तारण तरण'), पतित-पावन, विपत्ति विदारक–अनेक विशेषणों से पुकारा है। इसके अतिरिक्त सगुण भक्तों की भजन, कीर्तन, नाम-स्मरण आदि से समन्वित नवधा भक्ति का उल्लेख भी मिलता है। मीरा अपने इष्टदेव के गुणों का श्रवण करती हैं। मन्दिरों में कीर्तन करती हैं। उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती हैं। वे जिस ईश्वर के कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरने वाले चरणों से लिपटना चाहती है, वह लीला-अवतारी सगुण रूप श्रीकृष्ण ही है और कोई नहीं। वे उसी के प्रेम में रंगी रहती हैं। वह उनके बाल सँवारती है। वे उनकी 'जन्म जन्म की दासी' हैं। कृष्ण उनका 'प्रेम पियारा मीत', पूरब 'जन्म का साथी', जन्म-मरण का साथी है। कृष्ण के सामने मीरा ने स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है।

दोनों प्रकार के विवेचन से स्पष्ट है कि मीरा ने अपने इष्ट श्रीकृष्ण के सगुण रूप की ही भक्ति की है। जहाँ कहीं भी निर्गुण रूप उभरा है, वहाँ भी वे कृष्ण के सगुण रूप में ही उस निर्गुण-ब्रह्म से मिलती दिख पड़ती हैं। मीरा का ईश्वर से इतना अधिक एकीकरण हो गया था कि ईश्वर के निर्गुण और सगुण रूप के झंझट में फँसी ही नहीं, वे सदैव अपने कृष्णचन्द्र का मुख देखते रहना और उन्हें रिझाना चाहती हैं। उसी में उनके मन को तृप्ति मिलती है। तुलसीदास आदि अन्य सगुण भक्तों ने भी ईश्वर को दोनों रूपों से अभिन्न बताया है। जैसे– "सगुणहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।" अतः मीरा सगुण भक्ति की कवयित्री हैं। लीला पुरुष कृष्ण उनके इष्ट देव हैं। हाँ, कहीं-कहीं अपने समय के प्रभाव के कारण उनके पदों में निर्गुण ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली शब्दावली भी मिलती है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मीरा की भक्ति-भावना

अज्ञात सत्ता, ब्रह्म अथवा परमात्मा के प्रति सांसारिक जीव की सहज अनुरागमय भावना का नाम ही भक्ति है। इस अलौकिक अनुराग के तीन पक्ष होते हैं–

1. आलम्बन अर्थात् ईश्वर
2. आश्रय अर्थात् भक्त
3. इन दोनों के बीच रागात्मक भावना अर्थात् भक्ति।

मीरा ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति दाम्पत्य अर्थात् पति-पत्नी भाव से की है। उन्होंने कृष्ण को प्रियतम, पति, धनी, स्वामी आदि विभिन्न सम्बन्धों से पुकारा है। वे अपने उस लोक के पति कुँवर भोजराज से भी अधिक प्रेम अपने गिरिधर से करती हैं। यह बात उनकी सम्पूर्ण पदावली से स्पष्ट हो जाती है। मीरा को नटवर नागर, साँवरे की मनोहरता पर अभिमान है। इसका उन्होंने मुक्त कंठ से वर्णन किया है। स्वयं को उनकी 'जन्म जन्म की दासी' और उन्हें अपने 'पूरब जन्म का साथी' बताया है, जिससे मीरा की प्रीति बचपन में ही हो गई थी और निरन्तर सघन और दृढ़ होती गई। मीरा की यह भावना मिलन और वियोग–दोनों स्थितियों में अद्भुत उल्लास, आतुरता और तन्मयता से व्यक्त हुई है। मीरा श्रीकृष्ण की कल्पना प्रेमी और पति दोनों रूपों में करती हैं। उनके प्रेम भाव में सामान्य मानवीय मर्यादा मिलती है। मीरा का प्रेम स्वकीया का प्रेम है। उनके प्रेम में विरह–वियोग की प्रधानता है।

भक्ति-भाव के अनेक प्रकार हैं, जैसे– शान्त दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। 'शान्त भाव' में भक्त अपने भगवान के सगुण रूप की अनुभूति करता है। उसके रूप-सौन्दर्य का चिन्तन-मनन किया करता है। 'दास्य-भाव' की भक्ति में भक्त प्रभु के ऐश्वर्य का चिन्तन करता है। उसी में मग्न रहता है। उसका गौरव-गान करता है। प्रभु को स्वामी और स्वयं को उसका दास, दीन-हीन सेवक समझता है। उसकी कृपा पर भक्त का जीवन निर्भर करता है। तुलसीदास की भक्ति ऐसी ही थी। 'सख्य' भक्ति में भक्त भगवान को किशोर अवस्था का सखा और मित्र मानता है। उनसे बराबरी का सम्बन्ध बैठा लेता है। सूरदास की भक्ति सख्य भाव की ही थी। 'वात्सल्य भाव' की भक्ति में भक्त अपने भगवान के बालक रूप पर ही अधिक मुग्ध रहता है। उसकी बाल-लीलाओं का रसास्वादन करता है। इस क्षेत्र में कृष्ण के बाल-लीला वर्णन में सूरदास की वात्सल्य भक्ति प्रसिद्ध है।

इन सबके अतिरिक्त 'माधुर्य भाव' अथवा मधुर रस की भक्ति में भक्त ईश्वर को अपना पति और सब कुछ मानता है। इस कारण इसका सम्बन्ध ईश्वर के साथ अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ हो जाता है। स्त्री-पुरुष विषयक प्रेम शृंगार रस का विषय है। अतः मधुर रस के भाव, विभाव, अनुभाव प्रायः शृंगार रस जैसे ही होते हैं। किन्तु शृंगार रस और माधुर्य भाव में पर्याप्त अन्तर है। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है, जो भौतिक शरीर से सम्बन्ध रखता है, किन्तु मधुर रस एक प्रकार से स्वयं आत्मा का ही धर्म है। मधुर रस का अनुभव वस्तुतः इन्द्रियों से परे है। इस बात को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है– अगर प्रेम भाव ब्रज की गोपियों के समान बन जाए, तो शृंगार रस भी माधुर्य भाव की भक्ति का

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रूप ले लेगा। सूरदास की गोपियों का कृष्ण के प्रति अनुराग और भक्ति भाव वस्तुतः भक्ति का ही रूप है। ऐसी स्थिति को अद्‌भुत पागलपन या दीवानापन भी कहा जाता है। इस प्रकार का प्रेम इन्द्रियों के उपभोग और स्वार्थलाभ वाला नहीं होता। यह नितान्त एकरस, स्वार्थ रहित, काम-वासना से भिन्न विशुद्ध 'गोपी-भाव' कहलाता है।

मीराबाई की भक्ति भी वस्तुतः 'गोपी-भाव' की भक्ति थी। वे अपने आप को 'ललिता' नाम की किसी गोपी का अवतार बताया करती थीं। सम्भवतः इसी कारण मीरा कृष्ण से पुराना परिचय जोड़ती हैं जैसे– 'मेरी उनकी प्रीत पुराणी', 'पुरब जन्म को कौल', 'जन्म जनम की चेली' आदि। वे अपने प्रियतम गिरिधर नागर को सदा 'पिव', 'सैया', 'भरतार', 'साजन', 'वर' आदि सम्बोधित करती हैं। वे उनके प्रेम में पागल हैं। उनसे एकनिष्ठ प्रेम है। उनका गुणगान करती हैं। पाँव में घुँघरू बाँध कर मन्दिरों में साधुओं की संगत में नाचती-गाती और भाव विभोर रहती हैं। उनके रूप-सौन्दर्य पर न्यौछावर रहती हैं। मीरा कहती हैं कि मैं तो 'प्रेम दीवाणी' हूँ, किन्तु समाज के अज्ञानी लोग मुझे 'कुलनासी' तक कह देते हैं। वस्तुतः मीरा का सामन्ती विचारधारा से और जड़वादी मनोवृत्तियों से निरन्तर संघर्ष चला जिसकी छाप उनके काव्य में मिलती है।

मीरा का यह माधुर्य या गोपी-भाव कोरी उच्छृंखलता और छिछोरा आवेश नहीं था। वास्तव में ये आत्मिक अनुभूति की सच्चाई पर आश्रित मर्यादा के अन्दर रहने वाला प्रेम था। इसीलिए उन्होंने बार-बार साज-शृंगार के नाम पर केवल 'शील व्रत' ही धारण किया है। 'अमर रस का पियाला' पीकर 'आत्मानुभव के आनन्द में मगन' रहने की बात कही है। मीरा अपने मौलिक सिद्धान्तों और उच्च नैतिक आदर्शों के कारण तान्त्रिक साधनाओं से नितान्त परे थी।

अतः कहा जा सकता है कि कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम और उनके आत्मिक तादात्म्य ने मीरा को माधुर्य भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। उनका यह माधुर्य भाव उदात्त है। इसमें दार्शनिकता का आग्रह कम और अनुराग-भावना तथा तन्मयता अधिक है।

उनके ससुराल वालों ने मीरा के इस दीवानेपन से तंग आकर जहर का प्याला और काला नाग मीरा के पास भेजा था। मीरा ने जहर सहर्ष पी लिया और माला बनाकर काले नाग को गले में पहन लिया। गिरिधर नागर की कृपा ने दोनों से मीरा की रक्षा की।

प्रेम दीवानी मीरा मोहन के रूप की सुन्दरता को निरन्तर अपने आँखों के सामने रखना चाहती है, उनके पदों से पता चलता है कि अनेक प्रकार के अवसर मीरा ने खोज निकाले हैं, जिससे कृष्ण का प्रतिक्षण दर्शन होता रहे। यही कारण है कि वे सदैव गिरिधर की मूर्ति के सामने नाचना-गाना पसन्द करती हैं–

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।
नाचि नाचि प्रिय रसिक रिझाऊँ प्रेमीजन को जाचूँगी।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ऐसा करके वे तीन प्रकार का लाभ उठाना चाहती हैं। पहला गिरिधर का निरन्तर दर्शन करना, दूसरा उस प्रिय रसिक को रिझाना और तीसरा प्रिय की प्रेम-भावना की जाँच-परख करना। अर्थात् प्रिय में उनके प्रति कितना लगाव है– इसे जाँचना।

मीरा का प्रेम लौकिक रूप में सामान्य स्त्री-पुरुष के प्रेम के समान व्यक्त हुआ है; किन्तु उनका प्रियतम इस जगत का पुरुष न होकर परमात्मा है। अतः यह प्रेम आध्यात्मिक और अलौकिक है। प्रेम-प्रसंग में विरह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रिय से अलग रहकर वियोगावस्था में प्रेम की सच्चाई की परख होती है। मीरा के काव्य में कृष्ण के वियोग का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। मीरा कृष्ण के विरह में तड़पती रही हैं। उनका दर्शन पाने को तरसती रहती हैं। वे नित-नए बहाने बनाकर उनका दर्शन करने और साथ-साथ रहने के सुख की कामना करती हैं। उन्हें पाकर उलाहना भी देती हैं। उन्हें विश्वासघाती, निर्मोही और परदेशी भी बताती हैं। उन्हें भला-बुरा तक कह जाती हैं। इसका कारण यह है कि प्रियतम 'प्रेम की बाती बार कर', 'नेह की नाव चलाकर' मीरा को 'विरह समंद' में छोड़ गया है। अब उसके बिन रहा नहीं जाता। उन्हें पत्र लिखने बैठती हैं, तो आँखों में आँसू भर आते हैं। कुछ दिखता ही नहीं, हाथ काँपने और हृदय फटने लगता है। उनकी प्रतीक्षा करते-करते आँखों में अंधेरी आने लगती है। नाम रटते-रटते जीभ में छाले पड़ जाते हैं। इतना सब कुछ हो रहा है, तो वह प्रियतम निर्मोही तथा हृदयहीन नहीं तो क्या है जो आकर कभी सुध भी नहीं लेता। मीरा के हृदय की गहनता, प्रेम की सच्चाई और एकनिष्ठता तथा सहन करने की सीमा इससे अधिक और क्या हो सकती है? यही कारण है कि उस प्रेम-दीवानी की अनुभूति की मार्मिकता को न समझकर लोग उसे 'कुलनासी' भी कहने लगते हैं। किन्तु मीरा को इस बात का कोई दुःख नहीं है। उन्हें प्रियतम पर पूरा विश्वास है।

मीरा के आत्मीयतापूर्ण प्रेम का एक रहस्य यह है कि मीरा को इस बात का ज्ञान हो चुका था कि उनमें और प्रियतम में जीवात्मा और परमात्मा की मौलिक एकता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जीवात्मा को जिस क्षण इस मौलिकता का अनुमान हो जाता है, उसी क्षण वह इस सांसारिक शरीर और सम्बन्धों से दूर हट कर उस परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल हो उठती हैं। मीरा के उस अविनाशी कृष्ण के प्रति इतने गहरे प्रेम का रहस्य यही है।

2.4.1 बोध प्रश्न

(क) निम्न प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्ति में दीजिए।

1. मीराबाई ने अपने आराध्य की भक्ति किस भाव से की है?
2. माधुर्य भाव की भक्ति के प्रकार बताइए।
3. मीराबाई ने कृष्ण के कौन–से रूप की भक्ति की है?

(ख) सही विकल्प का चुनाव कीजिए–

1. मीरा के इष्टदेव थे–
   1. राम, 2. शिव, 3. कृष्ण, 4. हनुमान।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2. मीराबाई की भक्ति किस प्रकार की है–

1. शान्त, 2. दास्य, 3. सख्य, 4. माधुर्य

2.5 निष्कर्ष

मीरा मध्यकाल के भक्तिकालीन–काव्य की ऐसी कवयित्री हैं जिनमें कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, निष्ठा और भक्ति थी। प्रेम की इतनी तन्मयता, एकनिष्ठता उनके माधुर्य भाव की भक्ति का विशेष गुण है। मीरा का काव्य जहाँ स्त्री की पराधीनता की कहानी कहता है, वहीं उससे मुक्ति का संकेत भी करता है। मीरा ने सामन्ती, जड़वादी समाज की दकियानूसी प्रवृत्तियों को तोड़कर स्पष्ट और खुले रूप में अपने प्रेम के भाव की अभिव्यक्ति की है। हम कह सकते हैं कि वे सामन्ती समाज और उसकी रूढ़िवादिता को नष्ट करने वाली कवयित्री हैं।

2.6 संदर्भ-ग्रंथ

1. *भक्ति आन्दोलन और भक्ति*–काव्य शिवकुमार मिश्र, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994
2. *मध्यकालीन हिन्दी भक्तिकाव्यः पुनर्मूल्यांकन के आयाम*, डॉ. पूनम कुमारी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली
3. *मीरा–काव्य*– विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. *मीराबाई की पदावली* – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी,. हिन्दी साहित्य–सम्मेलन, प्रयाग
5. *मीराः व्यक्तित्व और कृत्तित्व*–पद्मावली शबनम, हिन्दी प्रचारक संस्थान

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. तुलसीदास

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 साहित्यिक परिचय
3.2.1 बोध प्रश्न
3.3 प्रतिपाद्य
3.4 बोध प्रश्न
3.5 अभ्यास प्रश्न
3.6 संदर्भ-ग्रंथ

3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम हो सकेंगे–

- लोक कवि तुलसी के संदर्भ में जान पाएंगे।
- उनके काव्य के प्रतिपाद्य से अवगत हो सकेंगे।
- तुलसीदास की शैली और शब्दावली से परिचित हो सकेंगे।
- तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

3.1 प्रस्तावना

भक्तिकाल की रामभक्ति शाखा के कवियों में तुलसी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाल्मीकि के बाद रामकथा को लिखने वाले कवियों में उनका बहुत ऊँचा स्थान है। बाल्मीकि ने जिस 'नर' राम की कथा का वर्णन 'रामायण' में किया उसी कथा को तुलसी ने 'नारायण' की कथा के रूप में मौलिक उद्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3.2 तुलसीदास का साहित्यिक-परिचय

तुलसीदास राम काव्य परम्परा के आधार स्तम्भ हैं। बाल्मीकी के बाद राम कथा पर अधिकारपूर्वक लिखने वाले कवियों में तुलसी सर्वप्रथम हैं। उनका काव्य अनेक नूतन उद्भावनाओं से युक्त है। अन्य भक्त कवियों की तरह से तुलसीदास के जन्म के विषय में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी अधिकतर विद्वान संभवत् 1589 को तुलसी की जन्मतिथि के रूप में स्वीकार करते हैं। भिन्न–भिन्न आधारों पर विद्वानों ने तुलसीदास के दो जन्म स्थानों की बात कही है। कुछ विद्वान सोरों को उनका जन्म स्थान मानते हैं तो कुछ विद्वान राजापुर को उनका जन्म सथान मानते हैं। उनकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम हुलसी था। उन्हें बचपन में रामबोला नाम दिया गया था। मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनके माता पिता ने उन्हें जन्म लेते ही त्याग दिया था।

तुलसीदास ने अपने जीवन में अनेक ग्रंथों की रचना की। अलग–अलग विद्वान् इनकी अलग–अलग संख्या बताते हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इनकी संख्या 13 तक मानते हैं पर इतना अवश्य है कि उनके प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या 12 रही है। इन 12 ग्रंथों में 'रामचरितमानस' रचना उनकी कीर्ति का आधार ग्रंथ है। इस ग्रंथ में जहाँ एक ओर तुलसी के भक्ति भाव की उत्कृष्टता मिलती है वहीं और कवित्व की अपूर्व शक्ति भी उपलब्ध हाती है। भक्ति और काव्य का ऐसा मणिकांचन योग और कहीं मिल पाना कठिन है। रामचरितमानस ग्रंथ की रचना संवत् 1631 में की गई है। इस सम्बन्ध में स्वयं तुलसी ने इस पक्ति में लिखा है– 'संवत् सोरह सै इकतीसा करौ कथा हरि पद धरि सीसा।' इसमें ग्रंथ में रामकथा का विस्तृत वर्णन किया गया है। वाल्मीकि ने जहाँ नर राम की कथा कही है वहीं तुलसीदास ने अपने ग्रंथ में राम कथा को सात खण्डों में विभाजित कर प्रस्तुत किया है– बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। 'रामचरितमानस' एक अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। यह सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में इस रचना के समान और कोई रचना नहीं है। रामचरित मानस भारतीय संस्कृति का एक ऐसा गौरवपूर्ण ग्रंथ है कि जब तक हमारी संस्कृति रहेगी तब तक यह ग्रंथ हमारा पथ प्रदर्शन करता रहेगा। पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी ने तुलसी की प्रशंसा करते हुए कहा है–

'कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी या तुलसी की कला।'

एक तरह से रामचरितमानस ग्रंथ भारतीय और जातीय जीवन को चित्रित करने वाली रचना के रूप में सामने आई है। यह मानवता के उच्च आदर्श की सुन्दर कल्पना है। मध्यकाल में जब समाज निराशा में डूब चुका था उस समय यह रचना भारतीय समाज में नई चेतना पैदा करने का आधार बनी। तुलसी की महत्ता इस बात में है कि उन्होंने रामकथा के सरस प्रसंगों की उद्भावना की है। ऐसे अनेक

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL University of Delhi

स्थलों पर उनकी प्रतिभा सराहनीय रही है। राम के जन्म से लेकर जनक–वाटिका–प्रसंग, लक्ष्मण–परशुराम संवाद, केवट प्रसंग, ग्राम–बंधुओं की जिज्ञासा, वनवास, सीताहरण, लक्ष्मण को शक्ति लगने जैसे अनेक प्रसंग ऐसे हैं जहाँ तुलसीदास की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिल जाता है।

3.2.1 बोध प्रश्न

1. तुलसीदास का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. तुलसीदास ने कितने ग्रंथों की रचना की?
3. तुलसी की प्रसिद्धि किस ग्रंथ के कारण हुई?
4. रामचरितमानस में कितने काण्ड हैं?

3.3 प्रतिपाद्य

तुलसीदास की कविता का मूल वर्ण्य विषय राम कथा का गायन है। राम कथा पर लिखने वाले कवियों में तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। राम की कथा को घर–घर तक पहुँचाने में इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। अगर तुलसीदास का 'रामचरितमानस' ग्रंथ न होता तो शायद राम कथा घर–घर तक नहीं पहुँचती। तुलसी की कविता में भक्ति और कवित्व का ऐसा संयोग देखने को मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होता है।

तुलसीदास ने राम की प्रीति को भक्ति कहा है। तुलसीदास ने भगवान राम से प्रीति की है। उनकी भक्ति भगवान राम के सगुण और निर्गुण रूप के प्रति है। वे उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हुए कहते हैं– 'अगुन सगुन दोई ब्रह्म स्वरूपा'।

तुलसीदास ने श्रद्धापूर्वक भगवान का स्मरण करने पर बल दिया है। इस नाम का स्मरण करके गज, गणिका, अजामिल, गीद्य, शबरी, अहल्या आदि का उद्धार हुआ।

भक्ति की चर्चा करते हुए विद्वानों ने भक्ति के पाँच विशिष्ट भाव भी बताए हैं– श्रृंगार, वात्सल्य, ददास्य, सख्य, और शान्त। तुलसीदास के यहाँ श्रृंगार की अभिव्यक्ति नहीं मिलती। वात्सल्य भक्ति हमें रामचरितमानस में मिलती है–

भोजन करत बोल जब राजा।
नहि आवत तज बाल समाजा।।
कौशल्या जब बोलत जाई।
ठुमुक–ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।।

इसी तरह से तुलसी के काव्य में दास्य, सख्य और शान्त भाव की भक्ति मिल जाती है। इसी तरह से भक्ति के क्षेत्र में नवधा भक्ति का बड़ा महत्त्व रहा है। भागवतपुराण में श्रवण, कीर्तिन, स्मरण, याद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य सख्य और आत्मनिवेदन। तुलसी के काव्य में यह नौ रूप यत्र तत्र

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मिलते हैं पर ध्यान देने पर हम देखते हैं कि तुलसीदास ने एक भीलनी के प्रसंग में ही सभी रूपों का वर्णन कर दिया है।

भक्ति की भाँति तुलसी की कविता का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी कवित्व शक्ति है। तुलसीदास की कृतियों में हमें अवधी और ब्रज भाषा का प्रयोग मिलता है। जहाँ रामचरितमानस की भाषा अवधी है वहीं विनय पत्रिका, गीतावली कवितावली आदि की भाषा ब्रज है। इसलिए इनकी भाषा में संस्कृत, अवधी, ब्रज, आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलते हैं। इसी तरह से तुलसीदास ने अपने काव्यों में विभिन्न प्रकार की काव्य शैलियों में राम कथा का वर्णन किया है–

वीरगाथा काल की छप्पय शैली, विद्यापति की गीति शैली, गंग की भार शैली, कवित्त–सवैया वाली, कबीर की दोहा शैली, ईश्वर दास की दोहा–चौपाई शैली। तुलसी दास ने विभिन्न शैलियों का राम कथा का वर्णन करते हुए सफल प्रयोग किया है। तुलसीदास ने अपने जीवन में एक शब्द 'राम' को साधा और लोक और परलोक दोनों को प्राप्त किया। तुलसी के शब्दों में हम इस भाव को इस प्रकार समझ सकते हैं–

जाकी कृपा लवलेस से मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परमु विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

3.4 बोध प्रश्न

1. तुलसी ने भक्ति किसे कहा है?
2. नवद्या भक्ति के विभिन्न रूप बताइए।
3. तुलसी की भाषा कौन सी है?
4. तुलसीदास ने कितनी शैलियों का प्रयोग किया है।

3.5 अभ्यास प्रश्न

1. तुलसी की भक्ति भावना का वर्णन कीजिए।
2. तुलसीदास की काव्यशैली को समझाइए।
3. रामचरित मानस का प्रतिपा। समझाइए।
4. तुलसी के राम का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3.6 संदर्भ-ग्रंथ

1. *रामचरितमानस* - तुलसीदास
2. *हिंदी साहित्य का इतिहास* - शुक्ल
3. *तुलसी:साहित्य और साधना* - डाक्टर इंद्रपासिंह 'इंद्र'
4. *तुलसीदास* - मताप्रसाद गुप्त
5. *तुलसी-काव्य मीमांसा* - उदयभानुसिंग

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

4. कबीर

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

4.0 अधिगम का उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 साहित्यिक परिचय
4.3 विचारधारा
4.3.1 भक्ति भावना
4.3.2 बोध प्रश्न
4.3.3 दार्शनिक विचारधारा
4.3.4 बोध प्रश्न
4.3.5 सामाजिक चेतना
4.3.6 बोध प्रश्न
4.4 अभ्यास प्रश्न
4.5 संदर्भ ग्रंथ

4.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम हो सकेंगे–

- भक्तिकाल में कबीर की भक्ति के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत हो सकेंगे।
- कबीर की सामाजिक चेतना से परिचित हो सकेंगे।
- कबीर की साखियों के भावार्थ को समझ सकेंगे।
- कबीर द्वारा दिए गए उपदेशों को जान सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

4.1 प्रस्तावना

कबीरदास भक्तिकाल का ज्ञानमार्गी शाखा के आलोक स्तम्भ माने जाते हैं। इन्होंने निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की है। इनका जन्म जिस काल में हुआ वह अज्ञानता और अंधविश्वास में जकड़ा हुआ था। इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की बुराइयों पर प्रहार किया। इसके लिए इन्होंने तीखी भाषा का प्रयोग किया। साथ ही उनकी भाषा को सधुककड़ी कहा गया।

4.2 साहित्यिक-परिचय

कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुण काव्य धारा के प्रतिष्ठित कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य में निर्गुण निराकर ईश्वर की उपासना की है। कबीरदास एक भक्त, कवि, समाज चिंतक आदि सभी कुछ थे। कबीरदास के जन्म और मृत्यु के विषय के विषय में बड़ा विवाद है। कबीरदास का जन्म विद्वानों ने 1455 संवत् तथा मृत्यु 1575 संवत् स्वीकार की है। कबीरदास पढ़े लिखे नहीं थे। उनके शिष्यों ने ही समय–समय पर दिए गए उनके उपदेशों को लेखिनीबद्ध किया। कबीरदास ने अपने काव्य को साखियों, सवद, रमैनी के रूप में लिखा। कबीर ने साखियों में पदों की रचना की तथा भिन्न–भिन्न राग–रागनियों का उसमें प्रयोग किया। कहीं–कहीं पर 'सबद' नाम का भी प्रयोग इन्होंने किया है। ईश्वर की स्तुति के लिए कबीर ने रमैनियों की रचना की है। इनकी रचना इन्होंने दोहा चौपाई छन्दों में की है। कबीरदास शिक्षित नहीं है, इस बात को उन्होंने साफ शब्दों में स्वीकार करते हुए कहा है–

मसि कागद तो छुओ नहीं, कलम गहि नहीं हाथ।

कबीर के काव्य का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि कबीर की कविता का मूल वर्ण्य विषय इन विचारों में विभक्त है। कबीरदास ने भक्ति, दर्शन और समाज से सम्बन्धित बातों को अपने काव्य में वर्णित किया है।

4.3 विचारधारा

4.3.1 भक्ति भावना

कबीर मूल रूप से एक भक्त थे। उनके गुरू का नाम रामानन्द था। रामानन्द से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् कबीर निर्गुण ब्रह्म की उपासना में लग गए। ब्रह्म इनके तिल में तेल और फूल में सुगन्ध की तरह से सर्वत्र व्यापक है और दिखाई नहीं देते। कबीर ने साधु सन्तों को सम्बोधित करते हुए 'निर्गुण निर्गुण राम जपहु रे भाई' जैसी बात कही है।

कबीर ने सामान्य मानवता को संदेश देते हुए कहा है–

दशरथ सुत तिहँ लोक बखाना।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

राम नाम का मरम न जाना।।

भक्ति के क्षेत्र में कबीर ने गुरु को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। उनका मानना है कि गुरू ही भक्त को उचित मार्ग बताता है। माया से बचे रहने की प्रेरणा देता है। उसके अज्ञान को दूर कर उसे ज्ञान का प्रकाश देता है। ज्ञानमार्गी शाखा के सभी कवियों ने गुरू को महत्त्व दिया है–

गुरू गोविद दोउ खड़े काके लांगो पाँय।

बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय।।

कबीरदास मूलतः भक्त थे। उन्होंने भक्ति का शास्त्रीय निरूपण तो नहीं किया उसके व्यावहारिक पर ही अधिक बल दिया है। इनके काव्य में हमें नवद्या भक्ति के विविध रूप देखने को मिलते हैं–

दास्य भाव की भक्ति	–	कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नांउ
		गले राम की जेवडी जित खेंचे तित जाऊँ
दाम्पत्य भाव	–	हरि मेरे पीउ में हरि की बहुरिया।
वात्सल्य भाव	–	हरि जननी मैं बालक तोरा।
		काहे न औगुन बकसउ मोरा।

4.3.2 बोध प्रश्न

1. कबीरदास का जन्म कब हुआ?
2. कबीर की भक्ति का स्वरूप कैसा है?

4.3.3 दार्शनिक विचारधारा

कबीर की कविता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू दर्शन है। दर्शन का अर्थ है देखना। दर्शन के अन्तर्गत चार बातों पर ध्यान दिया जाता है– ईश्वर, जीव, जगत् और माया। कबीर ने अपने विचार इस सम्बन्ध में व्यक्त किए हैं। कबीर के अनुसार सारे संसार में एक ईश्वर की ही सत्ता विद्यमान है। उसी का प्रकाश, उसी को लाली चारों तरफ फैली हुई है। इस भाव को कबीर ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दर्शन के अन्तर्गत जीव की स्थिति पर भी कबीर ने विचार किया है। जीव और ब्रह्म एक है। ब्रह्म माया रहित है तो जीव मायायुक्त है। इस बात को कबीरदास ने बड़े सरल शब्दों में दीपक और पतंगे के माध्यम से समझाया है। उनका कहना है–

माया दीपक नर पतंग भ्रमि भ्रमि माहिं पतंग,

कह कबीर गुरू ज्ञान तें, एक आद्या उरंत।।

दर्शन के अन्तर्गत जगत् यानी संसार की स्थिति पर भी विचार किया जाता है। संसार के विषय में कवि का मानना है कि यह संसार नश्वर है। प्रतिदिन मनुष्य इस संसार का त्याग करता है। सभी को आगे–पीछे इस संसार से विमुख होना है। इस बात का कवि ने उपवन के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है–

माली आवत देख कर कलियन करी पुकार।

फूल फूले चुग लिए काल्हि तुमारी बार।।

माया पर भी दर्शन के अन्तर्गत विचार किया जाता है। कबीर ने अज्ञान को माया बताया है। उसे ठगिनी मानते हुए कहा है– माया महा ठगिनी हम जानी। इसी तरह से कनक और कामिनी तथा मेरे तेरे के भाव को भी माया बताया है। उनके अनुसार माया ईश्वर और जीव के बीच मिलन में रूकावट है। जैसे ही माया का पर्दा हटता है जीव ब्रह्म के साथ एक हो जाता है। इस बात को कबीर ने जल के कुंभ के माध्यम से समझाते हुए कहा है–

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूट्यौ कुंभ जल जल ही समाना यह तथ कथ्यौ ज्ञानी।।

4.3.4 बोध प्रश्न

1. कबीर की कविता के मूलवर्ण्य विषय बताइए।
2. दर्शन का अर्थ समझाइए।
3. कबीर के ईश्वर का स्वरूप कैसा है।
4. कबीर ने माया किसको बताया है।

4.3.5 सामाजिक विचारधारा

कबीर की कविता का एक अन्य विषय समाज से जुड़ा है। कबीर का सम्बन्ध समाज के साथ बहुत नजदीक का रहा था। उन्होंने उसके विविध रूपों को गहराई से देखा परखा था। उन्होंने समाज में देखा कि हिन्दू और मुसलमान समाज में धर्म से जुड़े बहुत से आडम्बर विद्यमान हैं। हिन्दु के जप, माला फेरना, तिलक, छापा, तीर्थ, व्रत, मूर्तिपूजा आदि सभी को आडम्बर माना है। हिन्दुओं की मूर्ति पूजा के विषय में उनका मानना था कि – दुनिया कैसी बाबरी पाथर पूजन जाये।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

घर की चाकी कोई न पूजै जाको पीसै खाय।।

इसी तरह के भाव उन्होंने मुस्लिम धर्म के प्रति भी व्यक्त किए हैं। उनके आडम्बर रोजा, नमाज, हज, अजान लगाना आदि बातों को कबीर ने व्यर्थ माना है। अज्ञान के विषय में व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं– कंकड़ पत्थर जोड़ कर, मस्जिद लई बनाय,
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

कबीर ने अपने समाज में जाति पाँति का बहुत प्रचलन देखा था। उन्होंने जाति–पाँति का खुलकर विरोध किया है। उनका मानना है कि भगवान के दरबार में न कोई ऊँचा होता है और न कोई नीचा। न कोई ब्राह्मण है न कोई शूद्र है। भगवान जाति का भूखा नहीं है वह तो भाव के भूखे हैं। इसीलिए उनका कथन है–

जाति पाँति पूदै ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।

4.3.6 बोध प्रश्न

1. कबीरदास ने हिन्दु और मुसलमानों में क्या बुराई देखी?
2. उन्होंने हिन्दु मुस्लिम धर्म में क्या बुराई देखी?
3. समाज में प्रचलित जाति पाँति को कबीर ने धर्म में कैसे बाधक माना है?

इस तरह से हम देखते हैं कि कबीर युगद्रष्टा महात्मा थे। विद्वान लोग उन्हें चिंतक, भक्त, कवि, और समाज सुधारक के रूप में देखते रहे हैं। उनके विषय में इतना अवश्य है कि जाति, धर्म से ऊपर उठे हुए संत थे। समाज में व्याप्त हर आडम्बर उन्हें खटकता है। समाज के बुराइयों को देख वे चुप नहीं रह पाते थे। अपनी तीखी वाणी में उसका प्रतिकार करते थे।

4.4 अभ्यास प्रश्न

1. कबीर की भक्ति–भावना को समझाइए।
2. कबीर की सामाजिकता चेतना पर प्रकाश डालिए।
3. कबीर की भाषा पर विचार कीजिए।
4. कबीर के दर्शन को स्पष्ट कीजिए।

4.5 संदर्भ–ग्रंथ

1. *'कबीर'* – हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. *'कबीर'* – श्यामसुंदर दास

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. *'भक्ति काव्य का समाज दर्शन'*– प्रेमशंकर
4. *'भक्ति का संदर्भ'* – देवीशंकर अवस्था
5. *'हिंदी साहित्य का इतिहास'*– आचार्य रामचंद्र शुक्ल
6. *कबीर वाणी सुधा*– पारसनाथ तिवारी
7. *कबीर के काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय*– पीताम्बरदत्त बड़थवाल

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. संत रैदास

डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

5.0 अधिगम का उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 कवि-परिचय
5.2.1 बोध प्रश्न
5.3 साहित्यिक परिचय
5.4 रैदास की भक्ति का स्वरूप
5.4.1 बोध प्रश्न
5.5 निष्कर्ष
5.6 अभ्यास प्रश्न
5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के पठन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम हो पायेंगे-

- भक्तिकाल की संतकाव्य धारा के विषय में जानेंगे।
- संत कवि रैदास के व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करेंगे।
- संत कवि रैदास की भक्ति का स्वरूप जानेंगे।
- संत कवि रैदास के सामाजिक एवं साहित्यिक योगदान की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.1 प्रस्तावना

संत कवि रैदास संत रविदास के नाम से भी जाने जाते हैं। ये मध्यकालीन संत काव्य-धारा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। 'सन्तन में रविदास' कहकर कबीर ने भी सन्त कवियों में उनके महत्त्व को स्वीकार

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

किया है। रैदास सन्त, कवि, दार्शनिक, समाज सुधारक सभी थे। इन्होंने समाज में फैली कुरीतियों के विरूद्ध आवाज़ उठाई। जात-पाँत तथा भेदभाव के विरुद्ध इन्होंने कार्य किया। इन्हें सतगुरू या जगतगुरू की उपाधि दी गई।

5.2 कवि परिचय

रैदास कबीर के समकालीन थे और कबीर के समान इनकी साधना-भूमि भी काशी थी। अतः दोनों में परस्पर संपर्क होना स्वाभाविक था। रैदास कबीर की श्रेष्ठता और सिद्धता को स्वीकार करते थे। यथा-

'नामदेव कबीर तिलोचन सधना सेन तरै।
कह रविदास, सुनहु रे संत! हरि जिउ तें सबहि सरै।

संत कवि रैदास का जन्म 'काशी' में माघ पूर्णिमा के दिन संवत 1433 में हुआ। इनके जन्म से संबंधित एक दोहा प्रचलित है-

''चौदह सौ तैंतीस कि माघ सुदी पन्दरास
दुखियों के कल्याण हित प्रगटे श्री रविदास।''

कहा जाता है कि इस दिन रविवार था, इसलिए इनका नाम रविदास रख दिया गया, जो बोलने में रैदास हो गया। इनके पिता का नाम संतोख दास तथा माता का नाम कलसां देवी था। उनकी पत्नी का नाम लोना देवी बताया जाता है। रैदास जूता बनाने का काम करते थे। यही उनका व्यवसाय था। वे अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे।

रैदास का जन्म निम्न वर्ग में हुआ था, किन्तु वे निम्न जाति में उत्पन्न होकर भी इतने आचार से रहते थे कि उन्हें पंडित समाज भी दण्डवत् करता था। अपने बारे में उनका कथन है-

'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारं।
हृदय राम गोविन्द गुन सार ।।
जाति भी ओछी, करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।

कबीर के समान रैदास भी बहुत प्रसिद्ध हुए। उनके नाम पर 'रैदासी' अथवा 'रविदासी' पंथ चला, जिसका प्रभाव फर्रूखाबाद और मिर्जापुर के आस-पास पाया जाता है। इसमें मुख्यतः चमार जाति के लोग दीक्षित हैं। सूक्ष्मता से देखा जाए तो हिन्दू समाज के लिए यह कैसा अभिशाप है कि प्रायः सन्तों और महात्माओं को उनके शिष्यों ने जाति और प्रदेश तक सीमित कर दिया। रैदास वर्ग-जाति आदि के बंधन से बहुत ऊपर थे। कबीर ने भी उन्हें 'सन्तन में रविदास सन्त' कहा था। नाभादास ने उनकी 'बाणी' को 'सन्देह-ग्रंथिखण्डन-निपुण' कहा है। उनके सदाचार और वचन को 'श्रुति-शास्त्र-वचन' से 'विरुद्ध' कहा है। रैदास के महत्त्व को

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मीराबाई, प्रियादास, उदयदास ने भी हृदय से स्वीकार किया है। अपने समय के सामाजिक अन्तर्विरोधों को झेलते हुए रैदास का इतना प्रसिद्ध हो जाना इस बात का प्रमाण है कि रामानंद के प्रभाव से हिन्दू-समाज में जातीय कट्टरता का कलंक धुल रहा था।

तत्कालीन ब्राह्मणवादी व्यवस्था के द्वारा जब रैदास को ब्राह्मण नहीं सिद्ध किया जा सका तो ब्राह्मणों ने पूर्व जन्म में उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करने का अथक प्रयास और प्रचार किया। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी मान्यता थी कि भक्ति एवं ईश्वरीय ज्ञान पर सिर्फ ब्राह्मण जाति का ही अधिकार है। विरोधियों की ऐसी पाखण्डपूर्ण एवं झूठी मान्यताओं को अनेक अवसरों पर रैदास ने अपने आत्मज्ञान एवं सच्ची ईश्वर-भक्ति से गलत सिद्ध किया। कहीं-न-कहीं इस तर्क के पीछे यही उद्देश्य था कि ईश्वर जाति-वर्ग से परे है। उन्होंने समाज को सरल एवं कल्याणकारी मार्ग दिखाया।

रैदास के अनुसार धरती पर सब व्यक्ति समान हैं, सबके समान अधिकार हैं क्योंकि ईश्वर ने सब इन्सानों को बनाया है, न कि इन्सान ने ईश्वर को। चित्तौड़गढ़ के कुम्भ श्याम मन्दिर में इनकी छतरी बनी हुई है। उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में मिलने वाला 'साधो सम्प्रदाय' रैदास की परम्परा में ही है। संवत् 1600 में रैदास के शिष्य उदयदास ने 'साध मासाधो सम्प्रदाय' की स्थापना की थी।

5.2.1 बोध-प्रश्न

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए-

1. संत कवि रैदास के गुरू का नाम क्या था?
2. संत कवि रैदास के नाम पर कौन-सा पंथ चला?
3. संत कवि रैदास अन्य किस नाम से जाने जाते थे?
4. संत कवि रविदास की बाणी को नाभादास ने क्या कहा?

ख. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. रामानन्द के बारह शिष्यों में से ..... भी एक थे। (कबीर/रैदास)
2. रैदास ..... के समकालीन थे। (सूरदास/कबीर)

5.3 साहित्यिक परिचय

रैदास का जन्म चर्मकार जाति में हुआ था। रैदास के समय दलित समाज को शिक्षा से पूर्णतया वंचित रखा जाता था। वैदिक साहित्य जैसे-वेद, गीता आदि ग्रंथों का पठन ही नहीं बल्कि श्रवण का अधिकार भी निम्न

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL SOL, University of Delhi

वर्ग को नहीं था। इस प्रकार रैदास की शिक्षा लिखित की अपेक्षा मौखिक हुई थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा और आत्म-ज्ञान के द्वारा उन्होंने ईश्वरीय-तत्त्व का जैसा अनुभव किया उसे साधारण जनमानस की भाषा में व्यक्त करने का प्रयास किया। रैदास की कोई रचना ग्रंथकारों को नहीं मिलती। केवल फुटकर रचनाएँ ही मिलती हैं। सिखों के पवित्र **'आदि गुरु ग्रंथ साहिब'** में इनके लगभग चालीस पदों को संकलित किया गया है। जो इस प्रकार हैं- रागा सिरी (1), गौरी (5), असा (6), गुजारी (1), सोरथ (7) धनसरि (3), जैतसारि (1), सुही (3), बिलावल (2), गौड़ (2), रामकली (1), मारू (2), केदारा (1), भाईरऊ (1), बसंत (1), मलहार (3)। इनके फुटकर पद 'बानी' के नाम से 'संतबानी सीरिज' में संग्रहीत हैं।

5.4 रैदास की भक्ति का स्वरूप (विचारधारा)

रैदास एक भक्त कवि थे। उनकी भक्ति भावना उनके पदों में बड़ी सरल भाषा में व्यक्त हुई है। 'कबीर के समान वे किसी पर कटूक्ति या व्यंग्य नहीं करते।' उन्हें केवल अपने आत्मज्ञान की अभिव्यक्ति की चिंता है। भक्तमाल के रचनाकार नाभादास के अनुसार

"सदाचार श्रुति शास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्यो।
सन्देह ग्रंथि खण्डन निपुन बानी विमल रैदास की।।"

रैदास भी 'वैष्णव रस' और 'पिया'की बात कबीर की ही पद्धति पर करते हैं, जिसमें तीन बातें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं- वैष्णव भक्ति के अनुरूप प्रेमतत्त्व की प्रमुखता, दाम्पत्यभाव और जाति-पाँति को महत्त्व न देना। सगुण 'राम' नाम का प्रयोग रैदास भी अन्य निर्गुण संतों के समान करते हैं, लेकिन रूपगुण लीलाधाम के संदर्भ में उनका मतभेद हैं-

"जिहि कुल साधु बैसनो होई
बरन अबरन रंक नहिं ईश्वर विमल बासु जानिये जग सोई।

'राम रहीमा कृष्ण करीमा' की एकता को रैदास भी मानते हैं। वे निर्गुण ईश्वर को अपना आराध्य स्वीकार करते हैं-

"कहि रैदास मैं ताहि को पूर्णा जाके ठाँव नाँव नहिं कोई।"

प्रेम की पीड़ा को रैदास भी अनुभूत करते हैं। ईश्वर से न मिल पाने के विरह को वे एक विरहिणी के समान व्यक्त करते हैं-

"मैं बेदनि कासनि आँसू, हरि बिन जिवन रहै कस राखू
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै।"

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रैदास अपने विरह व्याकुल मन को हरि की पाठशाला में पढ़ाना चाहते हैं। किताबी अक्षर के स्थान पर वे ज्ञान का अक्षर पढ़ने की बात करते हैं और प्रेम की पाती पर सुरति की लेखनी से 'र' और 'म' को अंकित कर गुरु को दिखाना चाहते हैं। वे प्रेम के पाठ को महत्त्वपूर्ण मानते हैं-

"मोहि अन्य पढ़न सो कौन काज''

इस प्रेम के आवेग में रैदास अनेक प्रकार से प्रभु की आराधना करते हैं और थक-हार कर अन्ततः वे प्रभु की आराधना में खुद को पूरी तरह से असमर्थ पाते हैं। विवश होकर आत्मसमर्पण कर देते हैं। रैदास की इस प्रेमाभक्ति का आधार है संबंध-भावना, जो गिरि-मयूर, चन्द-चकोर आदि उपमाओं द्वारा प्रकट हुई है। इन संबंधों के द्वारा ही वे खुद को प्रभु के निकट पाते हैं और संसार के कष्टों से मुक्ति का अनुभव करते हैं।' 'प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी जाकी अंग अंग बास समानी'।

रैदास ने अपने युग को कलियुग कहा है और इन परिस्थितियों में 'राम' नाम स्मरण को भगवद-प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। वे कहते हैं कि वेदों, पुराणों तथा स्मृतियों के सहारे भगवान को नहीं पाया जा सकता। केवल 'राम' नाम है, जो मनुष्य को भवसागर के पार ले जा सकता है। 'अब कैसे छूटे राम-नाम रट लागी' उन्हें यह विश्वास है कि यह नाम सिद्धियों को देने वाला, कामधेनु, चिन्तामणि और कल्पवृक्ष है। यथा,

''रैदास राति न सोइए, दिवस न करिये स्वाद।
अहं निस हरीजी सुमिरिये, छांड़ि सकल प्रतिवाद।।''

इस प्रकार रैदास ने भक्ति का सरलतम रूप उन लोगों के लिए प्रस्तुत किया, जो शास्त्रों और योग की जटिलताओं को नहीं समझ पाते।

रैदास का ज्ञान सत्संग एवं लौकिक अनुभव से प्राप्त था, इसलिए सत्संग महिमा का स्वर उनमें प्रबल है। वे स्पष्ट कहते हैं कि सच्ची संगति के बिना ईश्वर भक्ति उत्पन्न नहीं होती -

"साध संगति बिना भाउ नहीं उपजै
भाव बिनु भगति नहीं होई तेरि।''

उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार गंदा पानी गंगा नदी में मिलकर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति भी सत्संगति से मुक्ति पा जाते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अन्य संतों के समान रैदास में भी रहस्यवादी प्रवृति देखी जा सकती है। सिद्धों और नाथों की परम्परा के प्रभाव स्वरूप सहज, शून्य, षट्कर्म, नाद, बिन्दु, गगन-मंडल, पवन, सुरति आदि यौगिक प्रतीकों का प्रयोग रैदास ने भी किया है। फिर भी रैदास के काव्य में भावात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति अधिक हुई है।

ईश्वर भक्ति के अन्तर्गत दाम्पत्य भाव की अभिव्यक्ति वे कबीर के समान ही करते हैं। वे जीव को परमात्मा का अंश मानते हुए पूर्ण समर्पण की बात करते हैं। ईश्वर से अपने संबंध को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-

'सोई मुकुंद हमरा पित माता।'

रैदास जीव और ब्रह्म के इस संबंध को वैयक्तिक साधना के माध्यम से अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। रैदास ने जिस ब्रह्म का चित्रण किया है, ''वह निर्गुण निराकार से अधिक क्रियात्मक रूप से सगुण निराकार है और उसका सबसे महत्त्वपूर्ण गुण शरणागत को गरिमा प्रदान करना है। संभवत: उनकी इस विचारधारा को देखकर ही कुछ विद्वानों ने उन्हें सगुण, साकार का पुजारी माना है।'' लेकिन वे मूलत: निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं।

संत रैदास ने भी ब्राह्मणों की आडंबर और आवरण-प्रियता का डट कर विरोध किया। यद्यपि रैदास के तेवर कबीर के समान तीखे नहीं थे, किन्तु जाति-पाँति, पूजा-पाठ, छापा-तिलक जैसी मान्यताओं और दिखावे की प्रवृत्तियों का वे भी विरोध करते थे। यथा-

"दूधु न बछरै थनहु बिटारियो।
फूलु भवरि जलु मीनि बिगारियो।
माई गोविन्द पूजा कहा लै चरावउ।
अवरू न फूलु अनूपु न पावउ।।''

अन्य स्थान पर वे कहते हैं- ''मन चंगा तो कठौती में गंगा'' रैदास के अनुसार तन की पवित्रता की अपेक्षा मन की, आत्मा की पवित्रता आवश्यक है।

निम्न जाति में पैदा होकर भी अपने उच्चतम संस्कारों के बल पर रैदास ने भक्ति को सरल तथा सर्वसुलभ बनाने का प्रयत्न किया।

5.4.1 बोध प्रश्न

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए।

1. संत कवि रैदास को ईश्वरीय-तत्त्व का अनुभव किसके द्वारा हुआ?
3. रैदास की भक्ति-पद्धति की तीन महत्त्वपूर्ण बातें कौन-सी हैं?
4. रैदास किसको अपना आराध्य स्वीकार करते हैं?

ख. सही/गलत का निशान लगाइए।

1. रैदास के फुटकर पद बानी के नाम से संतबानी सीरीज़ में संकलित हैं। (.....)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2. 'सोइ मुकंद हमरा पित माता' कबीर का कथन है। (.....)

5.5 निष्कर्ष

अतः सन्त कवि रैदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। कबीर के समान समाज में व्याप्त कुरीतियों, पाखंडों, आड़म्बरों पर उन्होंने कठोर प्रहार नहीं किया परन्तु जाति-प्रथा का विरोध किया। रैदास के काव्य की भाषा सहज सरल है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार ''अगर कबीर के काव्य में ओज और प्रखरता थी तो रैदास में शान्ति, संयम और विनम्रता थी, कबीर की विचारधारा के केन्द्र में हिन्दुओं, मुसलमानों का शोषित, प्रताड़ित वर्ग था तो रैदास के विचारों में चमारों और सवर्ण हिन्दुओं का भेदभाव।'' पाठशाला में अक्षर-ज्ञान उन्होंने नहीं प्राप्त किया परन्तु अपने सहज ज्ञान को जिस तरह उन्होंने प्रस्तुत किया, वह जन-जन के हृदय की वाणी बन गया।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. संत रैदास की भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. 'रैदास ने अपनी भक्ति के माध्यम से सभी सामान्य लोगों के लिए भक्ति का सरल मार्ग सुझाया।' इस मत की समीक्षा कीजिए।
3. 'रैदास कबीर के समान आडम्बरों पर हमला नहीं करते।' अपना मन्तव्य प्रकट कीजिए।

5.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. *सतगुरु रविदास अनुभव प्रकाश*- गुरू रविदास आश्रम ऊण मुजफरनगर (उ.प्र.)
2. *रैदास* धर्मपाल मैनी, साहित्य अकादमी
3. *संत रैदासः व्यक्तित्व एवं कृतित्व*- श्री संगमलाल पांडेय, प्रकाशक, दर्शनपीठ, इलाहाबाद
4. *संत रविदास*- श्री रतन चन्द्र
5. *मध्यकालीन काव्य*-मुरलीधर श्रीवास्तव
6. *संत रैदास* - योगेन्द्र सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7. *संत रविदास और उनका काव्य*, श्री गोपाल जी, समकालीन काव्य प्रकाशन, वाराणसी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

6. गुरु नानक

डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

6.0 अधिगम का उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 जीवन परिचय
6.2.1 बोध प्रश्न
6.3 साहित्यिक परिचय
6.3.1 बोध प्रश्न
6.4 गुरुनानक देव की विचारधारा
6.5 सामाजिक चेतना
6.5.1 बोध प्रश्न
6.6 निष्कर्ष
6.7 अभ्यास प्रश्न
6.8 सन्दर्भ-ग्रंथ

6.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम हो जाएंगे-

- गुरु नानक देव के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- गुरु नानक के साहित्यिक योगदान से अवगत हो सकेंगे।
- गुरु नानक की विचारधारा को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन सन्त काव्य में गुरु नानक के योगदान से अवगत हो सकेंगे।
- गुरु नानक का सामाजिक क्षेत्र में योगदान को समझ सकेंगे।

© DDCE, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

6.1 प्रस्तावना

गुरु नानक देव का नाम सिक्खों के आदिगुरु के रूप में लिया जाता है। नानक के अनुयायी उन्हें विभिन्न नामों से पुकारते हैं जैसे- नानक देव जी, बाबा नानक और नानकशाह आदि। नानक देव के व्यक्तित्व में अनेक विशेषताएँ थीं जैसे दार्शनिक, योगी, गृहस्थ, धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक, कवि, देशभक्त आदि। सन्त साहित्य में नानक की गिनती उन सन्तों में होती है जिन्होंने धर्म, समाज, देश सभी क्षेत्रों में क्रान्ति का बिगुल बजाया। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी को भी पर्याप्त सम्मान दिया। मध्यकाल से पूर्व के सन्तों पर प्रायः यह आक्षेप लगाया जाता रहा है कि ये दार्शनिक और तत्व-चिन्तक अपने ही विचारों और चिन्तन-मनन में इतने लीन रहते थे कि अपने परिवेश, समाज, शासन-व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों और बुराइयों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे परन्तु नानक अध्यात्म-चेतना के प्रसार के साथ धर्म, समाज और देश में व्याप्त रूढ़ियों, आड़म्बरों और विकृतियों को दूर करने के प्रति पर्याप्त सजग थे।

6.2 जीवन परिचय

गुरु नानक का जन्म राइभोई की तलवण्डी (यह गाँव लाहौर (पाकिस्तान) के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 40 कि.मी. की दूरी पर ननकाना साहिब नाम से प्रसिद्ध है) में बेदीवंश परम्परा के कालूचन्द पटवारी के घर, माता तृप्ता की कोख से वैशाख शुक्ला 30, संवत् 1526 वि. (अप्रैल, सन् 1469) को हुआ था। संवत् 1595 वि. (सन् 1539 ई.) में 69 वर्ष 10 महीने की आयु व्यतीत करके वे इस लोक से विदा हो गये।

गुरु नानक बचपन से ही विचारशील, एकान्त सेवी एवं शान्त स्वभाव के रहे। बचपन से ही इनकी रूचि रोज़मर्रा के सामान्य खेलों में नहीं थी। बच्चों ने इनसे खेलने के लिए नया खेल पूछा तो इन्होंने सभी बच्चों को पद्मासन पर बैठाकर 'सत्य कर्तार-सत्य करिर' बोलने के लिए कहा। माता ने जब उन्हें इस तरह करते-कराते देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गईं। इसके बाद पिता ने इन्हें घर पर ही हिन्दी-संस्कृत-फारसी और पंजाबी की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की। कहा जाता है कि इन्होंने गोपाल पण्डित से हिन्दी, ब्रजलाल पण्डित से संस्कृत और मौलवी कुतुबुद्दीन से फारसी पढ़ी थी। बालक नानक ने इन सबसे भाषा तो सीखी परन्तु अपने आत्म-बल के सहारे उनको परमात्मा का अखण्ड विश्वास दिलाकर अपने प्रति सहृदय भी बना लिया।

नानक के बचपन और किशोर आयु की कुछ घटनाएँ उनके मानवीय सहृदय और आत्म-चेतस होने की ओर संकेत करती हैं। एक बार पिता ने कुछ रूपये देकर नानक को बाज़ार से सामान लाने के लिए भेजा परन्तु मार्ग में कुछ भूखे साधु-सन्तों को भोजन कराने में ही उन्होंने रूपये खर्च कर दिये और घर आकर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सहज भाव से सच्चाईपूर्वक कहा कि वे 'सच्चा सौदा' करके आ गए हैं। इस घटना से पिता तो बहुत दुखी और क्रोधित हुए परन्तु बहिन नानकी बहुत विस्मित हुई और भाई के प्रति स्नेह से भर गई। बहिन नानकी ने अपने पति जयराम से कहकर भाई को सुलतानपुर अपने घर बुला लिया। बहिन और बहनोई के कहने पर नानक ने नवाब दौलत खाँ लोदी के यहाँ नौकरी स्वीकार कर ली। वहीं पर रहते हुए कुछ समय बाद आटा आदि रसद तौलते हुए 'तेरह' की संख्या को 'तेरा-तेरा' कहते हुए ज्यादा रसद तौल गए फलस्वरूप नौकरी से अलग कर दिये गए। संवत् 1544 वि. को नानक का विवाह मूलचन्द जी की सुपुत्री सुलक्षणी के साथ सम्पन्न हुआ। प्रारम्भिक दाम्पत्य जीवन सुचारू रूप से चला। इनके श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामक दो पुत्र हुए। बड़े पुत्र श्रीचन्द कुशाग्र बुद्धि के निकले जिन्होंने आगे चलकर उदासी सन्यास धारण किया और अपना 'उदासी सम्प्रदाय' चलाया। अपने पिता की विचारधारा से मतैक्य न होने के कारण वे पिता के उत्तराधिकारी नहीं हुए।

पिता कालूचन्द ने नानक की अन्यमनस्कता से चिन्तित होकर उन्हें कृषि-कर्म में लगाना चाहा परन्तु वहाँ भी नानक ने 'सच्चा सौदा' के समान 'सच्ची खेती' का उपदेश दे डाला कि शरीर को खेत बनाकर, उसमें कर्म का बीज बोकर, प्रभु-प्रेम जल से सींचते हुए हरि भाव उगाना चाहिए, इसी से निर्वाण की प्राप्ति होगी।

इहु तनु धरती बीजु करमा करो, सलिल आपाउ सारिंग पाणी।

अमनु किरसाणु हरि रिदै जमाइलै, इउ पावसि पटु निरवाणी।।

अतः पिता के बताए वाणिज्य-कर्म में भी उनका मन नहीं रमा। वे कहते थे कि 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे'। खोटे वाणिज्य-कर्म से मन भी खोटा हो जाता है। वे वस्तु के सच्चे सौदे पर बल देते रहे- 'खोटे वणजिए मनु-तनु खोटो होई।'

ऐसी दृढ़ आस्था वाले युवक नानक ने घर-बाहर की चिन्ता किये बिना दूर-दूरान्तर देशाटन करने की ठानी और घर से निकल पड़े। नानक जी ने देश के भीतर और बाहर बहुत बड़े भू-भाग की यात्राएँ की। पूर्व में वे कामरूप (आसाम), जगन्नाथपुरी एवं देश के अन्दरूनी भूभाग में घूमे। दक्षिण में रामेश्वरम् सिंहलद्वीप तक, पश्चिम में अर्बुदगिरि (आबू पर्वत), गुजरात में और फिर बलख-बुखारा, बगदाद, मक्का-मदीना तक गए। वे बीस-पच्चीस वर्षों तक पंजाब में और पंजाब-सीमा से बाहर घूमते रहे। इस देशाटन काल में गुरुजी का पक्का साथी 'मरदाना' उनके साथ रहा। पूरे यात्रा-काल की महत्त्वपूर्ण घटना श्रमजीवी 'लालो' की आवभगत स्वीकार करना है। कर्म से भिन्न समझे जाने वाले 'लालो' के घर ठहरना और अतिथि सत्कार स्वीकार करना समाज में खलबली पैदा करने वाली घटना बन गई। जब उच्चवर्गीय ब्राह्मण, क्षत्रिय समाज को यह सूचना मिली कि एक ऊँची पहुँच के महात्मा श्रमजीवी बढ़ई के घर रोटी खा रहे हैं तो जमींदार 'भागो'

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

की ओर से भोजन का निमन्त्रण दिया गया जिसे उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि लालो की रोटी में परिश्रम की कमाई का जो स्वाद है वह षट्रस व्यंजनों में कहाँ?

इसी प्रकार की एक घटना आसाम, कामरूप की बताई जाती है जहाँ नानक ने तन्त्र-मन्त्र करने वाले पाखण्डी कलन्दरों, फक़ीरों, माला-तिलकधारी पन्थिक लोगों के साथ, जो विचित्र भेष धारण कर लोगों को ठगते थे, सत्संग किया और उन्हें उनके पाखण्ड़ से अवगत कराया। इसी तरह की एक काव्यरूढ़ि तब की है जब नानक मुसलमानों के तीर्थ मक्का शहर में थे। वे काबे की तरफ़ पैर फैलाकर विश्राम करने लगे। तीर्थ की बेअदबी समझकर मुल्ला ने उन्हें डाँटते हुए कहा कि 'तुम अल्लाह की तरफ पैर करके क्यों लेटे हो? इस पर उन्होंने सहज भाव से कहा कि ''अच्छा भाई मेरे पैर उधर कर दो, जिधर अल्लाह न हो'' इस पर मुल्ला हैरान रह गया। आखिर ऐसी कौन सी दिशा या जगह है जहाँ अल्लाह नहीं है। इस प्रकार नानक सत्य का दर्शन कराते और भक्ति का प्रचार-प्रसार करते देश-देशान्तरों का भ्रमण करते रहे। देशाटन से लौटकर वे 16 वर्ष इस धराधाम पर रहे और 69 वर्ष की आयु सम्पन्न करके पारलौकिक जीवन में लौट गये।

6.2.1 बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प का चयन करें।

1. गुरु नानक का जन्म कब हुआ था?

   (1) 1600 (2) 1526 (3) 1834 (4) 1940

2. गुरु नानक कौन से पंथ के प्रवर्तक थे?

   (1) उदासी सम्प्रदाय (2) सिक्ख पंथ (3) हरिदासी सम्प्रदाय (4) डेरा सच्चा सोदा

(ख) एक पंक्ति में प्रश्न का उत्तर दीजिए।

1. नानक के व्यक्तित्व की विशेषताएँ बताइए।
2. नानक ने हिन्दी, संस्कृत और फारसी किससे सीखी?
3. नानक का विवाह किसके साथ हुआ था?

6.3 साहित्यिक परिचय

गुरु नानक देव की वाणी 'गुरु ग्रंथ साहिब' आदि ग्रन्थ में संग्रहित है। जिन गुरुओं पर नानक छाप लगी हुई है वे इस प्रकार हैं– गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव और गुरु तेगबहादुर जी। सभी परवर्ती गुरुओं ने आदि गुरु नानक की वाणी का विनम्रतापूर्वक स्मरण किया है। नानक की समग्र

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वाणी मुख्यतः सबद और सलोक (शब्द-पद और साखी) काव्यरूपों में संकलित है। 'जपुजी', 'आसा दी वार', 'पट्टी', 'आरती', 'दखिनी ओंकार', सिंध गोसटि (सिद्ध गोष्ठी) आदि रचनाएँ नानक के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 'सोहिला' और 'रहिरास' शीर्षक पद-समूह में भी आपके अनेक पद अथवा पौड़ियाँ संकलित हैं। समूची नानक-वाणी में विचारों और भावों की सघनता है। आध्यात्मिक विषय के विभिन्न अंगों का निरूपण नानक-वाणी में निहित है। प्रेम-विरह की इतनी मार्मिक व्यंजना हुई है कि हृदय में गहरी पैठ करती है। नानक की वाणी की विनम्रता समूचे सन्त-साहित्य में उल्लेखनीय है।

गुरु नानक देव की महत्त्वपूर्ण रचना 'जपुजी' है। यह रचना सभी सिक्ख बन्धुओं एवं पंजाब-सिन्ध क्षेत्रों से जुड़े हुए अनेक आस्तिक हिन्दुओं की कंठ-वाणी है। 'जपुजी' सूत्रात्मक शैली में रची गई है। इसमें थोड़े शब्दों में गहन भावों का वर्णन है। हम कह सकते हैं कि इसमें व्यास के स्थान पर समास शैली का प्रयोग है।

6.3.1 बोध प्रश्न : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए।

(क) गुरु नानक जी की वाणी कहाँ संग्रहित है?

(ख) गुरु नानक की महत्त्वपूर्ण रचना का नाम बताइए।

6.4 गुरु नानक देव की विचारधारा

गुरु नानक सिक्ख धर्म के मूल प्रवर्तक थे। उनके बाद गुरु परम्परा में सभी गुरुओं ने उनकी विचारधारा को ही श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आगे बढ़ाया इसीलिए उन सभी को नानक कहा गया। दशम गुरु गोविन्द सिंह ने इस परम्परा को बदला इसीलिए गुरु गोविन्द सिंह जी की रचना आदिग्रन्थ में समाहित नहीं हुई। वह अलग से ही दशम ग्रन्थ नाम से जानी जाती है और उनका पन्थ 'खालसा पन्थ' (स्थापना वर्ष-सन् 1696) कहलाता है। आदि गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित सिक्ख सम्प्रदाय की विचारधारा बहुत उदार, सहज और उदारवादी थी। वह मनुष्य होकर जीवन-सार्थक करने की भावना को पुष्ट करती है। गुरु नानक के सामाजिक और आध्यात्मिक विचार कबीर-वाणी से बहुत मेल खाते हैं परन्तु उनकी विचारधारा की अपनी भी विशेषताएँ हैं जिस कारण उन्हें सिक्ख पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। नानक कहते हैं कि जो परम सत्ता है, जो सत्य है उसका चाकर होने में चेतना को सुख प्राप्त होता है। सेवक के लिए सेवा-धर्म सर्वोपरि है। 'खुदी' (अहंकार) को दूर करने के लिए स्वयं के दोष देखना, आत्मालोचन करना आवश्यक है। सच्चाई यह है कि हम ही अकेले अच्छे नहीं है, दूसरे भी अच्छे हैं। दूसरों को बुरा समझने की प्रवृत्ति अहंकार का पोषण करती है। नानक के अनुसार उद्धार करने वाला तो एक ही है–

"सेवा करे सु चाकरु होइ। जल थलि मही अलि रवि रहिआ सोइ।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ। प्रणवति नानकु तारे सोई।।"

उस परमात्मा की आज्ञा से बाहर कोई भी नहीं है। जो उसकी आज्ञा को भली प्रकार समझ लेता है वह कर्त्तापन के अहंकार से मुक्त हो जाता है।

नानक के यहाँ सर्व-धर्म समभाव सर्वोपरि है। नानक किसी भी धर्म या पंथ को बुरा नहीं मानते बल्कि उसकी बुराइयों रूढ़ियों, मायान्धकारजनित दोषों को बुरा कहते हैं। उनकी दृष्टि में वही ज्ञानी है जो सभी धर्मों, मनुष्य मात्र को एक मानता है। सच्चे धर्म पर चलने के लिए आत्म-परिचय अर्थात् आत्मावलोकन की आवश्यकता है।

नानक धर्म में गुरु-सद्गुरु सर्वोपरि है। गुरु के प्रति समर्पण अहंकार-विसर्जन का कारण बनता है। उसी से शिष्य का उद्धार या कल्याण होता है। उनकी दृष्टि में गुरुसेवा और प्रभुसेवा में कोई अन्तर नहीं है।

नानक-धर्म जीवनगत आचरण और व्यवहार पर आधारित विश्वासमयी आध्यात्मिक चेतना है जो अपने अनुयायियों और अन्यों को भी एक विचार-सूत्र में जोड़ने में समर्थ रहा है। नानक-धर्म किसी तिथि या अवसर-विशेष पर उद्घोषित धर्म या पंथ नहीं है बल्कि वह अनुभव में आई वह चेतना है जो वाणी रूप में समय-समय पर व्यक्त होती रही है। इस गतिमान रहने और विलीन होने वाली मनुष्य-सृष्टि के पीछे कौन-सी अपरोक्ष सत्ता प्रेरक शक्ति के रूप में निहित है। उस प्रेरक शक्ति को जानने, विश्वास करने और फिर उस विराट चेतना के प्रति समर्पित भाव के रूप में नानक का अनुभूत तत्त्व-चिन्तन ही उनकी वाणी में मुखर हुआ है। विराट के प्रति ऐसा अनुभव कराने की जो सामर्थ्य रखता है वही गुरु-सद्गुरु है। दार्शनिक दृष्टि से नानक-वाणी के विवेचनीय पक्ष, परमात्मा, सृष्टि, माया, मनुष्य, मन, मरजीवा एवं सद्गुरु आदि हैं।

परमात्मा– तत्कालीन समाज का उच्च वर्ग शिक्षित एवं दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों से अवगत कहा जा सकता है किन्तु जन-सामान्य अशिक्षित एवं श्रमजीवी था परन्तु उस बहुत बड़े समुदाय की आस्था भी ईश्वरीय सत्ता पर थी। वह अपनी आस्तिक भावनाओं को अनेक देवी-देवताओं की पूजा-उपासना के द्वारा व्यक्त करता था। नानक देव ने उन परिस्थितियों को समझा और परमात्मा सम्बन्धी-वाचिक परम्परा में चले आते हुए पूर्व-चिन्तन को अपने अनुभव में ढाल कर वाणी रूप प्रदान किया। उनका यह चिन्तन परमात्मा के अव्यक्त निर्गुण स्वरूप को ही प्रतिष्ठित करता है परन्तु उन्होंने परमात्मा के निर्गुण स्वरूप को व्यक्तिगत अनुभव न मानकर सर्वग्राह्य बनाने में अपनी वाणी समर्पित की। उनकी वाणी में परमात्मा के अवतार पक्ष का खण्डन और एकेश्वरवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा देखने को मिलती है। ईश्वर सम्बन्धी उनका विचार उपनिषदों के अनुरूप है। परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए वे किसी तर्क-वितर्क, खंडन-मंडन की पद्धति को नहीं अपनाते। उनकी चेतना श्रद्धा-भावना पर टिकी रही है। वे मानते हैं कि परमात्मा परोक्ष-अनुभव का विषय न होकर प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है और अनुभूति में निहित विचार बाह्य प्रमाणों

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

से उतना सिद्ध नहीं हो पाता जितना आन्तरिक चिन्तन से। यही कारण है कि गुरुवाणी के ऐसे वाक्य–"जह जह देखा तह तह सोई" बहुत प्रभावी बन पड़े हैं। परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए नानक कहते हैं–

"एक ओंकार, सतिनामु, करता, पुरखु, निरभउ, निरवैरु, अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।"

अर्थात् वह परमात्मा एक है, ओंकार है, सतनाम है, करता है, पुरुष है, निर्भय है, निर्वैर है, अकाल मूरति है, अजूनी (अयोनि) सैभ (स्वयंभू) है, गुरु प्रसादि है अर्थात् उसकी अनुभूति गुरु की कृपा से होती है। इसके अतिरिक्त नानकवाणी में उसका सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, रक्षक, पालक, सूत्रधार, न्यायी, दाता, क्षमशील, माता-पिता, स्वामी आदि रूपों में भी वर्णन मिलता है।

गुरु नानक देव का अखण्ड विश्वास है कि परमात्मा एक है। उपनिषद् परम्परा में भी यह मान्यता पहले से प्रतिष्ठित है। नानक कहते हैं–

"साहिबु मेरा एक है, अवरु नहीं भाई।"

इस प्रकार नानक-वाणी में उस एक परमात्मा के होने में अपनी अखण्ड आस्था व्यक्त की है। नानक-वाणी में जब उसके अनेक गुणों का बखान किया जाता है तो उसके सगुण-साकार रूप का आभास होता है परन्तु वह सर्वत्र निराकार रूप में ही चित्रित हुआ है। यही नहीं अनेक स्थलों पर वे परमात्मा के अवतारी होने पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं जैसे अवतारी राम अपनी भाग्य रेखा तक क्यों नहीं बदल पाये? राम ने सीता और लक्ष्मण के लिए मन में दु:ख किया–

"मन महि झूरै रामचन्द्र सीता लछमणु जोगु।"

सृष्टि क्रम– सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ? इस प्रश्न का समाधान प्राचीन शास्त्रों में भी अनिश्चित और अज्ञात ही है। प्राय: सभी शास्त्र सृष्टि का आदि स्रोत ओंकार को ही बताते हैं। नानक सृष्टि को अनादि, प्रभु व्याप्ति का कारण सत्य और विनाशशील होने के कारण सान्त मानते हैं। सृष्टि-रचना के समय के बारे में नानक जी का कहना है कि सृष्टि-रचना के समय का सही ज्ञान तो सृष्टि के रचनाकार को ही हो सकता है–

"कवणु सु वेला वखतु कवणु कवणु थिति कवणु वारु।
कवणि सिसती माहु कवणु जितु होआ आकारु।।"

माया का स्वरूप– यह दृश्य जगत देखने में जितना आकर्षक है, चिन्तन में उतना सहन और ग्राह्य नहीं रहा। वेदान्तसूत्रों में इस दृश्य जगत को "ब्रह्म की तर्क्यलीला' बताया गया है। शंकर ने माया को शक्ति या प्रकृति की संज्ञा दी है। आचार्य शंकर की स्पष्ट मान्यता है कि यह त्रिगुणात्मिक माया परमात्मा की शक्ति है। गीता की मान्यता है कि वह अजन्मा, अव्यय परमात्मा योगमाया से आवृत्त बना रहता है–

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।"

नानक देव जी का कहना है कि प्रकृति अथवा माया परमात्मा से स्वतंत्र नहीं है। जैसा कि सांख्यवादी मानते हैं कि माया मूलतः परमात्मा के समान ही अनादि, स्वतंत्र और स्वयंभू है। वेदान्ती उसका अनादित्व मानते हुए भी उसे स्वतंत्र और स्वयंभू नहीं मानते। नानक जी कहते हैं कि परमात्मा ने ही माया का सृजन किया है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह स्वयं परमात्मा के हुकुम से अस्तित्ववान् दिखती है–

"त्रैगुण आदि सिराजिअनु माइआ मोहु वधाइआ।"

यह त्रिगुणमयी माया गुरु वाणी में परमात्मा की दासी के रूप में निरूपित है–"इस दासी धारी सबल पसारी जीव जतं लै मोहनिआ।" यह अपनी मोहिनी शक्ति से नाना रूप धरकर सारे संसार को वशीभूत करने में समर्थ है। परमात्मा की यह माया सारे संसार में व्यापक रूप में व्याप्त है। कहीं वह हर्ष और शोक के रूप में है, कहीं व्याधि होकर छाई हुई है। परन्तु परमात्मा की शरण में जीने वाले भक्तों पर वह अपना प्रभाव नहीं डाल पाती।

मन का स्वरूप– भारतीय मनीषा में मन के विषय में बहुत चिन्तन-मनन हुआ है। मन मानव शरीर का अत्यन्त शक्तिशाली अंग है। "मन्यते अनेन इति मनः" अर्थात् जिससे मनन किया जाए वह मन है। पुराणों में ब्रह्माजी को मन से उत्पन्न बताया गया है और फिर ब्रह्मा के मन से संसार की सृष्टि बताई गई है।

नानक वाणी में भी विस्तार से मन का विवेचन किया गया है। वे मन की उत्पत्ति क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर इन पाँचों तत्त्वों के योग से मानते हैं। नानक मन के दो रूप मानते हैं– एक, अहंकारयुक्त मन और दूसरा, प्रकाशमय मन। अहंकारी मन विषयों की ओर दौड़ लगाता है और प्रकाशयुक्त मन परमात्मा की ओर उन्मुख रहता है, उर्ध्वमुखी रहता है। अहंकारयुक्त मन कामनाओं में उलझा रहता है, मनुष्य जीवन का अमूल्य समय गँवाकर अनेक योनियों में भटकता रहता है।

"इहु मनु करमा इहु मनु धरमा। इहु मन पंच ततु से जनमा।"

प्रकाशयुक्त मन सदैव परमात्मा की ओर उन्मुख रहता है। ऐसा मन ही शम अवस्था में रहकर परम आनन्द को प्राप्त करता है।

जीवात्मा– इस दृश्यात्मक जगत में सृजित जीव और उसमें निहित चैतन्य सर्वाधिक विलक्षण स्थिति है। मनुष्य योनि अन्य सभी योनियों में श्रेष्ठ है क्योंकि उसी में सुख-दुख का अनुभव करने और उसे अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य है। महाभारत में कहा गया है–'नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किञ्चित्'। नानक-वाणी में जीव-सृष्टि परमात्मा के हुकुम से हुई है। मनुष्य का सृजन ही नहीं, बल्कि उसे मिलने वाला यश भी उसी के हुकुम से सम्भव है। नानक के शब्दों में–

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

"हुकमे आवे हुकमे जाइ। आगै पीछै हुकमि समाइ।"

जीव परमात्मा से ही जन्म लेता है। परमात्मा ही जीव के अन्दर अंश रूप में विद्यमान रहता है इसीलिए उसे जीव-आत्मा कहते हैं। इसी अर्थ में जीव को अविनाशी माना जाता है। नानक जीव की अरमता के विषय में कहते हैं–

"न जीड मरै न डूबे तरै।"

ऐसे अमर आत्मन् को धारण करने वाले जीव अनन्त हैं, फिर भी वे एक सूत्र में पिरोये हुए हैं जैसे माला के मनके अलग-अलग होते हुए भी एक ही सूत्र में पिरोये रहते हैं।

मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि परमात्मा का साक्षात्कार है, उसमें तन्मय होना है। उससे वियुक्त होकर आत्मन् जीवात्मा हो जाता है। परन्तु मनुष्य-योनि में जीवात्मा पुनः परमात्म-तत्त्व को अनुभव करने में समर्थ हो सकता है। यह उसके अहंकार के विगलित होने पर ही संभव हो सकता है। तभी आत्मा और परमात्मा का ऐक्य हो सकता है।

गुरु नानक की वाणी में निराकार, निरंजन की अद्वैत भक्ति का प्रवाह उमड़ा है। परन्तु वह आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित भक्ति जैसा नहीं है। आचार्य शंकर निवृत्ति मार्ग पर जोर देते हैं परन्तु नानक निवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। नानक का विश्वास है कि निवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति मार्ग पर अग्रसर करने में गुरु की कृपा का विशेष योगदान रहता है। गुरु के निर्देश से दुष्प्रवृत्ति का निवारण सम्भव होता है। तभी चेतना में उस एक के प्रति श्रद्धा-विश्वास, आशा-आस्था और समर्पण का भाव जाग्रत होता है–

"गुरु-परसादी दुरमति खोई। जहँ देखा तहँ एको सोई
कहत नानक ऐसी मति आवै। ताँ को सचे सचि समावै।"

भक्ति के दो रूप माने जाते हैं–वैधी भक्ति, जो विधान परक होती है और प्रेमा भक्ति जिसमें भाव-विचार की प्रधानता होती है। नानक के यहाँ वैधी भक्ति को महत्त्व नहीं मिला, बल्कि उसका खण्डन ही मिलता है। नानक कहते हैं–

"पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं। सिल पूजसि वगुल समाथं।"

वैधी भक्ति में अहं भाव पूर्ण रूप से तिरोहित नहीं हो पाता–जबकि प्रेमा भक्ति में अहं वृत्ति पूर्णतः विगलित हो जाती है और एकनिष्ठ रागानुरागा भक्ति की भावना प्रबल रहती है।

नानक की वाणी विश्व मानवता और सर्वहित-संवेदना से पोषित है। उसमें ऊँच-नीच, जाति-पाँति के लिए कोई स्थान नहीं है। उनका कहना है कि शरीर में निवास करने वाली ज्योति की पहचान करो, जाति

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मत पूछो। वस्तुतः जो प्रभु को भूल जाता है वही हीन या निम्न जाति का है। उनका कहना है कि जब एक ही प्रभु-ज्योति से सब उत्पन्न हुए हैं तो कौन श्रेष्ठ है, कौन अधम है–

"एक नूर ते सभ उतपना कौन भले को मंदे।"

नानक का काव्य व्यवहार और आचरण के लिए एक भूमिका प्रस्तुत करता रहा है। नानक काव्य ने कर्मक्षेत्र में पुरुषार्थ की भावना जाग्रत की है। जैसे– 'करे सु तैसा पावै।' 'आपे बीजि आपे खावै।'

नानक का मानना है कि प्रभु-निर्मित इस संसार में मनुष्य का जन्म लेना किसी पाप का परिणाम नहीं है। उन्होंने अपनी वाणी से मनुष्य में यह विश्वास जगाया कि ईश्वर प्रदत्त यह शरीर ईश्वर का पवित्र मन्दिर है। परमात्मा के स्मरण में चित्त को लगाने से ही इस दुर्लभ शरीर की सार्थकता सिद्ध होती है। नानक-वाणी पुरुषार्थ का काव्य है। यह संसार के प्रति विरक्ति जगाकर उदासीन बनाने वाले काव्य नहीं है। नानक के काव्य का केन्द्रीय भाव गुरु प्रसाद से, उसकी कृपा से मनुष्य को पुरुषार्थ-चेतना में निरत करना है परन्तु वह पुरुषार्थ बाह्य से अधिक आन्तरिक है। आपा जब संकीर्णता छोड़ता है तभी उसमें समता की भावना का उदय होता है तभी अतिवादी दृष्टिकोण समाप्त होकर सहज भाव का जीवन मिलता है और ऐसा जीवन-जीना नानक-वाणी का मूल सन्देश रहा है।

6.5 सामाजिक चेतना

नानक सामाजिक चेतना का संवहन करने वाले कविर्मनीषी है। आगरा के निकट राणा संग्राम सिंह की एवं पानीपत में इब्राहिम लोदी की आक्रान्ता बाबर द्वारा पराजय उस समय के इतिहास की बड़ी घटना कही जा सकती है। नानक उन दिनों अपनी यात्राएँ समाप्त कर करतारपुर में रह रहे थे। तभी नानक ने मुगलों द्वारा किए गए युद्धों के दुष्परिणाम का आकलन किया। उन्होंने अत्याचारी आक्रमणकारियों की घोर निन्दा की है। नानक-वाणी में बाबर के बर्बर अत्याचारों का जो प्रतिरोध मिलता है वह सम्पूर्ण सन्त-काव्य में अप्रतिम है। नानक की क्रान्तिकारी दृष्टि का परिचय भी मिलता है। वे कहते हैं कि हे कर्ता पुरुष हिन्दुस्तान पर इतनी मार पड़ी परन्तु तुम्हारा हृदय बिल्कुल भी नहीं पिघला। देखिए–

"सुरा सन खसमाना कीआ हिन्दुस्तानु डराइआ।
आपै दोसु न देई करता, जमु करि मुगल चड़ाइआ
एती मार पई कर लाणै तैं की, दरद न आइआ।"

सन्त, हृदय होते हुए भी नानक की बेचैनी यह है कि यदि ताकतवर ताकतवर से लड़ता है तो कोई बात नहीं, परन्तु यहाँ तो बाबर की सेना हर तरफ निरीह दुर्बल लोगों पर अत्याचार कर रही है। बाबर-आक्रमण से

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

एमनाबाद की जो दुर्दशा हुई थी, उसका वर्णन आसाराग की दो अष्टपदियों में जिस मार्मिकता से किया गया है वह नानक ही नहीं, वरन् समस्त भक्ति-काव्य की अमूल्य निधि है। इनमें नानक की समाज एवं इतिहास सम्बन्धी चेतना का मार्मिक चित्र मिलता है।

अतः कहा जा सकता है कि नानक-वाणी में मानवतावादी दृष्टिकोण और विश्वमैत्री की भावना सर्वत्र मिलती है। नानक कहते हैं–"बुरा भला कहु किसनो कहिए सगले जीअ तुम्हारे।" नानक की वाणी पाखण्ड का तिरस्कार करती हुई समतावाद की पोषक रही है। एक ओर वे सच्चे मुसलमान का लक्षण बताते हैं तो दूसरी ओर ब्राह्मण को क्रूरकर्म छोड़कर ब्रह्मचेतना प्रधान होने की प्रेरणा देते हैं–

"तउ नानक सरब जीआ मिहरमंति होइ त मुसलमाणु कहावै।"

इसी प्रकार ब्राह्मण के विषय में कहते हैं–

"सो ब्राह्मण जो ब्रह्म बीचारै। आपि तरै सगले कुल तारे।"

गुरु नानक-वाणी की भाषा मिली-जुली है। खड़ी बोली के वेष में ब्रज, अवधी, मगधी, अपभ्रंश, फारसी तथा अरबी शब्दावली की मिलावट आदिग्रन्थ में मिलती है। उनकी वाणी में वही सहजता है जो जो वे बचपन से बोलते रहे होंगे। उनकी भाषा में कृत्रिमता कहीं नहीं है। अत्यन्त प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग उन्होंने किया है। नानक का लक्ष्य पांडित्य-प्रदर्शन नहीं था, अपितु दर्शन के गूढ़ रहस्य को सहज भाषा में प्रस्तुत करना था। वस्तुतः नानक की भाषा ने साधारण जन और विद्वान पण्डित के बीच सेतु का निर्माण किया था।

6.6 बोध प्रश्न

(क) एक पंक्ति में प्रश्न का उत्तर दीजिए–

(1) गुरु नानक किस धर्म के प्रवर्त्तक थे?

(2) सच्चे धर्म पर चलने के लिए किस बात की आवश्यकता है?

(3) परमात्मा के किन गुणों का वर्णन नानक जी करते हैं?

(4) मन के कितने रूप नानक देव मानते हैं?

(ख) सही-गलत का निशान लगाइये–

(1) नानक की विचारधारा उदारवादी नहीं थे। (.....)

(2) नानक के यहाँ सर्वधर्म समभाव सर्वोपरि है। (.....)

(3) नानक धर्म में गुरु-सद्गुरु सर्वोपरि नहीं है। (.....)

(4) नानक-वाणी पुरुषार्थ का काव्य नहीं है। (.....)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

6.7 निष्कर्ष

गुरु नानक एक समाज-चेता धर्म-सुधारक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। राष्ट्र-निर्माण के क्षेत्र में उन्होंने जो भाव-भूमिका निर्मित की, वह अद्वितीय है। गुरु नानक के कृतित्व एवं व्यवहार-विचार में अद्‌भुत साम्य है। उन्होंने अपने शीलाचरण, कर्मण्यता से तत्कालीन निर्जीव-निष्प्राण जन-जीवन में प्राण-प्रतिष्ठा की है। अपने परिवेश का नानक ने सम्यक् आकलन किया था इसीलिए एक ओर उनके हृदय में वैराग्य भाव जनित ज्ञान-विचार एवं भक्ति की गंगा प्रवाहित रही, वहीं दूसरी ओर समाज-उत्थान के लिए लोक-संग्रह, लोक-मंगल की भावना ने उन्हें क्रियाशील बनाये रखा। नानक ने अपने समय की नब्ज को पहचाना और तद्नुसार उसकी व्याधि के निवारणार्थ निदान का संकल्प लिया। नानक ने अपने जीवन, आचरण में जिन आदर्शों, सिद्धान्तों और विशेषताओं को उतारा, उनके धर्म की वे ही विशेषताएँ जनता के समक्ष आईं। नानक के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती किसी भी धर्म-साधक ने अपने समय की राजसत्ता के दबावों-प्रभावों का चित्रण इतने खुलकर नहीं किया, जितना नानक ने। नानक अपने धर्म, समाज और इतिहास की परिस्थितियों को अनदेखा नहीं कर सके। इसीलिए प्रवृत्ति-मार्ग में निवृत्ति-तत्त्व की प्रतिष्ठा करके उन्होंने उसे जीवन के लिए उपयोगी बनाया।

6.8 अभ्यास प्रश्न

(1) गुरु नानक के जीवन की कौन-सी घटना उनके सच्चा सौदा करने की बात साबित करती है?

(2) नानक ने किसके यहाँ नौकरी की और उन्हें वहाँ से क्यों निकाला गया?

(3) गुरु नानक देव की भक्ति के स्वरूप के विषय में लिखिए।

(4) परमात्मा के विषय में नानक के विचारों का प्रतिपादन कीजिए।

(5) नानक के द्वारा वर्णित माया के स्वरूप के विषय में लिखिए।

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. *नानक वाणी का भाषायी तथा दार्शनिक निरूपण* – चमन लाल अग्रवाल, अग्रवाल प्रकाशन, दिल्ली
2. *गुरु नानक देव जी का संकल्प*- कुलवन्त कौर कोहली, भाषा विभाग, पटियाला
3. *गुरुनानक रचनावली*- रत्नसिंह जग्गी, भाषा विभाग, पटियाला

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

7. जायसी, सूरदास

प्रो. भवानी दास
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

7.0 अधिगम का उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 भक्त कवि (जायसी और सूरदास)
7.2.1 जीवन-परिचय
7.2.2 बोध प्रश्न
7.2.3 रचनाएँ
7.2.4 बोध प्रश्न
7.2.5 भक्ति
7.2.6 बोध प्रश्न
7.2.7 विचार
7.2.8 निष्कर्ष
7.3 अभ्यास प्रश्न
7.4 संदर्भ-ग्रंथ

7.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य कर सकने में समर्थ हो सकेंगे–

- भारतीय भक्ति की महान परंपरा से अवगत हो सकेंगे।
- भारतीय भक्ति परंपरा के मानव-मूल्यों को समझ सकेंगे।
- इन मूल्यों के माध्यम से छात्र अपना चारित्रिक विकास कर सकेंगे।
- जायसी और सूरदास के भक्ति-भाव और विचारों से परिचित हो सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल कहा जाता है। यह वह युग था, जब अनेक रस सिद्ध कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा काव्य को अनेक रत्न प्रदान किए थे। इन कवियों ने एक ओर तो परम सुंदर व श्रेष्ठ

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्य का निर्माण किया और दूसरी ओर धर्मांधता और सांप्रदायिकता के विष को समाज से निकाल फेंकने का अटूट प्रयास किया। उनके मूल में लोकहित, लोकमंगल तथा लोक-कल्याण का भाव व्याप्त था। इसी कारण इस काल के कवियों का परम महत्त्व है। इन्हीं कवियों में जिनकी कृतियाँ आज हिंदी साहित्य की गौरव बनी हुई हैं, कविवर मलिक मुहम्मद जायसी, महाकवि सूरदास आदि विशिष्ट शाखा के प्रतिनिधि कवि के रूप में मान्य हैं। उनकी कृतियों में उनके व्यक्तित्व की सरलता, कोमलता, मानवता, भक्तिभाव, विचार स्पष्ट रूप से झलकती (परिलक्षित होती है) हैं।

7.2 भक्त कवि–जायसी और सूरदास

1. जायसी

7.2.1 जीवन-परिचय

हिंदी साहित्य के स्वर्णकाल कहे जाने वाले भक्तिकाल के चार प्रमुख आधार स्तंभों में जायसी एक प्रमुख भक्त कवि हैं। इनका पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। अन्य भक्त कवियों की भाँति इनके जीवनवृत्त के संबंध में भी साहित्येतिहासकार विद्वानों में मत भिन्नता की स्थिति है। फिर भी सर्वमान्य रूप से इनका जीवनकाल 1464 ई. से 1542 ई. माना गया है। जायसी ने अपने जन्मकाल एवं जीवन परिचय संबंधी कुछ बातें अपने एक ग्रंथ 'आखिरी कलाम' में लिखी हैं। उन्होंने लिखा है–''भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।'' यहाँ पर नौ सदी से तात्पर्य नवीं हिजरी संवत् है।

जायसी का जन्म स्थान आज उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस नगर नामक स्थान के कंचाना खुर्द मुहल्ला में माना जाता है। उन्होंने इस संबंध में अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत में लिखा है–''जायस नगर धरम अस्थानू। तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू।'' कुछ विद्वान जायसी के पिता का नाम शेख ममरेज तो कुछ मालिक राजे अशरफ मानते हैं। यह माना जाता है कि एक गंभीर प्राकृतिक आपदा में इनका पूरा परिवार काल के गाल में चला गया। बचपन में शीतला प्रकोप के कारण इनकी बाँयी आँख और बाँया कान खराब हो गया था। जिस कारण इनका चेहरा विकृत हो गया, इसलिए कई स्थानों पर इनके रूप का उपहास भी उड़ाया गया, उस पीड़ा का वर्णन इन्होंने–''जेंहि मुख देखा तेंहि हँसा, सुना ते आयसु आँस।'' लिखकर की है। कहते हैं एक बार शेरशाह भी दरबार में उनके चेहरे को देखकर हँस दिया था। तब उन्होंने कहा था–''मोहिका हँसेहिं कि कोहरहिं'' (अर्थात् मुझ पर हँस रहे हो या मुझे बनाने वाले उस ईश्वररूपी कुम्भकार पर)। उनके इस बात से शेरशाह ने लज्जित होकर माफी मांगी। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–''ये काने और देखने में कुरूप थे। कहते हैं कि शेरशाह इनके रूप को देखकर हँसा था।'' किंतु इस संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है–''भगवान ने इन्हें रूप देने में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बड़ी कंजूसी की थी, किंतु शुद्ध निर्मल हृदय और प्रेमपरायण हृदय देने में बड़ी उदारता से काम लिया था।''

इनके गुरु के संबंध में दो मत प्राप्त होते हैं। प्रथम मत के अनुसार इनके गुरु शेख महदी या मोहिउद्दीन थे। जिसके बारे में इन्होंने 'पद्मावत' में लिखा है–''पा पाएउँ गुरु महदी पीठा।'' वहीं दूसरे मत के अनुसार इनके गुरु का नाम सैय्यद अशरफ माना गया है। इसका आधार 'अखरावट' में लिखी यह पंक्ति–''सैयद असरफ पीर पियारा'' है। जायसी का संबंध सूफी संप्रदाय के चिश्ती शाखा से माना जाता है। यह भी प्रचलित है कि उन्होंने अपना अंतिम समय अमेठी के पास जंगलों में व्यतीत किया है।

7.2.2 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए–

1. जायसी का पूरा नाम क्या था?
2. जायसी का चेहरा विकृत कैसे हो गया था?
3. शेरशाह ने किससे माफी माँगी था?
4. जायसी ने अपना अंतिम समय कहाँ व्यतीत किया?

7.2.3 रचनाएँ

जायसी का जीवन जितना चुनौतीपूर्ण रहा रचनाकर्म उतना ही समृद्ध। सूफी काव्यधारा को प्रमुखता से स्थापित करने वाला कालजयी ग्रंथ 'पद्मावत' इन्हीं की रचना है। पद्मावत के अतिरिक्त अखरावट, आखिरी कलाम, कहरनामा, कान्हावत, चित्रावत, सखरावत, पोस्तीनामा, होलीनामा, मुकहरनामा, मसलनामा, चित्ररेखा, जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ इन्हीं के द्वारा रचित माने जाते हैं।

'पद्मावत' के बारे में जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि यह सूफी काव्यधारा की प्रतिनिधि कालजयी रचना है। इसका रचनाकाल 1540 ई. के आस-पास माना जाता है इसके संबंध में जायसी ने स्वयं लिखा है–''सन् नौ सौ सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।'' इस को उन्होंने शेरशाह के शासनकाल के दौरान लिखा है। शाहे वक्त की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है–''शेरशाह दिल्ली सुलतानू।'' यह ग्रंथ प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से प्रेमकथा के तौर पर साधक (रत्नसेन) द्वारा इष्ट (पद्मावती) प्राप्ति के मार्ग को प्रस्तुत करता है। जायसी ने इस ग्रंथ में सिंहलगढ़ के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती एवं चित्तौड़गढ़ के प्रतापी शासक राजा रत्नसेन की प्रेमकथा को प्रमुख 57 एवं कुल 58 खंडों में लिखा है। इन दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त इस ग्रंथ में नागमती, राघवचेतना, अलाउद्दीन खिलजी, गोरा-बादल, देवपाल एवं हीरामन तोता जैसे अन्य पात्र हैं। यह ग्रंथ एक प्रबंधकाव्य या महाकाव्य है, जिसे रोमांचक शैली में, अवधी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

भाषा में 7-7 अर्धाली पर एक दोहा की छंद योजना में लिखा गया है। बारहमासा के रूप में वर्णित नागमती वियोग खंड इसका सबसे प्रसिद्ध खंड है, जिसे प्रख्यात आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य की अद्‌वितीय रचना कहा है। पद्‌मावत के संबंध में डॉ. नगेंद्र की टिप्पणी सर्वथोचित है–''समग्र रूप में यह अत्यंत उच्चकोटि का प्रबंधकाव्य है, जिसकी तुलना में 'रामचरितमानस' एवं 'कामायनी' जैसे कुछ काव्य ही रखे जा सकते हैं।''

'आखिरी कलाम' सूफी सिद्‌धांतों की चर्चा संबंधी ग्रंथ है। इसमें न केवल जायसी का जीवन परिचय है बल्कि बाबर की प्रशंसा के साथ-साथ कयामत का वर्णन भी किया गया है 'अखरावट' में बारह खड़ी प्रणाली का प्रयोग है जिसमें वर्णमाला के प्रत्येक अक्षरों पर सिद्‌धांत भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। वहीं 'कहरनामा' कहरवा शैली में लिखी गयी है। इसमें आध्यात्मिक विवाह का वर्णन है। इस प्रकार जायसी के रचनाकर्म की व्यापकता एवं विशिष्टता को देखा जा सकता है।

7.2.4 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए–

1. जायसी के सबसे प्रसिद्‌ध ग्रंथ का नाम बताइए।
2. 'पद्‌मावत' किसके शासन काल में लिखा गया था?
3. 'कहरनामा' नामक ग्रंथ किस शैली में लिखा गया है?

(ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. सूफी काव्यधारा की ..... एक कालजयी रचना है। (अखावट/पद्‌मावत)
2. जायसी के बारहमासा ग्रंथ में ..... विवाह का वर्णन है। (आध्यात्मिक/सामाजिक)

7.2.5 जायसी की भक्ति

जायसी प्रेमाश्रयी काव्य धारा के प्रसिद्‌ध सूफी संत एवं कवि हैं। सूफियों का मूलत: संबंध इस्लाम धर्म के बेशरा शाखा से है जिन्हें मस्तमौला फकीर भी कहा जाता था। ये प्रचलित परंपरागत रूढ़ियों के स्थान पर अपने इष्ट को आचरण की पवित्रता एवं प्रेममार्ग से प्राप्त करने पर जोर देते हैं। इस रूप में जायसी की साधना पद्‌धति में सूफियों के इसी उपासना मार्ग का अनुसरण दिखता है। इस साधना के केंद्र में मूलत: तसव्वुफ का दर्शन है, जिसमें ईश्वर को प्रेमिका तथा साधक को प्रेमी मानते हुए प्रेम मार्ग से उसकी उपासना की जाती है। सूफियों के भक्ति की यह यात्रा इश्क मजाजी (लौकिक जगत) से इश्क हकीकी (अलौकिक जगत) के रूप में जानी जाती है। इसी साधना को केंद्र में रखकर प्रतीकात्मक चरित्रों द्‌वारा जो प्रेमाख्यानक

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

साहित्य इन कवियों के द्वारा लिखा गया वही आगे चलकर सूफी काव्यधारा के रूप में विकसित हुआ और जायसी उसके सबसे प्रधान महाकवि हैं।

7.2.6 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों पर सही/गलत के निशान लगाइए–

1. जायसी सूफी काव्यधारा के सबसे महान संत कवि हैं। (सही/गलत)
2. सूफियों का मूलतः संबंध इस्लाम धर्म के बेशारा शाखा से नहीं है। (सही/गलत)
3. जायसी की साधना पद्धति में ईश्वर को प्रेमिका और साधक को प्रेमी माना जाता है। (सही/गलत)

7.2.7 विचार

जायसी अपने समय के सुविख्यात सूफी संत एवं कवि थे। इसी कारण उनके साहित्य में सूफी-दर्शन की चर्चा तो मिलती है किंतु उनका जन्म भारतीय उपमहाद्वीप में हुआ था इसीलिए भारतीय संस्कृति, दर्शन का उन पर व उनके साहित्य पर विशेष प्रभाव है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण उनके साहित्य में निहित सांस्कृतिक समन्वय का सूत्रपात है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास का आरंभ तुर्कों एवं मुस्लिम आक्रमणकारियों के आक्रमणों से होता है जिसके प्रभाव स्वरूप आने वाले दिनों में होने वाले लूटपाट, धर्मांतरण, स्त्री-अपहरण जैसे कुकृत्यों से हिंदू एवं मुस्लिम दोनों समुदायों के मध्य कटुता का प्रसार बढ़ता जा रहा था। ऐसे में सूफी संतों द्वारा इस खाई को पाटने के लिए प्रेम, समन्वय जैसे मूल्यों का प्रयोग किया गया। जायसी इसी तरह के सूफी भक्त कवि हैं। उनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है उन्होंने पारंपरिक इस्लाम के ढाँचे में भारतीय वेदांत की मान्यताओं का समन्वय किया। भारतीय लोककथाओं के माध्यम से सूफी-दर्शन को व्यक्त किया। अरबी लिपि एवं भाषा के स्थान पर अवधी भाषा का प्रयोग किया। हिंदू समाज अनेक पर्वों, उत्सवों, तीर्थ-व्रतों, मान्यताओं एवं प्रथाओं को बड़ी प्रमुखता से स्थान देकर सामाजिक समरसता एवं सद्भाव को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके बारे में लिखा है–''इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।'' समन्वयशीलता के इस पक्ष को महत्त्व देते हुए बेहद सटीक टिप्पणी आचार्य शुक्ल ने की है–''हिंदू हृदय और मुसलमान आमने-सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।''

सांस्कृतिक समन्वयशीलता के पश्चात् जायसी के साहित्य में सर्वाधिक बल प्रेम की मूल्य के रूप में स्थापना का है। यूँ तो पूरे भक्तिकाल के मूल में ही प्रेम तत्त्व की प्रधानता है, किंतु सूफी परंपरा में मानवीय प्रेम को जीवन के आधारभूत मूल्य के रूप में स्थापित किया गया है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कि इन कवियों का अलौकिक प्रेम, लौकिक प्रेम से शुरू होता है। इसीलिए जायसी का कहना है–''प्रेम कथा एहि भाँति विचारेहुँ। बूझि लेहु जो बुझै पारहु।'' इस प्रकार वे ईश्वर प्रेम से पहले मानव प्रेम की स्थापना करते हैं। इनके विचार का सार ही मानव प्रेम है। इसीलिए पद्मावत में जायसी ने लिखा है–''मानुस प्रेम भएउ बैकुण्ठी, नाहिं ते काह छार एक मूँठि।'' जायसी द्वारा वर्णित प्रेम में व्यापकता इस तथ्य से आ जाती है कि मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति को भी उसका बराबर का हिस्सेदार बनाया गया है चाहे मामला संयोग का हो या वियोग का। क्योंकि सूफी कवि प्रकृति को भी मिथ्या न मानकर ईश्वर की अभिव्यक्ति मानते हैं। नागमती वियोग खंड में इसकी सुंदर व्यंजना हुई है जब नागमती के विरह में उसके दु:ख को कम करने या बाँटने के लिए प्रकृति का सीधा हस्तक्षेप दिखाया गया है–''फिर-फिर रोव, कोउ नहिं डोला, आधी रात विहंगम बोला।'' इसीलिए जायसी का मूल्यांकन करते हुए शुक्ल जी जहाँ एक ओर 'पद्मावत' को उनकी अक्षयकीर्ति का आधार मानते हैं तो वहीं दूसरी तरफ कहते हैं कि उनका हृदय कैसा कोमल और प्रेम की पीर से भरा हुआ था।

7.2.8 निष्कर्ष

इस प्रकार हम भक्तिकालीन साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति को जायसी एवं उनके साहित्य के माध्यम से देख सकते हैं। एक तरफ जहाँ उनका जीवन अनेक विषमताओं का चुना हुआ उदाहरण था तो वहीं दूसरी ओर साधना एवं साहित्य के क्षेत्र में उनका समर्पण, गंभीरता एवं सरसता न केवल अद्वितीय बल्कि विलक्षण थी। अपनी साहित्यिक योगदान के कारण वे सदा स्मरणीय रहेंगे।

7.3 अभ्यास प्रश्न

1. जायसी के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालिए।
2. जायसी का 'जीवन जितना चुनौतीपूर्ण रहा, रचनाकर्म उतना ही समृद्ध रहा' इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. सूफी काव्यधारा में जायसी की महत्ता को स्पष्ट करते हुए उनकी भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
4. जायसी के साहित्य में सूफी-दर्शन की चर्चा करते हुए भारतीय संस्कृति दर्शन का उन पर व उनके साहित्य पर क्या पड़ा? स्पष्ट कीजिए।

7.4 संदर्भ-ग्रंथ

1. *'भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता'*–डॉ. कृष्ण गोपाल

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. *'भक्ति का उद्‌भव और विकास तथा वैष्णव भक्ति के विविध रूप'*–डॉ. नगेंद्र
3. *'जायसी'*–विजयदेव नारायण साही
4. *'जायसी ग्रंथावली'*–आचार्य रामचंद्र शुक्ल
5. *'त्रिवेणी'*–आचार्य रामचंद्र शुक्ल

2. सूरदास

7.2.1 जीवन-परिचय

हिंदी काव्य-जगत के सूर्य कहे जाने वाले भक्तिकाल के महाकवि सूरदास सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत कृष्णभक्ति शाखा के प्रधान कवि हैं। जार्ज ग्रियर्सन, श्यामसुंदर दास और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्‌वान इन्हीं के ग्रंथ 'सूरसारावली' की काव्य-पंक्ति–''गुरु परसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन'' जिसमें कि इनकी आयु 67 वर्ष बतायी गयी थी, के आधार पर उनका जन्मकाल 1540 सं. मानते हैं। परंतु आज सर्वमान्य रूप से महाकवि सूरदास का जीवनकाल 1478-1583 ई. के मध्य माना जाता है यह भी प्रचलित है कि उनका जन्म बैशाख शुक्ल पक्ष पंचमी दिन मंगलवार को हुआ था। इस समय को प्रामाणिक मानने का आधार यह प्रचलित तथ्य है कि सूरदास अपने गुरु वल्लभाचार्य से उम्र में 10 दिन छोटे थे। अत: इनका मान्य समय 1478-1583 ई. है।

जन्मकाल की तरह ही जन्मस्थान के संबंध में भी दो मत मिलते हैं। प्रथम मत के अनुसार उनका जन्म रुनकता (गऊघाट, ब्रज क्षेत्र) ग्राम में हुआ था। शुक्ल जी व हजारी प्रसाद द्‌विवेदी इसी मत को मानते हैं। जबकि डॉ. नगेंद्र व गणपति चंद्र गुप्त उनका जन्मस्थान सींही (ब्रज क्षेत्र) मानते हैं।

जन्मकाल व स्थान की भाँति एक अन्य विवाद इनके अंधे होने से संबंधित है। चूँकि सूरदास शब्द को अंधे का पर्याय मान लेने के कारण कुछ विद्‌वान सूरदास को जन्मांध मानते हैं, इनमें स्वामी हरिराय, गोकुलनाथ एवं आचार्य शुक्ल का नाम प्रमुख है, जबकि सूर के साहित्य एवं वर्णनशैली को देखकर डॉ. नगेंद्र, श्यामसुंदर दास जैसे साहित्यिक विद्‌वान इन्हें जन्मांध नहीं मानते। हजारी प्रसाद द्‌विवेदी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है–''सूर का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।''

सूरदास ने अपनी वंशावली अपने ग्रंथ 'साहित्यलहरी' के 118वें (अंतिम) पद में दी है। जिसके अनुसार वे चंदबरदाई के वंशज थे।

यह मान्यता है कि 1523 ई. के आस-पास ये वल्लभाचार्य के शिष्य बने। उसके बाद जब 1565 ई. में वल्लभाचार्य के पुत्र विट्‌ठल नाथ के द्‌वारा 'अष्टछाप' की स्थापना की गई तब उनमें ये सबसे प्रमुख वल्लभ संप्रदाय के कवि के रूप में शामिल किए गए। करीब 50 वर्ष श्रीनाथ मंदिर पर श्रीकृष्ण उपासना के उपरांत 105 वर्ष की अवस्था में गोवर्धन के निकट पारसोली गाँव के चंद्रसरोवर के पास अपने प्राण त्याग

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE COE, SOL, University of Delhi

दिए। इनकी मृत्यु पर आचार्य विट्ठनाथ ने कहा था–''पुष्टिमारग को जहाज जात हौ, जाको कछु लेन हो सो लेउ।'' (अर्थात् पुष्टि-मासर्ग का जहाज जा रहा है जिसको कुछ लेना हो सो ले लो)

इस प्रकार सूरदास का जीवनवृत्त 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'भाव प्रकाश', 'निजवार्ता', 'राग कलाद्रुम', 'खंजन नयन' जैसे ग्रंथों एवं रचनाओं से प्राप्त होता है।

7.2.2 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए–

1. सूरदास किस धारा के प्रधान कवि हैं?
2. सूरदास को किसका वंशज बताया जाता है?

(ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. सूरदास के गुरु का नाम ..... था। (विट्ठलनाथ/बल्लभाचार्य)
2. सूरदास ..... के आस-पास बल्लभाचार्य के शिष्य बने। (1523/1620)

7.2.3 रचनाएँ

जीवनवृत्त की तरह रचनाओं की संख्या को लेकर भी मतभिन्नता की स्थिति है। दीनदयालु गुप्त इनके द्वारा रचित 25 ग्रंथ मानते हैं तो वहीं नागरी प्रचारिणी सभा रिपोर्ट के अनुसार इनके ग्रंथों की कुल संख्या 16 है। परंतु उपरोक्त के बावजूद आज सूरदास के तीन ग्रंथों को ही प्रामाणिक माना जाता है–(1) सूरसागर (2) सूरसारावली (3) साहित्यलहरी।

सूरसागर सूरदास का सबसे प्रधान कालजयी ग्रंथ है। इस ग्रंथ का आधार भागवत पुराण है। तभी भागवत पुराण की भाँति इस ग्रंथ में भी कुल 12 स्कंध हैं। मिथकीय तौर पर इस ग्रंथ में कुल सवा लाख पद कहे गए हैं परंतु वास्तविक पदों की संख्या पाँच हजार के लगभग है जिसका संपादन नंददुलारे वाजपेयी के द्वारा किया गया है। इस ग्रंथ में कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरागमन तक की कथा है। इस ग्रंथ में मुख्यतः 5 विषयों का वर्णन किया गया है–(1) बाललीला (2) वंशीवादन (3) गोचारण लीला (4) रासलीला (5) भ्रमरगीत। इस ग्रंथ को लीला प्रबंधकाव्य भी कहा गया है क्योंकि बाललीला की जैसे छोटी-छोटी सभी गतिविधियों का इसमें जैसा मनोहारी चित्रण किया गया है वैसा कहीं अन्य नहीं। पूरे विश्व-साहित्य में बाल-लीला, बाल-क्रीड़ा का जितना व्यापक वर्णन सूरदास ने किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। यही कारण है कि सूरदास को 'वात्सल्य का सम्राट' कवि कहा जाता है। इसीलिए शुक्ल जी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

©DDCE COL, SOL, University of Delhi

ने लिखा है ''वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने बंद आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झाँक आए।''

सूरसारावली में कुल 1107 पद हैं। सूरसागर की भाँति ब्रजभाषा में लिखित इस रचना में सूरदास की अवस्था का वर्णन मिलने के साथ-साथ, श्रीनाथ मंदिर में होने वाली उपासना का वर्णन भी मिलता है।

साहित्यलहरी का रचनाकाल 1607 सं. एवं इस रचना में कुल 118 पद संकलित हैं। सूर की वंशावली के साथ-साथ इस रचना में दृष्टकूट पदों का संग्रह भी किया गया है जिसका संबंध रस, छंद, अलंकार, नायक-नायिका भेद जैसे काव्यांग निरुपण से है। शुक्ल जी ने इसे 'साहित्यक्रीड़ा' का ग्रंथ कहा है। उपरोक्त दोनों रचनाओं की भाँति इसे भी ब्रजभाषा एवं गीतिकाव्यात्मक पदों में लिखा गया है।

7.2.4 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए–

1. सूरदास की प्रमुख रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?
2. उनके सबसे प्रधान ग्रंथ का नाम बताइए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों पर सही/गलत पर निशान लगाइए–

1. सूरदास के चार ..... ग्रंथों को ही प्रमाणिक माना जाता है। (सही/गलत)
2. 'साहित्य लहरी' का रचना काल सं. 1607 है। (सही/गलत)

7.2.5 सूरदास की भक्ति एवं विचार

सूरदास वल्लभ संप्रदाय के बालकृष्ण के उपासक सगुण भक्त कवि हैं। वल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन आचार्य वल्लभाचार्य द्वारा शुद्धाद्वैत दर्शन के अंतर्गत किया गया था। इस संप्रदाय को पुष्टिमार्गीय संप्रदाय भी कहते हैं जिसके अंतर्गत यह मान्यता है कि भक्त अपना सर्वस्व अपने ईश्वर को समर्पित करते हुए अपनी चिंता छोड़ देता है। ''पोषणं तत् अनुग्रहः'' का भाव रखने वाला यह भक्त, पुष्ट भक्त एवं यह भक्ति मार्ग पुष्ट मार्ग कहलाता है। सूरदास भी इसी प्रकार के भक्त कवि हैं। इसी कारण उन्होंने लिखा है–''हमारे हरि हारिल की लकरी।'' सूरदास की भक्ति वस्तुतः वात्सल्य भाव की भक्ति है जो उन्हें उनके गुरु वल्लभाचार्य से प्राप्त हुई। कहा जाता है कि पहले सूरदास दास्य भाव की भक्ति किया करते थे। जब पहली बार वल्लभाचार्य की मुलाकात उनसे हुई और उन्होंने सूरदास को एक पद गाने हेतु कहा तब उन्होंने गाया–''प्रभुजी हौं पतितन को टीकौ।'' जिसे सुनने के बाद वल्लभाचार्य ने लगभग डाँटते हुए कहा कि ''सूर है कै काहे धिधियात हौ, कछु भगवत लीला वर्णन करी।'' कहते हैं उसके बाद से ही सूरदास के भक्ति की भावधारा बदली और वे दास्य के स्थान पर सख्य एवं वात्सल्य भाव के पद लिखने लगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

सूरदास को कृष्ण भक्ति धारा का शिखर भक्त कवि माना जाता है इसका प्रमुख आधार अपने इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण के साथ-साथ उनके रचना में व्याप्त उनके विचार हैं। उन्होंने कृष्ण के माधुर्य पूर्ण लीलाओं का जीवंत चित्रण किया है जिसका आधार सभी को सुखमय करने के साथ-साथ भक्ति भाव पूर्ण करना है। इसीलिए उन्होंने लिखा है–''यह लीला जो अचल चित्त दै सुनै सुनावै, प्रेम भक्ति सो पावै अरु सबके जिय भावै।''

सूरदास के रचनाकर्म में निहित उनके विचार का एक व्यापक आधार प्रेम की विराट संकल्पना है। उनके लिए प्रेम अन्य भक्त कवियों की भाँति प्रतीकात्मक एवं श्रद्धा से संयमित नहीं है, बल्कि वह जनतांत्रिक किस्म का है। जिसमें हर गोपी को कृष्ण से प्रेम करने का अधिकार है। प्रेम की स्वाभाविकता ही इनके विचारों की विशेषता है। इसमें समानता, स्वच्छंदता, सख्य जैसे भाव निहित हैं। इसका एक बड़ा कारण यह है कि यह प्रेम स्वप्न देखकर या किसी का गुण सुनकर अचानक पैदा हुआ प्रेम नहीं है बल्कि बचपन से ही सहज परिचय एवं विभिन्न क्रीड़ाओं के साथ विकसित हुआ है। इसीलिए कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं तो अत्यंत संयोग के स्थान पर अपार विरह का वर्णन भ्रमरगीत में मिलता है। गोपियाँ उद्धव से, 'बिनु गोपाल बैरन भई कुँजें' और 'उर में माखन चोर गड़ो' जैसी उक्तियाँ कहती हैं।

सूर के विचारधारा की एक अन्य बड़ी विशेषता नवीन प्रसंगों की उद्भावना या प्रस्तुति है। इसीलिए कृष्ण वियोग प्रकरण में ब्रज की पशुपालक संस्कृति के अनुकूल वे केवल गोपियों के दु:ख की बात नहीं करते बल्कि उसमें ब्रज की लता-पताएँ, वृक्ष, पशु-पक्षी सभी को शामिल कर देते हैं, तभी तो गोपियाँ, 'मधुवन तुम कत रहत हरे।' और 'अति कृसगात भई हैं तुम बिनु बहुत दु:खारी गाय।'' जैसी व्यंग्योक्तियाँ कहती हैं।

सूर के काव्य पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि वह लोक निरपेक्ष है किंतु व्यापकता से अध्ययन करने के बाद कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी मिलती हैं जिसमें उनका सामाजिक पक्ष एवं लोक कल्याण का भाव दिखता है जैसे मुग़ल शासन द्वारा जबरन कर वसूली या शोषणकारी राजस्व व्यवस्था से लोगों का जीवन बदहाल था। सूरदास ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है–''मोहरिल पाँच साथ कर दीने, तिनकी बड़ी विपरीति।'' इसीलिए जनमानस की ओर से यह मांग भी रखते हैं–''सूरदास की यहै बीनीत, दस्तक कीजै माफ।''

7.2.6 निष्कर्ष

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों एवं विचारों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि सूरदास ने अपने लेखन व समर्पण से न केवल भक्ति को एक निश्चित ऊँचाई प्रदान की बल्कि हिंदी साहित्य को भी शिखर तक पहुँचाया भावगत पक्ष के विस्तार के साथ-साथ शिक्षा पक्ष में खासकर ब्रजभाषा के स्तर पर उन्होंने इतने

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सरस प्रयोग किए कि आगे आना वाला रीतिकाल जैसा पूरा साहित्यिक युग ही ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली पर आधारित है। अपने उपरोक्त साहित्यिक अवदान के कारण ही नवीन प्रसंगों की उद्‌भावना करने वाले इस महाकवि को पुष्टिमार्ग का जहाज, वात्सल्य रस का सम्राट कवि, हिंदी काव्य गगन का सूर्य, एवं खंजन नयन जैसे अशेष उपाधियों से विभूषित किया गया।

7.3 अभ्यास प्रश्न

1. सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. 'सूरदास नवीन प्रसंगोद्‌भावना के कवि हैं' इस पर सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. सूरदास को 'वात्सल्य का सम्राट कवि कहना' कहाँ तक समीचीन है?
4. सूरदास की भक्ति भावना एवं विचार पद्‌धति की सविस्तार से चर्चा कीजिए।

7.4 संदर्भ-ग्रंथ

1. 'त्रिवेणी'–आचार्य राम चंद्र शुक्ल
2. 'भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य'–शिवकुमार मिश्र
3. 'मानव-मूल्य और साहित्य'–डॉ. धर्मवीर भारती
4. 'भक्ति का उद्‌भव और विकास तथा भक्ति के विविध रूप'–डॉ. नगेंद्र
5. 'संत साहित्य के प्रेरणास्रोत'–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

8. संत नामदेव

डॉ. राजकुमारी शर्मा
गेस्ट टीचर
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

8.0 अधिगम का उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 संत नामदेव
8.2.1 जीवन परिचय
8.2.2 बोध प्रश्न
8.2.3 संत नामदेव के मन में भक्ति की प्रगाढ़ता
8.2.4 बोध प्रश्न
8.2.5 संत नामदेव का उत्तर भारत की ओर प्रस्थान
8.2.6 बोध प्रश्न
8.2.7 रचनाएँ एवं साहित्यिक योगदान
8.2.8 निष्कर्ष
8.3 अभ्यास प्रश्न
8.4 संदर्भ–ग्रंथ

8.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्ययन सामग्री को पढ़कर विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम हो जाएंगे–

1. भारत की संत परंपरा और उसके सामाजिक योगदान को जान सकेंगे।
2. तत्कालीन मराठी समाज की विसंगतियों से अवगत हो सकेंगे।
3. संत नामदेव के वैयक्तिक जीवन के संघर्षों के बारे में जान सकेंगे।
4. संत नामदेव के सामाजिक धार्मिक अवदान से अवगत हो सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में जब–जब रुढ़ियाँ बहुत अधिक बढ़ गईं और समाज का विकास अवरुद्ध हुआ, मानव जीवन घुटन महसूस करने लगा तब–तब किसी न किसी रूप में महापुरुषों का आगमन हुआ और उन्होंने

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

समाज को एक नई चेतना प्रदान की जिससे समाज को एक गति मिली। मध्यकाल में हिंदू धर्म की रुढ़ियों धार्मिक आडम्बर एवं जातिगत छुआछूत के विरुद्ध संतों ने भक्ति के माध्यम से एक नवीन मानव धर्म को प्रस्तुत किया। महाराष्ट्र में संत नामदेव ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण संत हुए हैं, जिन्होंने अपने आचार–व्यवहार के द्वारा समाज को एक नई दिशा दी, भक्ति की एक अजश्र स्रोत उनके दिलों में प्रवाहित की थी।

8.2 संत नामदेव

8.2.1 जीवन परिचय

संत नामदेव (वि.स. 1327–1407 ई., सन् 1270–1350) का जन्म महाराष्ट्र के 'नरसी ब्राह्मणी' या नरसी नामक गाँव में एक दर्जी अथवा शिंपी दंपति के परिवार में हुआ। बचपन से लेकर युवा अवस्था तक नामदेव पिता के साथ रहा करते थे। नामदेव बचपन से ही पिता और साधु–संतों के साथ रहकर भजन–कीर्तन करते थे। गाँव के सभी लोग उसको शुभ बालक कहते थे। पिता गोणाई नामदेव को समझाते रहते थे कि भक्ति के अलावा भी कोई काम काज करो। कर्म करके ही परिवार का भरण–पोषण कर पाओगे। अब तुम्हारा विवाह भी हो गया है। तभी तपाक से कहा ''विवाह तो आपने कर दिया''। मेरा मन तो केवल भक्ति में ही रमता है क्या करूँ। पिता के बाद पत्नी राजाबाई ने भी सतत् प्रयास कर उन्हें व्यापार कार्य में लगा तो दिया पर वह उसमें भी असफल रहे। संत नामदेव बचपन से ही हठी प्रवृत्ति के थे। ऐसी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं– घर में कोई नहीं था। भगवान की पूजा का भार नामदेव को सौंप गए। नामदेव ने बड़े ही श्रद्धा भाव से पूजा की और भगवान के भोग को दूध का कटोरा भर कर मूर्ति के समक्ष रखा और अपनी आँखें बंद कर लीं। जब आँखे खुली तो दूध का कटोरा वैसा का वैसा ही भरा था। नामदेव ने सोचा कि भगवान मुझसे नाराज है, जो दूध नहीं पीया। अपनी हठ धर्मिता के कारण भगवान को भी सुननी पड़ी। तद्युगीन समाज में अंधश्रद्धा, जादू–टोना, वर्ण–व्यवस्था जाति–भेद, द्यूतक्रीड़ा और व्यभिचार (वेश्या गमन) का चारों ओर बोलबाला था। निम्न जाति के लोगों के लिए मंदिर प्रवेश वर्जित था। ऐसा कहा जाता है कि मंदिर में ब्राह्मण और उच्च जाति के क्षत्रिय बैठकर भजन–कीर्तन कर रहे थे। इतने में ही उनकी नजर नामदेव पर पड़ी जो उनके समीप बैठकर प्रभु की भक्ति कर रहा था, उन्होंने उसे वहाँ से हटाकर मंदिर के पीछे वाले भाग में खड़ा कर दिया। नामदेव मंदिर के बाहर से ईश्वर भक्ति के प्रति अपना समपर्ण भाव रखा। ईश्वर (प्रभु) ने ऐसी माया रची कि मंदिर का ही मुँह घुमा दिया। यह उस तरफ हो गया जहाँ नामदेव बैठा हुआ था। मंदिर के सभी लोग यह देखकर अचंभित हो गए। प्रभु के यहाँ कोई जाति भेद–भाव नहीं। इस काल में महाराष्ट्र में नाथ, महानुभाव एवं वारकरी पँथ प्रचलित थे। इस सबके साथ उत्तर भारत में खिलजी शासकों का शासन था जो दक्षिण के सैनिक अभियान की योजना बना रहे थे। ऐसे समय में, इन नाथ, महानुभाव और वारकरीमत के संतों एवं भक्तों का मानवतावादी संदेश जनता के लिए अमृतमय सिद्ध हुआ। इन संतों में नामदेव का नाम उल्लेखनीय है। इनके माता–पिता (गोणाई–दयाशेठ) भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। बचपन से ही इनकी श्रद्धा एवं भक्ति विट्ठल के प्रति थी जो समय के साथ और अधिक प्रगाढ़ होती गई।

8.2.2 बोध प्रश्न

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए–

1. संत नामदेव के माता–पिता का नामोल्लेख कीजिए।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. मंदिर–प्रवेश किसके लिए वर्जित था?

3. बचपन से ही नामदेव की श्रद्धा किसके प्रति थी?

8.2.3 नामदेव के मन में भक्ति की प्रगाढ़ता

किंवदंती है कि जब ये आलंदी में संत ज्ञानेश्वर से मिले तो इन्हें आत्म–निरीक्षण करने का सुअवसर मिला और वे अंतर्मुखी हो गए। इसके पूर्व के प्रसंग में बताया जाता है कि– नामदेव जब नागनाथ के मन्दिर में पहुँचे तो शिवलिंग पर टांगे फैलाये विसोबा खेचर को उन्होंने सोया हुआ देखा। नामदेव को यह देखकर बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने विसोबा खेचर के पैरों को वहाँ से हटाया तो एक आश्चर्य नामदेव ने देखा– वे जिधर भी पैर हटाते उधर शिवलिंग ही दिखाई देता। इससे उन्हें 'भगवान सर्वत्र हैं, यह ज्ञात हुआ।' विसोबा के अनुग्रह से वे ज्ञानी बन गए। इस गुरु कृपा का वे स्वयं वर्णन करते हैं–

श्रवणी सांगितली मात। मस्तकी ठेवियला पद पिंडा।

विवर्जित केला नामा। खेचरु विास। प्रेमाचा पिसा।

तेणे नामा कैसे उपदेशिला तया सांगितले गुज। दाखविले निज।

पाल्हाळी हो तूज। काय चाडा। खेचरु म्हणे मज।

ज्ञानराज हे गुरु तेणे अगोचरु नाम्या केला।[1]

इस प्रकार पंढरपुर के निवासी विसोबा खेचर से नामदेव ने दीक्षा ली।कहने का भाव यह है कि विसोबा ने नामदेव को गुरु–मंत्र देकर कृतार्थ कर दिया। विसोबा ने नामदेव को भक्ति का रहस्य बतलाकर नामदेव को देही से विदेही बना दिया। यही ज्ञान गुरु–मंत्र है। पंढरिनाथ की नगरी में मोक्ष और अध्यात्म के क्षेत्र में सब लोग एक ही धरातल पर हैं, इस तथ्य को नामदेव ने आत्मसात् कर लिया और अपने आचरण से भागवत धर्म के आदर्श स्वरूप को प्रत्यक्ष कर दिखाया। इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जाता है कि इन्होंने भी ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाले अपने गुरु विनोबा खेचरजी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा–

"सद्गुरु नायकें पूर्ण कृपा केली। निज वस्तु दाविली माझी मज।

माझें सुख मज दाखविले डोला। दिधली प्रेम कला नाम मुद्रा।।

ढोलियाचा डोला उधडिला जेणे। लेवविले लेणें आनंदाचे।

नामा म्हणे निकी सापडली सोय। न विसंबे पाय खेचराये।।"[2]

अर्थात् सत्गुरु ने मेरे ऊपर कृपा की और मुझे आत्म–स्वरूप दिखाया। उन्होंने मुझे उस आत्म–स्वरूप को प्राप्त करने का साधन भी दिया। उन्होंने मेरे ज्ञान–चक्षु खोल दिए। गुरु–कृपा से मुझे

---

1 हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, पृ. 232

2 सकल संत गाथा, अभंग 1390 (उद्धृत–हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता, डॉ. शं.के. आडकर, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 87

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग मिला। मैं उनसे अर्थात् गुरु से कभी भी उऋण नहीं हो सकता। अब मैं गुरु के भी चरण कभी नहीं छोड़ूँगा।

गुरु के उपदेश एवं कृपा से जब नामदेव को आत्म–स्वरूप ज्ञान प्राप्त हो गया यानी ईश्वर के दर्शन हो गए तो उन्हें जो दिव्य–दृष्टि प्राप्त हुई उसके फलस्वरूप ये सगुण भक्ति के स्थान पर निर्गुण भक्ति की ओर प्रवृत्त हो गए। जो भक्त नामदेव विट्ठल की मूर्ति के समक्ष नाचते–गाते रहते थे। अब वे कहने लगे–

"पाती तोड़ि न पूजूँ देवा। देवलि देव न होई।।

नामा कहे मैं हरि की सरना। पुनरपि जन्म न होई।"[1]

अर्थात् मैं फूल–पत्ते तोड़कर मंदिर में नहीं चढ़ाऊँगा क्योंकि मंदिर में देवता नहीं हैं। नामदेव कहते हैं कि मैं हरि/ईश्वर की शरण में हूँ और हरि–शरण में आने पर मुझे मोक्ष प्राप्त हो गया– अर्थात् जीवन में आवागमन के फेरे से मेरी मुक्ति हो गई है।

आयु के साथ नामदेव का भक्तिभाव और अधिक प्रगाढ़ होता गया। आगे चलकर ये पंढरपुर में ही बस गये। इनके चार पुत्र और उनकी पुत्र वधूएँ भी श्रेष्ठ भक्त एवं कवयित्री हो गईं। इनका प्रभाव ऐसा था कि घर में काम करने वाली 'जनाबाई' भी उच्च कोटि के संतों में गिनी जाती हैं। यद्यपि इन्होंने बिसोबा खेचर को अपना गुरु माना लेकिन संत बिसोबा ने इन्हें संत ज्ञानेश्वर के पास भेज दिया। इसलिए ये संत ज्ञानेश्वर के साथ उनकी परछाई की भाँति रहने लगे। चूँकि संत ज्ञानेश्वर ब्राह्मण थे और संत नामदेव शूद्र वर्ण से आते थे, अतः इस ब्राह्मण और शूद्र गुरु–शिष्य ने महाराष्ट्र के सामाजिक ताने–बाने पर गहरा असर डाला। संत नामदेव अपने विषय में स्वयं वर्णन करते हैं कि दर्जी कुल में मेरा जन्म हुआ लेकिन मेरा लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है। वैसे मैं दिन–रात दर्जी का काम करता रहा यानी कपड़े सिलता रहा। मुझे जरा भी चैन लेने का समय नहीं। मेरे चारों ओर सुई, धागा, कैंची कपड़े नापने का गज़ आदि प्रपंच उसी सदाशिव के द्वारा फैलाया गया है। परन्तु मैंने तो विठोबा को ही अपने शरीर में सी लिया है, जिससे मेरा जन्म सार्थक हो गया है–

"शिंपियाचे कुळीं जन्म मज जाला। परि हेतु गुंतला सदाशिवीं।

रात्री माजीं शिवीं विवसामाजी शिवीं। आराणुक जीवीं नाही माझ्या।

सुई आणि सातूळी, कात्री गज दोरा। मांडिला पसारा सदाशिवीं।

नामा म्हणे शिवीं विठोबाचे अङ्गौं। त्याचेनि मो जगीं धन्य जालो।।"[2]

मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए इन्होंने जाति प्रथा का विरोध किया। जाति और ऊँच–नीच के भाव को दूर करने के निमित्त वारकरी संप्रदाय के लोग मिलकर भजन–कीर्तन करते रहते हैं। उस समय संत नामदेव के संगी–साथी थे– परसा भागवत, साबंता माली, गोरा कुम्हार, नरहरि आदि उच्चकोटि के संत थे। इन संतों का एक ही धर्म था– मानव धर्म। यही इनका भक्ति धर्म था। इन संतों के भजन–कीर्तन एवं भक्ति ने बड़ा असर छोड़ा। इस भजन–कीर्तन यानी सत्संग के विषय में

---

1 हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, पृ. 88

2 हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, पृ. 230

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नामदेव कहते हैं कि– 'संत संगे माझी पालट झाली' अर्थात् सत्संग से मुझमें आमूलचूल परिवर्तन हो गया। संपूर्ण भारत की संत परंपरा पर चिंतन–मनन करने वाले बलदेव वंशी संत नामदेव के सत्संग एवं भजन–कीर्तन के विषय में लिखते हैं– "संत नामदेव भक्त मण्डली के सम्मुख विशेष वेश धारण कर, माथे पर चन्दन लगाकर तथा करताल लेकर उपस्थित होते थे। वे स्वयं नाचते–गाते, करताल–बजाते हुए कीर्तन करते थे। वे भक्ति के आधार पर प्राचीन धर्म–कथाओं को कहते तथा स्वर–लय के साथ अभंग गाते थे। कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र की कीर्तन परम्परा के वे प्रथम पुरुष थे। आज भी वह परम्परा पूरे महाराष्ट्र में चल रही हैं।"[1] वे अपने एक पद में कहते हैं– हे ईश्वर! मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रह सकता हूँ। हे ईश्वर! तुम्हारा नाम ही सार है, बाकी सब संसार असार है झूठा है–

"लोक बेद कै संगि बह्या, सलिल मोह की धार।

जन नांमदेव नां स्वामी बीठला मोहि खेवि उतारौ पार।"[2]

वस्तुतः नामदेव ने उस समय प्रचलित लोकवेद की रुढ़ियों को तोड़ा और व्यक्ति को शुद्ध बुद्ध मानव बनने की ओर अग्रसर किया।

इनके अच्छे कर्मों और प्रयत्नों के द्वारा भक्त मंडलियों में नामदेव की बड़ी प्रसिद्धि हो गई। सदैव ईश्वर की भक्ति में तल्लीन इनका मन सांसारिक विषयों से विरक्त विट्ठल–भजन के माधुर्य में डूबा तीर्थ यात्रा करता रहता था। 'भेदाभेद भ्रम है, अमंगल है'– की भावना का प्रचार–प्रसार इनके भक्ति पदों (अभंगों) का मुख्य स्तर है। इनकी भक्ति आत्मनिवेदनपरक है। इन्होंने अपने पदों में विट्ठल, राम, हरि, कृष्ण, गोपाल, केशव, सभी को एक रूप मान कर उनका प्रेमभाव से स्मरण किया।

8.2.4 बोध प्रश्न

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–दो पंक्तियों में दीजिए–

i) संत नामदेव ने किससे दीक्षा ली थी?

ii) संत विसोवा ने जानाबाई को ज्ञान प्राप्ति के लिए किसके पास भेजा था?

ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

i) संत नामदेव ..... वर्ण के थें (वैश्य/शुद्र)

ii) मानव को मानव रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए इन्होंने .....प्रथा का विरोध किया। (सती प्रथा/जाति प्रथा)

8.2.5 नामदेव का उत्तर भारत की ओर प्रस्थान

जब संत ज्ञानेश्वर ने सन् 1296 में इक्कीस वर्ष की अवस्था में शके 1218 कार्तिक त्रयोदशी, गुरुवार को सिद्धेश्वर मंदिर के सम्मुख जीवित रहते हुए समाधि ले ली तब नामदेव का अंतर्मन बड़ा व्यथित हुआ। वे कहते हैं–

"नामा म्हणे आता लोपला दिनकर। बाप ज्ञानेश्वर समाधिस्थ।

---

1 भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 307

2 नामदेव रचनावली, गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली सं. 2009, पृ. 68

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संत अंतरला सखा झाला दूर। पंठरपुर कैसे कंठूर।।"

अर्थात् नामदेव कहते हैं कि सूर्यास्त हो गया है पितृ तुल्य ज्ञानेश्वर ने समाधि ले ली है। मेरा अंतरंग मित्र (ज्ञानेश्वर) सदा–सदा के लिए मुझसे दूर चला गया। अब मैं पंढरपरु आकर कैसे रहूँ? अर्थात् अब मैं पंढरपुर में नहीं रह सकता। नामदेव ने अपने मन को दृढ़ कर मानव–कल्याण के लिए अपनी योजना यानी कार्य निर्धारित कर पंढ़रपुर छोड़कर उत्तर भारत की ओर अपनी भजन–कीर्तन मंडली के साथ आ गए। उस समय उत्तर भारत में हिंदुओं पर मुस्लिम शासकों के अत्याचार दिनों–दिन बढ़ते जा रहे थे। सामान्य जनता में सर्वत्र निराशा व्याप्त थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में समाज के ऐक्य का व्रत ले तथा ऐक्य भाव के प्रचार–प्रसार का कार्य भक्ति के माध्यम से किया। नामदेव ने निर्गुण–सगुण शैव–वैष्णव आदि सब को एक मानते हुए कीर्तन करते हुए पंजाब में आ जमे। क्योंकि उस समय मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रवेश–द्वार पंजाब ही था। पंजाब में भक्ति का अलख जगाते हुए उन्होंने अपनी शिष्य मंडली के द्वारा एक ओर समाज को संगठित किया और दूसरी ओर सामाजिक विषमताओं पर प्रहार किया।

8.2.6 बोध प्रश्न

क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक या दो पंक्तियों में दीजिए–

i) नामदेव ने उत्तर भारत की तरफ प्रस्थान कब किया?

ii) नामदेव पंढरपुर आकर क्यों नहीं रहना चाहते थे?

iii) ज्ञानेवश्वर रामदेव के कैसे मित्र थे?

8.2.7 नामदेव की रचनायें और साहित्यिक योगदान

नामदेव के साहित्यिक योगदान पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि सिखों के गुरुग्रंथ साहब में 'भक्त नामदेव जी की मुखबानी' नाम से 61 पद मिलते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों से प्राप्त हस्तलिखित पोथियों के आधार पर हिंदी के 232 पद और 13 साखियाँ मिलती हैं। 'हिंदी को मराठी संतों की देन' पुस्तक के लेखक विनय मोहन शर्मा कहते हैं– "यह सत्य है कि कबीर के समान नामदेव की हिन्दी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में नहीं मिलती, परन्तु जो कुछ प्राप्त हैं उनमें उत्तर भारत की संत परंपरा का पूर्व आभास मिलता है और उनके परवर्ती संतों पर निश्चय ही उनका प्रभाव पड़ा है जिसे उन्होंने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। ऐसी दशा में उन्हें उत्तर भारत में निर्गुण भक्ति का प्रवर्त्तक मानने में हमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिये।"[1]

नामदेव के लगभग दो हज़ार अभंग यानी पद उपलब्ध हैं जो 'नामदेवागाथा' में संगृहीत हैं। उन्होंने कबीर की भाँति भिन्न–भिन्न विषयों पर अभंग रचे जो मुख्यतः इन वर्गों में विभाजित किए गए हैं– आत्मचरितपरक, ज्ञानदेव के चरितपरक, चित्तशुद्धि विषयक, भगवन्नाम स्मरण व कीर्तन से संबद्ध अभंग आदि।

नामदेव की गाथा में कृष्णचरितपरक अभंग पाये जाते हैं। इसके साथ ही इन्होंने संत ज्ञानेश्वर के चरित्र को बड़े ही भक्तिभाव से 'आदि', 'समाधि' और 'तीर्थावली' नाम से लगभग साढ़े तीन सौ अभंगों में शब्दबद्ध किया है। वस्तुतः ज्ञानेश्वर के शिष्य विसोबा थे और विसोबा के शिष्य थे नामदेव।

---

1 हिन्दी को मराठी संतों की देन, आचार्य विनयमोहन शर्मा, पृ. 139

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

यही कारण है अपने परात्पर गुरु के प्रति नामदेव का हृदय श्रद्धा एवं भक्ति से ओत–प्रोत था। उन्होंने 'आदि' में ज्ञानेश्वर और उनके भाई बहन के जीवन का वर्णन किया है। 'समाधि' में ज्ञानेश्वर के विछोह का करुण रस से पूर्ण वर्णन है। 'तीर्थावली' में ज्ञानेश्वर के साथ की गई तीर्थ यात्राओं का भक्तिभाव पूर्ण वर्णन किया है। चूँकि ज्ञानेश्वर को समाधि लेते हुए नामदेव ने प्रत्यक्ष रूप से देखा था, अतः नामदेव के लिए यह विछोह असहनीय होना स्वाभाविक ही था। इसके बाद वे उत्तर भारत में सुदूर पंजाब की ओर आ गए। अपने पंजाब प्रवास के दौरान उन्होंने अपने श्रोता/भक्तों को ध्यान में रखकर हिंदी में भी श्रेष्ठ भक्ति पदों की रचना की है। इस तथ्य की पुष्टि गुरुग्रंथ साहिब में संकलित उनके 61 पदों से होती है। गुरुगंथ साहिब में उनके पदों को 'नामदेव वानी' कहा जाता है। उन्होंने उपदेशात्मक साखियाँ भी लिखीं, जिनमें आंतरिक शुद्धता पर बल दिया गया है। समग्रतः नामदेव के पद मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ आध्यात्मिक परमोत्कर्ष के परिचायक हैं। उन्होंने बाह्याडम्बरों का निषेध कर हृदय की शुद्धता का आग्रह किया है।

8.3 निष्कर्ष

उपर्युक्त आलोक में हम कह सकते हैं कि–नामदेव समस्त उत्तर भारत की अखंड संत–परंपरा के आदि पुरुष थे। सचमुच वे उत्तर भारत के सांस्कृतिक एवं धार्मिक जागरण के आद्य प्रणेता थे। अपने उपदेशों से उन्होंने कबीर, नानक आदि संतों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अपनी भक्ति रस भीनी वाणी से संत नामदेव ने जो अपूर्व सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सेवा की है, उसके लिए समस्त मानव जाति उनकी चिरऋणी रहेगी। समग्रतः विठ्ठल भक्त नामदेव एकांतिक वृत्ति के सगुणोपासक भक्त मराठी समाज में तो प्रसिद्ध हुए ही साथ–साथ नाम–स्मरण की भक्ति यानी निर्गुण भक्त बनकर वे उत्तर भारत में भी बड़े प्रसिद्ध हुए और इन्होंने कबीर, नानक, रैदास आदि संतों की निर्गुणोपासना की पृष्ठभूमि निर्मित की।

8.4 अभ्यास–प्रश्न

1. 'भारत की संत परंपरा' पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. 'हिंदी को मराठी संतों की देन' – पर एक समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत कीजिए।
3. हिन्दी निर्गुण काव्य का प्रारंभ क्या आप संत नामदेव से मानते हैं? इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. संत नामदेव की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
5. कबीर, रैदास, नानक आदि की निर्गुण भक्ति की पृष्ठभूमि में संत नामदेव की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

8.5 संदर्भ–ग्रंथ

1. *'हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन'*, –डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. *'भारतीय संत परंपरा'*, बलदेव वंशी
3. *'हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता'*, –डॉ. शं.के. आडकर
4. *'भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता'*, –कृष्ण गोपाल
5. *'नामदेव रचनावली'*;–गोविंद रजनीश

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

9. संत योगिनी ललद्यद

डॉ. राजकुमारी शर्मा
गेस्ट टीचर,
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

9.0 अधिगम का उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 संत ललद्यद

9.2.1 जीवन-परिचय

9.2.2 बोध प्रश्न

9.2.3 ललद्यद की भक्ति-भावना

9.2.4 बोध प्रश्न

9.2.5 ललद्यद की भक्ति काव्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा

9.2.6 निष्कर्ष

9.3 अभ्यास-प्रश्न

9.4 संदर्भ-ग्रंथ

9.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्ययन सामग्री को पढ़कर विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम हो सकेंगे–

- कवयित्री ललद्यद के बारे में जान सकेंगे।
- कवयित्री की आध्यात्मिक बोध से परिचित हो सकेंगे।
- तद्युगीन समाज में फैल रही विसंगतियों एवं आडंबरों के प्रति कवयित्री के विरोध की भावना को समझ सकेंगे।
- संत ललद्यद की शैव-दर्शन एवं भक्ति-भावना से अवगत हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

9.1 प्रस्तावना

योगिनी ललद्यद विश्व की महानतम आध्यात्मिक विभूतियों में से एक थीं। इन्होंने ऐसे समय में जन्म लिया जब सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी दृष्टियों से समाज अव्यवस्थित था। समयानुसार उन्होंने भक्ति भावना का ऐसा मार्ग चलाया, जो हिंदू और मुसलमान दोनों को मान्य था। कश्मीर की संत कवयित्री ने बाह्यचारों एवं विधि-विधानों की जटिलता से रहित भक्ति के उस सरल मार्ग का प्रवर्तन किया, जिस पर चलने के लिए किसी जाति या वर्ग का सदस्य होना आवश्यक नहीं था। मन में भक्ति-भाव और व्यवहार की शुद्धता को अपनाते हुए प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता था। कवयित्री ललद्यद ने अपने भावों और विचारों से समाज में भक्ति के नये आयाम स्थापित किए।

9.2 संत ललद्यद

9.2.1 जीवन-परिचय

योगिनी कवयित्री ललद्यद के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ तथा जीवन की घटनाएँ प्रायः विवादस्पद हैं। डॉ. ग्रियर्सन तथा आर.सी. टेंपल ने ललद्यद का जन्म चौदहवीं शताब्दी में माना तो वहीं सूफी सय्यद अली हमदानी ने ललद्यद का जन्म सन् 1335 ई. के आस-पास माना। इसी तरह कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हसन-खूमामी ने ललद्यद का जन्म 1335 ई. माना है तो अन्य विद्वानों संतों ने विभिन्न जन्म तिथियों का विश्लेषण करते हुए ललद्यद का जन्म समय 1320-1391 माना है। उनके अनुसार ललद्यद का जन्म कश्मीर स्थित पांपोर के समीप सिमपुरा के ब्राह्मण किसान परिवार में हुआ। यह गाँव श्रीनगर से लगभग 9 किलोमीटर की दूरी पर है। कवयित्री ललद्यद को ललेश्वरी, लला, ललयोगेश्वरी और ललारिका आदि नामों से भी जाना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि योगिनी ललद्यद का विवाह बाल-अवस्था में ही पांपोर ग्राम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण परिवार में युवक सोनपंडित से हो गया था। बचपन से ही कवयित्री के मन में सांसारिक बंधनों के प्रति विरोध का भाव था जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपने 'साहित्य' में की है। ललद्यद की प्रारंभिक शिक्षा अपने कुलगुरु श्री सिद्धमोल से प्राप्त हुई। गुरु सिद्धमोल ने ललद्यद को धर्म, दर्शन, ज्ञान और योग संबंधी विविध रहस्यों से अवगत कराया। घर-परिवार से ललद्यद की बढ़ती दूरी देखकर पति सोनपंडित ने गुरु सिद्धमोल से उचित शिक्षा देने के लिए निवेदन किया जिससे कि वह सांसारिकता की ओर ध्यान दे। तदपुरांत गुरु और शिष्या में इस बात को लेकर चर्चा छिड़ गई जिसमें शिष्या के विचार सुन सिद्धमोल अवाक् रह गए। ऐसा माना जाता है कि ''ललद्यद की तबियत में बचपन से ही कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे जाहिर होता है कि उसके दिल व दिमाग पर प्रारंभ से ही गैर मामूली प्रभाव था। वह प्रायः अकेली बैठी रहती और गहरे चिंतन में डूबी रहती। दुनिया की कोई दिलचस्पी उसके लिए

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आकर्षण का केंद्र न बन सकी। वह प्रायः इस असाधारण स्वभाव के कारण अपनी सहेलियों के बीच हास-परिहास का विषय बन जाती।''[1]

ललद्यद का वैवाहिक जीवन वेदनापूर्ण था। सास के कुट व्यंग्य एवं यंत्रणा का लगातार शिकार संत योगिनी होती रही। पति और सास के सारे प्रहार उदारशीलता और धैर्य के साथ झेलती रही। माँ पुत्र को नित नई बातों से ललद्यद के विरोध में उकसाती रहती हैं। पति सोनपंडित ललद्यद पर अनेक प्रकार से यातनाएँ और अत्याचार करता था। सांसारिक बंधनों से मुक्ति पा ललद्यद अपने ईश्वर के प्रति भक्ति-भाव के प्रवाह में निरंतर प्रवाहित होती रही।

9.2.2 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए–

1. संत कवयित्री ललद्यद का जन्म स्थान बताइए।
2. ललद्यद का विवाह किस अवस्था में हुआ था?
3. ललद्यद को किस रहस्य का ज्ञान प्राप्त हुआ था?
4. सोनपंडित ने किस शिक्षा की बात यहाँ पर की है?

1.3.3 ललद्यद : भक्ति-भावना

ललद्यद भक्त और कवयित्री होने के साथ-साथ कश्मीरी भाषा की भी बड़ी ज्ञानी थीं इसलिए उन्होंने कश्मीरी भाषा को संस्कृत ज्ञान परंपरा से जोड़कर लोकजन की भाषा में अपने मनोभावों को प्रस्तुत किया। इन्हें कश्मीरी साहित्य की जननी भी कहा जाता है। इन्होंने अपने साहित्य में सौ से अधिक वाखों में अपने मन की अभिव्यक्ति को बड़े ही सुंदर रूप में व्यक्त किया है। ऐसी किंवदंती है कि एक दिन ललद्यद पानी भरने घाट पर गई हुई थीं। माँ ने पुत्र को बहुत उकसाते हुए घाट पर भेजा। सोनपंडित जब लाठी लेकर घाट पर पहुँचे तो सामने से ललद्यद सिर पर पानी का घड़ा लिये आ रही थी। पति सोनपंडित ने ललद्यद के सिर पर रखे घड़े को चूर-चूर कर दिया पर ऐसा माना जाता है कि ललद्यद के सिर पर पानी ज्यों का त्यों टिका रहा। उसने घर पहुँचकर पानी को बर्तन में भर लिया और पानी जो बचा उसे बाहर की ओर फेंक दिया। कहा जाता है कि जो पानी बाहर फेंका गया वहाँ पर एक तालाब बन गया जो अभी भी 'लल-नाग' के नाम से प्रसिद्ध है।

[1] *कश्मीरी जबान और शायरी*–पृष्ठ 113, भाग-2

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कवयित्री लल्लद्यद उन महान संतों में से एक थी, जिन्होंने अपनी भक्ति से प्रभु प्राप्ति का मार्ग खोज लिया था। इन्होंने ईश्वर से एकनिष्ठ प्रेम कर उन्हें पा लिया। लल्लद्यद के विषय में कश्मीर के प्रसिद्ध सूफी संत शेख नूरुद्धीन वली ने कहा है कि 'उस पांपोर की लला ने दिव्यामृत छक कर पिया, वह थी हमारी अवतार प्रभु! वही वरदान मुझे भी देना'।

'वाख साहित्य' का मूल आधार दर्शन है जिसमें कवयित्री ने वैसा ही माना है जैसा हिंदी के निर्गुण संत कवियों द्वारा दृष्टिगोचर हुआ है। जिसमें कवयित्री के गुरु ने उन्हें रहस्य भक्ति का मूल मंत्र समझाते हुए कहा–'बाहर से मुख मोड़ और अपने अंतर को खोज। बस, तभी से बात हृदय को छू गई और मैं निर्वस्त्र नाचने लगी।' वास्तव में योगिनी लल्लद्यद का मानना था कि वह आंतरिक शारीरिक चेष्टाओं की संकीर्ण मर्यादाओं को छोड़कर असीम में व्याप्त हो चुकी थी। फिर वह भक्ति-भाव में लिप्त योगिनी बन गाँव-गाँव घूम कर यात्राएँ करने लगी और अंतर्ज्ञान के रहस्य का उपदेश देने लगी। लल्लद्यद अपनी भक्ति से शैव दर्शन सिखाने वाले गुरुओं और महात्माओं के विचारों को सुनकर अद्वैत दर्शन के जटिल मार्ग को समझने लगी। इन्होंने अपनी कुंडलिनी ध्यान साधना से शिव को जानने का सफलतम् प्रयास करने लगी–

''छः जंगल किस पार और जगाया चंद्रमा को
(छः चक्र और सातवां ब्रह्म रंध्र)
सोस को काबू में करके प्रसन्न किया प्रकृति को
प्रेम की अग्नि ने जलाया मेरा हृदय
और इस तरह पाया मैंने शंकर को।''[1]

लल्लद्यद ने अपने साहित्य में समाज में व्याप्त आडंबर, विषमता को दूर करने का प्रयास और विरोध भी किया–

''देव वहाँ दिवुर वट्ठा
हेरि बोनि हुसईक वाठ।।
पूज कस करान धुख होय भट्ठा
कर मानस तु पवनस कुनुई संगाठ।''[2]

अर्थात् देव और मंदिर दोनों पत्थर के समान हैं तो तू किसकी पूजा कर रहा है। अपने मन और प्राण को स्थिर कर जीवन के महत्व को समझ अर्थात् जीवन रूपी सार को समझ। (कबीर जैसी बानी)

[1] वीणा शिवपुरी–*कश्मीरी कवयित्री–लल्लेश्वरी* पत्रिका, पृ. 6
[2] वीणा शिवपुरी–*कश्मीरी कवयित्री–लल्लेश्वरी* पत्रिका, पृ. 6

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

ललद्यद उस सिद्धावस्था तक पहुँच गई थीं, जहाँ पर व्यक्ति की अपनी भावनाएँ, इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। व्यक्ति के शरीर में पाँच कर्मेंद्रियाँ हैं, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं जिसमें पंच भौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त करती है–

युस हो मालि हैड्यम, गेल्यम मसखस करुयम,
सुय हो मालि मनस खट्यम न जोह।
शिव पनुन येलि अनुग्रह कर्यम,
लुकहुन्द हेडुन व मे कर्यम क्याह।।

अर्थात् चाहे कोई मेरी बात सुने या कोई तिरस्कार करे, मैं कभी भी मन से उसका बुरा नहीं चाहूँगी। मेरे ऊपर मेरे शिव का आशीर्वाद है तो लोगों के भला-बुरा कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसी तरह समाज में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों को देखकर संत योगिनी का मन बहुत व्याकुल हो उठा और उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। फिर उन्होंने अपनी भावों को इस रूप में व्यक्त किया–

गाटुला अख वुछुम बौछि सुत्य मरान
पन जन हरान पोहुन्य वाव लाह।
निश बौद अख छुम वाजस मारान,
तनु लल बु प्रारान छैन्यम न प्राह।

एक बार उन्होंने व्यक्ति को भूख से मरते हुए देखा, पतझर सा जीर्ण-शीर्ण पड़ा देखा। एक निर्बुद्ध से रसोइये को मार खाते देखा, तभी से उनका मन विचलित हो बाहर की ओर निकल पड़ा। ललद्यद ने कहा ईश्वर मेरे मन में है। मैं उससे अलग नहीं हूँ। उसे प्राप्त करने के लिए एकनिष्ठता, श्रद्धा और त्याग भावना का होना अनिवार्य है। मन में उत्पन्न स्वार्थ और मनोग्रंथियों आदि को बाहर निकालकर फेंकना वे ज्यादा आवश्यक मानती थीं।

9.2.4 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए–

1. कवयित्री ने अपने जीवन में कितने वाख लिखे थे?
2. वाख साहित्य का मूल आधार क्या था?
3. कवयित्री किस धर्म से युक्त अपने आपको मानती थीं?
4. ललद्यद ने समाज में व्याप्त किन विषमताओं का विरोध किया?

(ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, University of Delhi

1. ललद्यद ..... किस परिवार से थी? (ब्राह्मण/सिख)
2. कवयित्री ने ईश्वर को प्राप्त करने का माध्यम ..... माना है। (एकनिष्ठता/समसता)

9.2.5 ललद्यद की (भक्ति काव्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक) विचारधारा

ललद्यद को जो शिक्षा-दीक्षा मिली थी वह अपने गुरु से ही मिली थी। उनके अनुसार वेद, धर्म और शास्त्र आदि व्यर्थ और त्याज्य हैं। इन धार्मिक ग्रंथों और उद्देश्यों का सार ललद्यद ने अपनी मौलिक प्रतिभा से जोड़कर संत मत की शक्ति बनाया। इन्होंने अपने वाखों में धर्मदर्शन संबंधी तथ्यों की प्रधानता के साथ-साथ मानव-कल्याण तथा सामाजिक पुनरुत्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति की है। प्रोफेसर भूषणलाल कौल ने कहा है–''वाख संस्कृत के मूल शब्द 'वाक' का तद्भव रूप है, जिसका अर्थ है वाणी, ध्वनि, कथन (भीतरी संदेश) बोलने की इन्द्रिय या सरस्वती। मुँह से उच्चारित सार्थक ध्वनि वाक् है। काव्य विधा के रूप में वाक् एक चतुष्पदी है।''[1]

भाषा की दृष्टि से कवयित्री ललद्यद के वाख विशेष महत्त्व रखते हैं ललद्यद ने अपनी संरचना कश्मीरी भाषा में लिखी है। संस्कृति के प्रति अपनी विशेष अभिव्यक्ति भी प्रस्तुत की है। डॉ. जियालाल कौल और श्री पी.एन.के. बामझाक ने भी कहा है–''उन्होंने शैविज्य एवं इस्लामिक सूफीजन के मिले-जुले सिद्धांतों का प्रणयन किया।''[2]

इन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी निष्ठा, समपर्ण और भक्ति को तो स्वीकारा ही है साथ ही इस्लाम के प्रति भी अपनी विचारधारा को प्रस्तुत किया है–''इस्लाम के सूफी मत व हिंदू धर्म के शैव मत में सम तत्वों को स्वीकारा।–1. ईश्वर एक है। 2. वही परम सत्ता है, वही सार्वभौम, सर्वव्यापक शक्ति है। इन दोनों धर्मों की अच्छाइयों को मिलाकर एक श्रेष्ठ दर्शन देनेवाली शैव-योगिनी ने समाज में सहिष्णुता जगाने का कार्य किया।''[3] उनके विचार, मानवतावादी दृष्टिकोण एवं धार्मिक भावना, दोनों धर्मों के लोगों को समान रूप से प्रभावित किया है।

मुस्लिम ऋषि शेख नूरउद्दीन ने उन्हें कवयित्री ललद्यद को अपना आदर्श मानते हुए कहा है–

तस पद्मानपोरिच लल्ले
तम गले अमरुथ च्यवो
सो सानी अवतार लोले

[1] विमला रैना–*ललद्यद मेरी दृष्टि में* (भूमिका) पृ. सं. XVII
[2] पी.एन.के. बांजई–*अ हिस्ट्री ऑफ कश्मीर* पृ. सं. 498
[3] दयाकृष्ण–'*द लाइट ऑफ द वैली*, पृ. 7

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तिथिय में वर दितम दिवी

इसमें उन्होंने संत से हुई बात का जिक्र किया है। वे संकीर्णता से ऊपर उठकर मानवीयता के आधार पर हमदानी की प्रशंसा की है। उन्होंने ईश्वर को सृष्टि के कण-कण में विद्यमान मानते हुए उनके सत्य रूप-स्वरूप को जाना और फिर अपने शब्दों में इस प्रकार कहा–'शिव छुय थलय रोजान, न जान्य हुयंद त मुसलमान। त्रुक, अय छुख त पनुन पान परजनाव, सोय साहिबस सत्य जान जान'।

इस प्रकार कवयित्री ने जो बातें और उपदेश अपने जीवन में दिए उन्हें मानने से परहेज भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने कर्मकांड, मूर्तिपूजा का विरोध, बाह्य आडंबर के प्रति आक्रोश और अनेक प्रकार के खंडन भी किए। जीव-हत्या, व्रत-तीर्थ, जपमाला को निरर्थक माना। ईश्वर के प्रति सच्चे मन से व्यक्त भावों को ही श्रेष्ठ बताया।

9.2.6 निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि संत योगिनी ललद्यद ने अपनी भक्ति एवं विचारों के द्वारा समाज और संस्कृति के विभिन्न रूपों का बड़ा ही गंभीर विवेचन-विश्लेषण किया है। इन्होंने अपने 'वाख साहित्य' में ईश्वरीय महिमा का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है यहीं नहीं इन्होंने हिंदू - मुस्लिम ऐक्य, आचरण में नैतिक सामाजिक मूल्यों, भारतीय दर्शन आदि के क्षेत्र में उन्नति के सफलतम् प्रयास किया है। फलतः इन्हीं संतों के माध्यम से धर्म दर्शन संबंधी नई मानवतावदी भक्ति का जन्म हुआ जिससे समाज में लोकरक्षक एवं लोकरंजक भावना का विस्तार हुआ। कवयित्री लीलागानपरक भाव-विचार को प्रस्तुत किया, उससे कश्मीरी साहित्य में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका हमेशा बनी रहेगी।

9.3 अभ्यास प्रश्न

1. संत कवयित्री ललद्यद की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।
2. ललद्यद के वैवाहिक जीवन पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
3. कश्मीरी साहित्य में संत ललद्यद का योगदान किस रूप में माना जाता है स्पष्ट कीजिए।
4. इन्होंने भक्ति के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों पर भी अनेक प्रकार से कटाक्ष किया है इसे विस्तार से समझाइए।

9.4 संदर्भ-ग्रंथ

1. *'अस्तित्व की खोज'*–रेखा मोदी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 253
2. *'कश्मीरी भाषा और साहित्य'*–शिबन कृष्ण रैणा, सेमाग प्रकाशन, दिल्ली।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. *'ललद्यद'*–जयालाल कौल, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
4. *'हिंदी और कश्मीरी के संत काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'*–कृष्णा रैणा, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली
5. *'कश्मीरी साहित्य का इतिहास'*–शशि शेखर तोपखानी, जे.एंड के अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिक, जम्मू।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

10. कुंचन नम्बियार, वेमना, सारलादास

डॉ. अनिल कुमार
हिंदी विभाग, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

रूपरेखा

10.0 अधिगम का उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 विषय प्रवेश
10.3 कुंचन नम्बियार
10.3.1 जीवन परिचय
10.3.2 बोध प्रश्न
10.3.3 विचार
10.3.4 रचनाएँ
10.3.5 जीवन संदेश
10.3.6 बोध प्रश्न
10.4 वेमना
10.4.1 जीवन परिचय
10.4.2 विचार
10.4.3 जीवन संदेश
10.4.4 बोध प्रश्न
10.5. सारलादास
10.5.1 जीवन परिचय
10.5.2 विचार
10.5.3 रचनाएँ
10.5.4 बोध प्रश्न
10.6 अभ्यास के लिए प्रश्न
10.7 संदर्भ ग्रंथ

10.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर विद्यार्थी निम्नलिखित कार्य कर सकने में सक्षम हो जाएंगे–

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1. भक्ति की अखिल भारतीय परंपरा से अवगत हो सकेंगे,
2. तत्कालीन समाज में विद्यमान अशांति एवं अमानवीयता के वातावरण से अवगत हो सकेंगे।
3. कुंचन नम्बियार, वेमना और सारलादास के जीवन–संघर्ष एवं भक्ति के मानवीय संदेश के विषय में जान सकेंगे।
4. इन संतों के काल में प्रचलित सामाजिक रुढ़ियों एवं उनके विरुद्ध इन संतों के संघर्ष को जान सकेंगे।
5. समाज में भक्ति एवं अध्यात्म के द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं विकास के विषय में जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज एवं संस्कृति में मध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू शासन के पतन और मुस्लिम आक्रांताओं का यहाँ शासक के रूप में जमने का कालखंड है। फलस्वरूप समस्त भारत में युद्ध, अशांति एवं संघर्ष का माहौल चारों तरफ व्याप्त था। धार्मिक दृष्टि से भी यह कालखंड हिंदू धर्म या सनातन धर्म में घर कर गई विकृतियों का काल है। इसके साथ ही इस्लाम के बढ़ते प्रभाव ने यहाँ बाह्य एवं आंतरिक रूप से धार्मिक टकराव तथा संघर्ष को बल प्रदान किया। चारों ओर राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक तनाव को भाँप कर यहाँ के तत्कालीन समाजचेता संतों–भक्तों एवं गुरुओं ने– अशांति के क्षणों में शांति, नाना धर्मों में समन्वय, विविधता में एकता, नाना जातियों में एकता के भाव का संचार करने के लिए भक्ति मार्ग का सहारा लिया और समाज में व्याप्त अमानवीयता के स्थान पर मानवीयता की स्थापना का प्रयास किया।

10.2 विषय प्रवेश

मध्यकालीन भारत में भक्ति कण–कण में ईश्वर एवं 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना के संदेश के साथ एक आंदोलन के रूप में फलीभूत हुई। यह एक आश्चर्य ही है कि मध्ययुगीन भारत जहाँ राजनीतिक दृष्टि से विक्षुब्ध व अशांत था, वहीं धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से उतना ही समृद्ध, शांत और अंतर्लीन बना हुआ था। समाज में शांति, सहयोग एवं संतोष की खोज के निमित्त जितने मत–मतांतर, पंथ–संप्रदाय इस युग में विकसित हुए उतने न तो पहले कभी हुए थे और न ही उसके बाद ही उत्पन्न हो सके।

क्या उत्तर, क्या दक्षिण, क्या पूर्व, क्या पश्चिम पूरे भारतवर्ष में विशाल संत परंपरा, सगुण व निर्गुण भक्ति मार्गों का वैविध्य, शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन–बौद्ध आदि संप्रदायों का प्रचार–प्रसार इस बात का सशक्त प्रमाण है कि राजनीतिक संघर्ष से दूर रहकर सभी भक्ति संप्रदायों ने ईश्वर–भक्ति के द्वारा अपने–अपने तरीके से समाज में व्याप्त संघर्ष और भेदभाव को समाप्त कर शांति व मानवता के प्रचार–प्रसार का प्रयास किया। ऐसे ही विशिष्ट संत हैं– केरल के 'कुंचन नम्बियार', आंध्र प्रदेश के 'वेमना' और उड़ीसा के 'सारलादास'। इस भक्ति आंदोलन ने सर्वसामान्य जनता में जहाँ स्वाभिमान की भावना जागृत की, वहीं भक्ति ने संस्कृत के स्थान पर क्षेत्रीय या देशज भाषाओं को प्रोत्साहन दिया।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दक्षिण भारत जो कि भक्ति का उद्‌गम स्थल है, वहीं भक्ति के विकास के बावजूद अनेक सामाजिक कुरीतियाँ विशेषकर ऊँच–नीच, छुआछूत और संस्कृत भाषा का आतंक प्रचलित था। ऐसे में 'केरल' के भक्त कुंचन नम्बियार ने सर्वप्रथम संस्कृत के स्थान पर मलयालम भाषा का प्रचार–प्रसार किया।

10.3 कुंचन नम्बियार

10.3.1 जीवन परिचय

कुंचन नम्बियार (ई.सन् 1705–1748) भारत के केरल प्रांत में द्रविड़ भाषा परिवार की मलयालम भाषा के एक प्रमुख संत थे। कुंचन नम्बियार का जन्म केरल के किल्लिक्कुरिशिमंगलम् नाम के एक गाँव में हुआ था। इनके गुरु 'श्री नारायण भट्‌टतिरि' श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। ये प्रकांड विद्वान थे। कुछ दिन ये केरल की एक छोटी रियासत के राजा के आश्रय में भी रहे। राजाश्रय में रहते हुए किंवदंति है कि इन्होंने उस समय उपलब्ध सभी ग्रंथों का अध्ययन किया था। भक्त कुंचन नम्बियार ने ईश्वर–भक्ति के साथ–साथ काव्य, अभिनय, नृत्य एवं वा| के सम्मिश्रण से एक विशिष्ट नृत्य–पद्धति 'तुल्लल' का विकास किया। 'तुल्लल' का अर्थ है– नर्तन यानी नृत्य। इस नृत्य में एक व्यक्ति विशिष्ट वेशभूषा में रंगमंच पर उपस्थित होता है तथा किसी पौराणिक या वीररस से परिपूर्ण कथा को काव्य के रूप में प्रस्तुत करता है। अभिनय युक्त गीत–संगीत के माध्यम से लोग कथा का रसानंद लेते हैं और साथ ही जीवन का उचित उपदेश भी लेते हैं।

'तुल्लल' नृत्य–पद्धति के उद्‌भव और विकास की पृष्ठभूमि में हम पाते हैं कि केरल के मंदिरों में कई प्रकार की कलाओं का उद्‌भव और विकास हुआ। ऐसी ही एक विशिष्ट कला पद्धति है 'चाक्यार कूत'। वस्तुतः चाक्यार एक जाति–विशेष के लोगों से जुड़ी नृत्य एवं कथा से मिश्रित कला है, जिसमें समाज–सुधार के निमित्त पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर प्रचलित कुरीतियों का मनोरंजनात्मक लेकिन तीखी और व्यंग्यात्मक भाषा में खंडन किया जाता है। इसीलिए चाक्यार किसी की भी हँसी उड़ा सकते हैं। ऐसे ही एक अवसर पर एक चाक्यार अंबलप्पुजा के मंदिर में कथा सुना रहा था। उस समय कवि कुंचन नम्बियार बाजा बजा रहे थे। बाजा ठीक से न बजाने के कारण चाक्यार ने भरी सभा में कुंचन का मजाक उड़ाया। कुंचन उस समय तो चुप रहे परंतु चाक्यार को सबक सिखाने के उद्देश्य से दूसरे दिन कुंचन मंदिर के एक स्थान पर विचित्र वेशभूषा धारण कर संगीत–वाद्य–विशेष के साथ नृत्य करने लगे। जो लोग चाक्यार से कथा सुन रहे थे, वे सब लोग कुंचन के नृत्य से आकर्षित होकर उसके पास आ गए। चाक्यार के पास कोई न रहा। फलस्वरूप वह चाक्यार बड़ा लज्जित हुआ। इसी से 'तुल्लल' पद्धति के जन्म और लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस 'तुल्लल' पद्धति के आधार पर कुंचन नम्बियार ने अनुमानतः चालीस कथाएँ लिखीं। यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह है कि 'तुल्लल' शैली में विशुद्ध रूप से मलयालम भाषा का प्रयोग किया गया जबकि 'चाक्यार कूत' में संस्कृत भाषा एवं शैली की प्रधानता थी। प्रत्येक 'तुल्लल' रचना में एक स्वरबद्ध यानी लयबद्ध कविता होती थी जो कि दर्शकों को जोर से सुनाई जाती है।

10.3.2 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए–

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(क) कुंचन नम्बियार का संबंध किस प्रांत से है?

(ख) कुंचन कुछ दिन किस रियासत के राजा के आश्रय में रहे?

(ग) तुल्लल नृत्य पद्धति का विकास केरल के किस मंदिर में हुआ?

10.3.3 विचार

भक्त कुंचन नम्बियार ने अपने समय के समाज में प्रचलित सामाजिक–धार्मिक बुराइयों को दूर करने का भरसक प्रयास किया। उनके अनेक प्रमुख गुणों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है अपनी जनभाषा–मातृभाषा 'मलयालम' के प्रति असीम प्रेम। यद्यपि वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे लेकिन फिर भी भक्त कुंचन ने अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम लोक प्रचलित मलयालम भाषा को बनाया। साथ ही इन्होंने लोक प्रचलित मलयालम भाषा को समृद्ध करने के लिए विपुल मात्रा में साहित्य–सृजन किया। भक्त कुंचन नम्बियार कबीर की भाँति– 'संस्कृत है कूप जल, भाखा बहता नीर' के अनुरूप अपने मलयालम में काव्य रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–

"भाषयाय परवानुमटियनु संस्कृतत्तिलुमान्नुपोल

दोषहीन पटुत्व मन्न्यमुदिप्प तुणिटविटुन्नतिन

शेषयिल्ल भृटज्जनंगल धरिच्चिटा कटु संस्कृतम्

भाषायाय परयामतिल चिल दूषणम् वरुमेंक्किलुम।"

अर्थात् यद्यपि मैं मलयालम और संस्कृत दोनों भाषाओं में ही अपने आशय को भली–भाँति प्रकट कर सकता हूँ, तथापि मैं मलयालम में ही लिखता हूँ। सामान्य लोगों के लिए संस्कृत कठिन है। मलयालम में लिखना एक दोष होगा (अर्थात् संभवतः मुझे लोग पंडित न कहेंगे) तो भी उस दोष को स्वीकार कर मैं सामान्य–जनों के लिए उसी भाषा अर्थात् मलयालम में ही लिखता हूँ।

कुंचन अपने काव्य में सदैव सरल, सरस, मधुर और प्रसादगुण युक्त शब्दावली का ही प्रयोग करते थे। शब्दों की खोज उन्हें कभी नहीं करनी पड़ती थी। सरस्वती की उन पर असीम कृपा थी। जैसे क्षीर–सागर के वक्षस्थल पर तरंगे प्रचंड वेग से नर्त्तन करती–थिरकती रहती हैं वैसे ही उनकी जिह्वा पर शब्द–समूह नाचते रहते थे।

भारतीय समाज एवं संस्कृति में विद्यमान तत्कालीन सामाजिक बुराइयों जाति–प्रथा, धार्मिक आडम्बर, धनी–निर्धन और ब्राह्मण–शूद्र में अत्यधिक अंतर आ गया। इसलिए समाज में बहुसंख्यक वर्ग मुख्यतः गरीब, पिछड़े लोगों का जीवन बड़ा ही नारकीय हो गया था। जैविक रूप से सभी मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही समान होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भक्त कवि कुंचन नम्बियार बार–बार अपने विचारों का उल्लेख करते हैं कि सभी मनुष्यों में एक ही ब्रह्म का अंश विद्यमान है। कुंचन के ही शब्दों में–

विप्रनेन्नुं क्षत्रियनेन्नुं वैश्यनेन्नुं शूद्रनेन्नुं।
इप्रपन्चे नालु वर्ण नालवक्त्रनुलवाक्कि।
तल्प्पुरत्तु बौद्धनेन्नुं पाणनेन्नुं पर्यनेन्नुं।
कल्पितं जातिभेद त्तिन्नंतमिल्ल निरूपच्चिाल।...

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

एन्नतु मूलमात्मविन्नार्क्कुमार्क्कुम भेदमिल्ला।
ओन्नु तन्ने चरटुल्लिल भूसुरन्नुं परयन्नुम।
ज्ञानमेन्नुल्लतु तन्ने सार मेन्नु धरिक्केणम।
ज्ञानमिल्लात्त विप्रन्नुं बौद्धन्नुं भेद मिल्लेतुम।"[1]

अर्थात् ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों की सृष्टि की। यदि सूक्ष्म रूप से विचार किया जाए तो स्पष्ट होगा कि इन सब का मूलाधार केवल ब्रह्म ही है। सूत्र में प्रवाल (मोती) आदि पिरोकर धनी लोग अपने गले में मालाएँ पहनते हैं, निर्धन गुंजाफल (रत्ती के फल) की माला उसी सूत्र में पिरोकर धारण करते हैं। इन दोनों प्रकार की मालाओं का आधार तो डोरी ही है। उसी प्रकार सभी जातियों के मध्य आत्मा एक ही है चाहे वह चांडाल हो या ब्राह्मण। जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं, वह चाहे ब्राह्मण कुल में ही क्यों न पैदा हुआ हो, वह चांडाल के ही समान है।

भक्त कवि कुंचन नम्बियार बार–बार अपने इसी विचार का उल्लेख करते हैं कि सभी मनुष्यों में एक ही ब्रह्म विद्यमान है। अन्य संतों एवं भक्तों के समान इन्हें भी पूर्ण विश्वास था कि गुरु के रुठने पर शिष्य को कहीं ठौर नहीं है। भक्त कवि नम्बियार ने "अपने गुरु की श्रेष्ठता को राजसभा में निरूपित करने के लिए राजाज्ञा के अनुसार स्वयं रातभर जागकर 'बारह सर्गों' के एक काव्य की रचना की। यह संत कुंचन नम्बियार की निःस्वार्थ गुरुभक्ति और विनय का ज्वलंत उदाहरण है। गुरु की कृपा पर अटूट विश्वास रखने वाले कुंचन नम्बियार कहा करते थे कि गुरु के अनुग्रह के बिना शिष्य की दशा नहीं सुधरेगी।

10.3.4 रचनाएँ

भक्त कुंचन नम्बियार ने विपुल मात्रा में भक्ति साहित्य[2] का सृजन किया, जिनमें प्रमुख हैं– 'श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्', 'भगवद्दूत', 'भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्', पतिन्नालुवृत्तम्, 'शीलावति–नल–चरित्र', 'विष्णुगीता', 'शिवपुराण' आदि। समग्रतः भक्त कुंचन नम्बियार ने भक्ति के माध्यम से जातिगत सीमाओं एवं सामाजिक रुढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों पर आघात कर समाज–सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। इसके साथ ही उन्होंने संस्कृत साहित्य दर्शन को अनूदित करके जन–जन तक पहुँचाया।

10.3.5 जीवन संदेश

कुंचन नम्बियार के जीवन वृत्त विचारों और रचनाओं से अवगत होने के पश्चात् अब हम इनके जीवन संदेश को सहज रूप से जान सकते हैं। कुंचन का जीवन संदेश सबसे प्रमुख तो यही है कि इन्होंने तत्कालीन समाज में भेदभाव के प्रमुख स्रोत–संस्कृत भाषा का बहिष्कार करते हुए जनभाषा–मलयालम को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसके साथ ही उन्होंने समाज में जाति–प्रथा, ब्राह्मण–शूद्र और अमीर–गरीब के मध्य विद्यमान भेदभाव को दूर कर समाज को मानवतापूर्ण बनाने का भरसक प्रयास किया। अन्य सभी संतों की भाँति कुंचन नम्बियार ने भी अपने गुरु के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व्यक्त की है।

---

1 *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता*, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 472–473

2 *हिंदी और मलयालम में कृष्णभक्ति–काव्य*, के. भास्करन नायर, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सं. 1967, पृ. 64

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

चूँकि कुंचन ने जीवन के उतार–चढ़ाव और सामाजिक बुराईयों को भी नजदीक से देखा था, अतः उन्होंने समकालीन के साथ–साथ पुराणों से जो जब अपना कथ्य चुना तो वह तत्कालीन जीवन पर एक सार्थक टिप्पणी करता है। उन्होंने अपनी 'तुल्लल' रचनाओं में बोलचाल की मलयालम भाषा के द्वंद्वात्मक रूप का ऐसा प्रयोग किया है कि हास्य एवं व्यंग्य के द्वारा समाज सुधार का स्वर प्रतिध्वनित हो जाता है। समाज के सभी लोग, व्यवसाय एवं वर्ग कुंचन के व्यंग्य के अंतर्गत आते हैं जैसे–तमिल ब्राह्मण, नायर, दरबारी आदि। वे अपने समय के सबसे बड़े व्यंग्यकार हैं। अपनी भक्ति एवं व्यंग्यात्मक रचनाओं के द्वारा वे मानवता को प्रतिबिंबित कर मानवीय भावनाओं को रूप–आकार प्रदान करते हैं।

10.3.6 बोध प्रश्न

प्रश्न 1. खाली स्थान की पूर्ति करें।

(क) भक्ति–मार्ग का सहारा लिया गया .....। (मानवीयता की स्थापना के लिए, मोक्ष के लिए, इस्लाम से लड़ने के लिए)

(ख) भक्ति का मूल भाव.....है। (आत्मवत् सर्वभूतेषु, आत्मविकास, भक्ति)

प्रश्न 2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर केवल 'हाँ' या 'ना' में दीजिए।

(क) कुंचन नम्बियार के गुरु श्री नारायण भट्टतिरि थे।

(ख) 'तुल्लल' नृत्य पद्धति में नृत्य के द्वारा अपनी बात कही जाती है।

(ग) भक्त कुंचन नम्बियार ने संस्कृत में काव्य रचना की।

10.4 वेमना

10.4.1 जीवन–परिचय

संत वेमना (ई. सन् 1652–1725) आंध्र प्रदेश में तेलुगू भाषा–भाषी क्षेत्र के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्गुण संत हैं। इनका जन्म एवं जाति कबीर की भाँति विवादों के घेरे में है। कोई इन्हें शूद्र बताता है तो कोई ब्राह्मण। फिर भी मान्यता है कि इनका जन्म कापुजाति के एक संपन्न रेड्डी परिवार में हुआ। इनका जन्म चित्तूर जिले के अंतर्गत मृगचितनपल्ली नामक स्थान पर हुआ। इनका शुरुआती जीवन कांडवीडु में व्यतीत हुआ परंतु संन्यास ग्रहण करने पर पर्यटन करते हुए इनका अधिकांश समय कडपा और कर्नूल जिलों में बीता। इनकी शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबंध किया गया था। नारायण गुरु से इन्होंने वीरशैवग्रंथ, रामायण–महाभारत और पुराणों का अध्ययन किया। कालांतर में लंबिकाशिव योगी से शैव योग धर्म का अध्ययन–मनन किया। बाद में ये भक्त वेमना से योगी वेमना कहलाने लगे।

वेमना की भक्ति–विषयक रचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि समाज की शिक्षा–दीक्षा और यथार्थ जीवन के व्यवहार में असंगति से इनका मन सतत् रूप से वैराग्य की ओर झुकता गया। इनका यौवनकाल जीवन के सुख–भोगों एवं वेश्याओं के साथ प्रेम–प्रसंगों में बीता था। वेश्याओं के रुखे व्यवहार से विरक्ति भी उनके वैराग्य का एक प्रमुख कारण था। पत्नी से प्रेम न मिलने और संतान के निकम्मे होने से वेमना पूर्णतः वीतरागी हो गये थे। लोक कल्याण के लिए इन्होंने सोना बनाने की विद्या

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भी साधी। संसार से और सांसारिक सुख–भोगों एवं संबंधों से विरक्त होकर जब ये वन में नग्न होकर घूमने लगे तो लोगों ने इन पर सवाल उठाए। तब ये कहते हैं– "माँ के गर्भ में और जन्म लेते समय आप कपड़े नहीं पहनते और अंत में मृत्यु के समय भी व्यक्ति नग्नावस्था में ही रहता है। बीच में कपड़ा पहनना हंसने की बात नहीं तो क्या? विश्वदाभिराम विनुर वेम।"

जीवन के अंत समय में वेमना कडपा जिले के पामूरु की गुफाओं में किसी गुफा में प्रविष्ट होकर जीवनमुक्त हुए। भर्तृहरि की भाँति वेमना का जीवन भी जीवन के सुख–भोगों से वैराग्य की ओर प्रवृत्त हुआ था। जीवन के शुरू में इन्होंने वैभवपूर्ण जीवन का आनंद लिया परंतु बाद में जीवन के भौतिक सुखों को छोड़कर ये विरक्त हो गए। डॉ. बलदेव वंशी के अनुसार– "वेमना का जन्म एक संपन्न परिवार में हुआ और यौवनास्था में वेश्यागामी बनकर भोग–विलासों में भी उलझे रहे। एक दिन अपनी मातृस्वरूपा भाभी के उपदेश सुनकर वे सचेत हुए और एक साध्वी युवती से विवाह भी कर लिया। दुर्भाग्यवश दांपत्य जीवन में भी अशांति का कटु अनुभव होने लगा। परिणामस्वरूप वे सांसारिक विषयों से विरक्त हो गए और परोपकार के द्वारा परपीड़ा को दूर करना ही अपना ध्येय बना लिया। कहा जाता है कि स्वयं निर्धन होते हुए भी 'स्वर्णयोग' (मिटटी से स्वर्ण बनाने की रसायन पद्धति) को जानने के लिए वैरागी बनकर देश–भ्रमण करने लगे।"[1]

जीवन के कटु–तिक्त अनुभवों के फलस्वरूप ये अध्यात्म की ओर झुकते गए। कहते हैं कि वेमना ने चिंतन–मनन के द्वारा जो आत्मज्ञान यानी सत्य का अनुभव किया, उसी के आलोक में बहिर्मुखीजगत् के जीवन और समाज के सत्यासत्य की तीखी आलोचना की। इन्होंने धैर्यपूर्वक एक ओर सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया वहीं उच्च वर्गीय दंभ एवं अहं का भी विरोध किया। 'लंबिका शिवयोगी' नामक गुरु ने उन्हें दीक्षा देकर हठयोग की बातें सिखाईं। वेमना के विचार भी परिष्कृत होने लगे। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के बाद भ्रमण करते–करते अपने सिद्धांतों का प्रचार करने लगे।

इन्होंने अपना सारा धन पुण्य एवं परोपकार के कार्यों में लगा दिया और तद्दंतर स्वयं निर्धन यहाँ तक कि निर्वस्त्र होकर जंगल में निवास करने लगे। प्रकृति के सभी जीवों– स्त्री–पुरुष, ब्राह्मण–शूद्र, जड़–चेतन सभी में ईश्वरानुभूति के फलस्वरूप इनका व्यवहार समत्वपूर्ण हो गया।

10.4.2 विचार

योगी वेमना की वाणी का संग्रह उनके शिष्यों ने ही किया है। एक मान्यता के अनुसार इन्होंने पाँच हजार से अधिक पद्यों की रचना की लेकिन उनमें से केवल चार हजार प| ही अब उपलब्ध होते हैं। 'योगी वेमना का 'शतक' में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। अपने पदों की समाप्ति पर ये 'विश्वदाभिराम विनुरवेमा' यानी 'विश्व को सदैव आनंद प्रदान करने वाले विश्वनियंता श्रीराम को स्मरण कर वेमना कहते हैं' – की टेक लगाते हैं। इनके पदों/कविता में आत्मसंबोधनात्मक शैली की प्रधानता है। उन्होंने

1 *भारतीय संत परंपरा,* बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 348–49

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

आजीवन मानव–मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष किया, जिसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है–जातिगत भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष। अपनी बात को वे जीवन के यथार्थ उदाहरणों से जनता के सामने रखते थे। वे दूध तथा पुरुष के गुणों द्वारा समझाते हैं–

"पसुला बन्ने वेरु पालेल्ला आकेटे। पुष्पजाति वेरु पूजा ओक्कटे।

दर्शनंबुलारु दैवंबु ओक्कटे। विश्वदाभिराम विनुरवेमा।।"

अर्थात् सारे विश्व को आनन्द देने वाले भगवान राम का स्मरण करते हुए वेमना कहते हैं कि जानवरों के विविध तरह के रंग रहने पर भी उन सभी का दूध तो सफेद रंग का ही होता है। फूल भी तरह–तरह के रंगों के होते हैं, लेकिन पूजा करने के विधान में तो सभी फूलों का उपयोग एक ही प्रकार से होता है। उसी प्रकार विविध तरह के मानव होते हैं, परंतु उनके मन में एक ही परमेश्वर का वास रहता है। अतः सभी मानव एक हैं, उनमें परस्पर कोई भेद नहीं है। यही मानवीय सत्य है– ऐसा ही मानना चाहिए।

10.4.3 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य में दीजिए–

   (क) वेमना का संबंध किस भाषा से है?

   (ख) वेमना को दाम्पतय जीवन से भी क्या मिला?

   (ग) जीवन के उत्तरार्द्ध में वेमना भक्त से क्या हुए थे?

10.4.4 जीवन संदेश

वेमना का काव्य मानव जीवन की सर्वांगीणता का एक शब्द–चित्र, मानव जीवन का मार्ग प्रस्तोता कहा जा सकता है। उन्होंने जनमसान्य की भाषा तेलुगू में समाज को संबोधित किया। इनके पद तेलुगू के सरल छंद 'कंद', 'आटवेलदि', 'तेट–गीता' में रचित हैं। वेमना ने अपनी कविता या पदों में सामाजिक अंधविश्वासों, जातिगत भेदभाव, धार्मिक आडंबरों का खंडन कर सदाचार के पालन का सदुपदेश दिया। इनके पदों में स्पष्टवादिता, निर्भीकता, भक्ति, ज्ञान, समन्वयात्मक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। अपने पदों में वेमना ने 'गागर में सागर' भरने की कहावत को चरितार्थ किया है। व्यंग्यात्मक उक्तियों के द्वारा उन्होंने एक ऐसा चत्मकार भर दिया कि उनके वचन पाठक व श्रोता पर अपना असर छोड़े बिना नहीं रहते। वेमना ने मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का खंडन किया है। अपने एक पद में वे कहते हैं– 'गले में यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। जब तक उसकी बुराइयाँ नहीं छूटतीं वह जनेऊधारी ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी नहीं है। मदिरा की गागर के ऊपर होम–भूति लगाने से क्या वह पवित्र होकर पीने योग्य बन जाती है? अर्थात् वह अयोग्य ही रहती है।'

वेमना समाज में जाति–पाँति और छुआछूत की रूढ़ि के आलोचक थे। विश्वनियंता श्रीराम को स्मरण कर वेमना कहते हैं कि–जाति को हाथ में पकड़कर क्यों इतराना। जैसे कि अनुकूल स्थिति में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

©DDCE, SOL, University of Delhi

बीज अंकुरित होते हैं, वैसे ही सभी मनुष्य पैदा होते हैं। फिर कैसी जाति और कैसा ब्राह्मण अर्थात् कौन शूद्र और कौन ब्राह्मण–

''कुलमु चेताबट्टि गुंपिंचा नेटिकि

पादु उन्न चोटा प्रबलु बित्तु

एटि कुलम्बिंका येक्कडि द्विजुडया

विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा''।

वस्तुतः वेमना मानव–मानव में किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते। वे समस्त मानव जाति को एक मान कर विश्वमानवता की बात करते हैं। इनकी मान्यता है कि 'सभी वर्णों को एक ही वर्ण समझो। वे वर्णरहित समाज के विषय में कहते हैं कि– 'किसी भी वर्ण के उच्च या निम्न होने का कोई विवाद नहीं, सभी वर्णों की उत्पत्ति एक समान हुई है, अतः छोटे–बड़े की बात कैसे जानें?'

वेमना ने अपने समय में राजनीतिक लोगों को और उनके आचार–व्यवहार को निकट से देखा था। कुशासन के कारण योग्यता का अपमान हो रहा था। संत वेमना कहते हैं कि राजा ही चोर बनकर कवियों का धन/हक लूटते हैं। अपनी शक्ति दिखाकर आवारा कुत्ते की भाँति काटने को तैयार रहते हैं–

''गंडमैन दोंगा कवुला सोम्मेगवेसी

कंडा कावाराना कड़िय बलिसी

गंडुकुक्का वलेनु काटुकु दिरूगुनु

विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा''।

चूँकि वेमना ने स्त्री के कई रूपों– माँ, पत्नी और वेश्या आदि को नजदीक से देखा था। इस समय में वेश्यावृत्ति चरमोत्कर्ष पर थी। उच्च वर्ग के लोगों द्वारा वेश्या गमन शान की बात मानी जाती थी। बाद में विवाह के उपरांत भी उनका मन घरेलू–जीवन में नहीं रमा। इसीलिए उनके पदों/कविता में कबीर और सुंदरदास की भाँति नारी निंदा के संदर्भ भी दिखाई देते हैं। अविवेकी व्यक्ति पत्नी की बातों में आकर भाई–भाई आपस में लड़कर एक–दूसरे से जुदा होने वाले मूर्ख हैं। विश्वनियंता श्रीराम को स्मरण कर वेमना कहते हैं कि क्या कुत्ते की पूँछ को पकड़कर गोदावरी को पार किया जा सकता है–

''आलि माटलु विनि अनन्दम्मुलू बासि

वेरूबड्डा वाहु वेर्री वाडु

कुक्का तोका बट्टि गोदावरीदुना

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDE, COL, SOL, University of Delhi

विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा।''

वे अपने एक पद में कहते हैं कि माँ–बाप के प्रति निर्दय पुत्र जिए चाहे मरे, वह तो घर में माँ–बाप द्वारा पाला–पोसा गया परंतु अपनी स्त्री यानी पत्नी का गुलाम होकर रह गया। परंतु ऐसे कुछेक पदों के आधार पर ही वेमना को नारी निंदक नहीं मान लेना चाहिए। वास्तव में, वेमना का यह आशय बिल्कुल नहीं है कि पत्नी को छोड़ देना चाहिए। वे तो विश्वनियंता श्रीराम को स्मरण कर कहते हैं कि जो कामी नहीं है वह न तो कवि है और न रवि। काम के बिना मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। जो कामी है वह कवि भी है और रवि भी है–

''कामि गानिवाडु कवि गाडु रविगाडु

कामि गाका मोक्ष कामि गाडु

कामि ऐना वाडु कवि अउनु रवि अउनु

विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा''।

वस्तुतः वेमना के ऐसे पद तत्कालीन भ्रष्ट समाज के प्रति विद्रोह का स्वर हैं। वेमना की वाणी में भक्ति, नीति, ज्ञान, सदाचार एवं लोकजीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है।

वेमना की मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी जन्म–जाति आदि के आधार पर नहीं अपितु गुणों के आधार पर आंका जाना चाहिए। वे कबीर की उक्ति 'जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान' की तर्ज पर कहते हैं–

''गुणमुलु कलवानि कुल मेंचगा नेल

गुणमुलु कलिगनेनि कोटि सेयु

गुणमुलेका युन्न गुड्डी गुव्वयु लेदु

विश्वदाभिरामा विनुरा वेमा''।

अर्थात् सद्गुणी व्यक्ति की जाति पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। व्यक्ति के सद्गुण ही उसे गौरव दिलाएंगे। गुणहीन व्यक्ति फूटी कौड़ी यानी खोटे सिक्के के समान है, विश्वनियंता श्रीराम को स्मरण कर यह बात वेमना कहते हैं।

समाज में व्याप्त सभी प्रकार के भेदभावों को वे समाप्त करना चाहते थे। अपनी इस तीव्र आकांक्षा के साथ वेमना कहते हैं– "वर्णभेद का नाश कर, दुनिया के सभी लोगों के आगे एक ही भोजन परोसकर, मित्रता एवं परस्पर आत्मीयता का भोजन खिलाकर, हर एक व्यक्ति से उसके सिर पर हाथ रखवाकर, समानता का आचरण करने की प्रतिज्ञा कराई जाए तो कितना अच्छा होगा?"[1] उनकी वाणी में

[1] *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता*, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 414

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

कुरीतियों के प्रति व्यंग्य की तीव्रता हास्य–विनोद में समा जाती है। समग्रतः "उत्तर भारत के संत कबीर की भाँति संत वेमना का पांडित्य भी अनुभवजन्य ही था और उन्होंने जो कुछ कहा है अनुभूति की कसौटी पर कसने के बाद ही कहा है। वेमना की तुलना हिंदी जगत् के संत कबीर, कन्नड़ प्रदेश के संत सर्वज्ञ एवं तमिल प्रदेश के संत तिरुवल्लुवर से की जा सकती है। अनेक विषयों में ये तीनों एक–दूसरे के प्रतिबिंब माने जा सकते हैं।"[1]

10.4.5 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में दीजिए–

   (क) कौन से संत ने अपना सारा धन पुण्य और परोपकार के कार्यों में लगा दिया और स्वयं निर्वस्त्र होकर जंगल में रहने लगे।

   (ख) योगी वेमना की वाणी का संग्रह किसने किया?

2. खाली स्थान की पूर्ति करो

   (क) वेमना को हठयोग की बातें ..... ने सिखाई। (लंबिका शिवयोगी, स्वर्णयोगी)

   (ख) योगी वेमना की वाणी का संग्रह ..... ने किया। (उनके भाईयों, उनके शिष्यों)

   (ग) वेमना को कोई ब्राह्मण बताता है, तो कोई इन्हें ..... बताता है। (शुद्र, वैश्य, क्षत्रिय)

10.5 सारलादास

10.5.1 जीवन परिचय

उड़िसा क्षेत्र के संत सारलादास का जन्म कटक से साठ किलोमीटर दूर पाटणा (आजकल तेंतुलिया पदा) नामक गाँव में हुआ था। इनके जीवन के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनकी शिक्षा–दीक्षा का कुछ पता नहीं चलता। इन्होंने जो भी ज्ञान प्राप्त किया वह अपने अनुभव के आधार पर प्राप्त किया। अपने यौवन–काल के शुरुआती दिनों में सारलादास ने तत्कालीन शासक कपिलेंद्र देव के शासन में एक सैनिक के रूप में काम किया। उस समय इनका नाम सिद्धेश्वर परिडा था। सेना से सेवानिवृत्त हो ये सरस्वती की साधना में जुट गए। इन्हें ओड़िया भाषा का प्रथम कवि होने का गौरव प्राप्त है। सारलादास ने स्वयं को शूद्रमुनि का नाम दिया। इन्होंने ओडिया में तीन ग्रंथों– महाभारत, विलंका रामायण और चंडी पुराण की रचना की। इन्हें लक्ष्मी नारायण वचनिका की

[1] *भारतीय संत परंपरा,* बलदेव वंशी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 350

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रचना के कारण भी जाना जाता है। 'महाभारत' के अध्यायों की समाप्ति पर वे स्वयं को संबोधित करते हुए कहते हैं–

"श्री चण्डी सारलंकर पादतले दास।
शूद्रमुनि अपण्डित श्री सारलादास।।"

संस्कृत भाषा तथा शास्त्रों के ज्ञान से वंचित रहते हुए भी सारलादास ने 'ओड़िया महाभारत' जैसे अद्भुत महाकाव्य की रचना कर डाली। सारलादास अपने आपको स्वाभिमानपूर्वक शूद्रमुनि एवं कृषक कहते हैं। वे स्वभाव से सरल तथा विनम्र हैं। उनके धार्मिक तथा विशुद्ध त्यागमयी जीवन के कारण ही लोग उन्हें शुद्रमुनि कहने लगे तथा उन्होंने भी इस प्रेममयी उपाधि को स्वीकार कर लिया। वे लिखते हैं–

"जगन्माता जहुँ प्रसन्न माते हेले।
शूद्रमुनि सारलादास नाम मोते देले।।"

अर्थात् –'जब जगत्–माता अर्थात् ईश्वर अर्थात् जनता मुझसे प्रसन्न हुईं तब उन्होंने मुझे शूद्रमुनि सारलादास नाम दिया।' वस्तुतः सारलादास उड़िया के सबसे पहले राजकीय कवि हैं, जिन्होंने अपने काव्य के द्वारा समाज का संस्कार–परिष्कार करने का प्रयास किया।

10.5.2 विचार

जैसा कि पूर्व उल्लेख किया गया है कि उनका मूल नाम सिद्धेश्वर परिंडा था लेकिन बाद में सारलादास (यानी भक्ति और प्रेरणा की देवी सरला के वरदान से) नाम से प्रसिद्ध हुए वे जीवनभर दरिद्रता में ही जिये, किन्तु भक्तिार्ग में रमे रहे। प्रतिदिन कृषि कार्य में परिश्रम करना और भक्ति साधना, साथ ही विशाल साहित्य रचना करना एक आश्चर्यजनक कार्य अवश्य प्रतीत होता है, परंतु असंभव नहीं। जिस समय बंगाल के कट्टर इस्लामी नवाब द्वारा ओडिशा पर बार–बार आक्रमण हो रहा था तब यहाँ के इन संतों के भक्ति–जागरण ने ओडिशा को इस्लाम में धर्मांतरित होने से बचाए रखा तथा सामाजिक एकता और समरसता के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

सारलादास ने अपनी कृतियों में स्त्री शक्ति की आराधना के साथ–साथ स्त्री सशक्तिकरण पर बल दिया। उनका 'चंडी पुराण' इस दृष्टि से एक सशक्त रचना है। समाज में राम के चरित्र जैसा संघर्षशील व्यक्तित्व विकसित करने के लिए उन्होंने रामकथा को 'विलंका रामायण' के माध्यम से प्रस्तुत किया। सारलादास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना 'महाभारत' है।

महाभारत भारतीय समाज एवं संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण स्मृति ग्रंथ है जो कि अपनी पौराणिकता, धार्मिकता, नैतिकता, दार्शनिकता एवं ऐतिहासिकता के कारण अनुपम दार्शनिक ग्रंथ है। इसके साथ ही इस ग्रंथ में वेद–वेदांगों एवं उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य में युद्धनीति, अर्थनीति, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, ज्योतिष आदि का विशद् वर्णन मिलता है। महाभारत को हिन्दू जनमानस में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL-SOL, University of Delhi

'पंचम वेद' माना जाता है। इसी ग्रंथ में भारतीय संस्कृति का पवित्रम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। इस ग्रंथ के सृष्टा महर्षि वेदव्यास माने जाते हैं।

उड़िया कवि एवं समाज चिंतक सारलादास ने सर्वप्रथम उड़िया में महाभारत का लेखन किया। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह उड़िया महाभारत संस्कृत महाभारत का पूर्णतः अनुवाद मात्र नहीं है बल्कि यह संस्कृत की महाभारत के पात्रों के माध्यम से मध्यकालीन भारत के तत्कालीन उड़ियाई समाज, संस्कृति एवं राजनीतिक परिस्थिति का प्रस्तुतिकरण है। सारलादास यद्यपि इसे महाभारत कहते हैं परंतु इसमें अन्य स्मृतियों व पुराणों के प्रसंगों का भी समावेश हो गया है। दूसरे शब्दों में सारलादास ने अपनी कल्पना–शक्ति से महाभारत में नए–नए प्रसंगों का समावेश कर दिया। सारलादास के इस विवेक ने उड़िसा की संस्कृति एवं परंपरा को एक अलग आयाम प्रदान किया है। उड़िया महाभारतकार का मूल उद्देश्य लोगों के बीच नैतिकता एवं सदाचार का प्रचार–प्रसार करना था जिससे कि लोग सहज स्वाभाविक जीवन जी सकें।

सारलादास चूँकि किसानी जीवन से जुड़े थे। अतः उनके काव्य सृजन में सहज, सरल जनभाषा का प्रयोग प्रमुखता से किया गया है। साथ ही साथ 'महाभारत' जैसे अपने ग्रंथ में अनेक स्थानों पर कृषकों के लिए उपयोगी उपदेश का भी ध्यान रखा है। सारलादास ने अपने 'महाभारत' के शांति पर्व में युधिष्ठर को समझाया है कि वे कृषकों, गुणीजनों और कवियों के प्रति सद्भावना रखें। साथ ही वे कहते हैं कि– कृषकों का धन मत छीनना, गुणियों की पूजा करना, गायों के लिए चरागाह छोड़ना और कवियों के लिए कभी कृपण/कंजूस मत होना–

''कृषिकर्मकारी जने न ताण्डिबु धन,
गोचर निमंते छाड़ि देवु बहुस्थान।
गुणीगण जाणिकरि करिधिबु पूजा,
कविमानंकु कृपण न होइबु राजा।''

10.5.3 रचनाएँ

इन्होंने महाभारत, रामायण एवं चंडी के माध्यम से भारतीय समाज व चिंतन का जीर्णोद्धार किया और ओड़िया भाषा में इन महान ग्रंथों को लिपिबद्ध किया। इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'महाभारत' महाकाव्य मानी जाती है, जिसमें तिरासी हजार छंद है। इनकी 'विलंका रामायण' में दो हजार आठ सौ छंद हैं। यह उनकी पहली रचना मानी जाती है। सारलादास की अंतिम रचना 'चंडी पुराण' मानी जाती है। इनके चंडी पुराण में पाँच हजार पाँच सौ छंद है। अपने इस विशाल साहित्य के द्वारा इन्होंने मानव जीवन में आस्था का संचार तो किया ही साथ ही मानव के समक्ष विजय का रास्ता भी रखा। सारलादास के साहित्य की मूल संवेदना प्रेम नहीं अपितु युद्ध है। उस अशांति के माहौल में भक्ति एवं युद्ध का वर्णन ही मानवता की स्थापना में सहायक हो सकता था।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पंद्रहवीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमणों के संकट के दौरान सारलादास ने अपनी भक्ति के सहारे न केवल हिन्दू समाज को संगठित कर मुस्लिम होने से बचाये रखा अपितु सामाजिक एकता एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

10.5.4 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में दीजिए

   (क) संत सारलादास किस भाषा में उपदेश देते थे?

   (ख) लोग सारलादास को शूद्रमुनि क्यों कहने लगे?

   (ग) ओडिया महाभारत महाकाव्य की रचना किसने की?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के केवल 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए–

   (क) सारलादास की रचना 'चंडी पुराण' में पाँच हजार पाँच सौ छंद हैं।

   (ख) सारलादास भक्ति के साथ–साथ खेती भी करते थे।

   (ग) सारलादास ओड़िया भाषा के अंतिम कवि हैं।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. साहित्य के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए संत कुंचन नम्बियार के प्रदेय का उल्लेख कीजिए।
2. सारलादास की सामाजिक–धार्मिक पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए उनके भक्ति के क्षेत्र में दिए योगदान को स्पष्ट कीजिए।
3. संत वेमना और सारलादास की संत दृष्टि का परिचय देते हुए इनके सामाजिक योगदान का वर्णन कीजिए।
4. संत साहित्य के मानवतावादी संदेश का सारलादास के उद्धरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।

10.7 संदर्भ–ग्रंथ

1 *उत्तरी भारत की संत परंपरा,* आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

2 *भारतीय संत परंपरा,* बलदेव वंशी

3 *भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता,* कृष्ण गोपाल

4 *भारतीय साहित्य की पहचान,* सं. डॉ. सियाराम तिवारी

5. *हिंदी और मलयालम में कृष्णभक्ति काव्य,* के. भास्करन नायर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

11. तुकाराम और चैतन्य महाप्रभु

डॉ. अनिल कुमार
स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

रूपरेखा

11.0 अधिगम का उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 विषय प्रवेश
11.3 तुकाराम
  11.3.1 जीवन–परिचय
  11.3.2 भक्ति एवं विचार
  11.3.3 रचनाएँ
  11.3.4 भक्ति एवं जीवन संदेश
  11.3.5 बोध प्रश्न
11.4 चैतन्य महाप्रभु
  11.4.1 जीवन परिचय
  11.4.2 भक्ति एवं विचार
  11.4.3 जीवन संदेश
  11.4.4 बोध प्रश्न
11.5 संदर्भ–ग्रंथ

11.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप निम्नलिखित कार्य कर सकने में सक्षम हो जाएंगे–

1. भक्ति की अखिल भारतीय परंपरा से अवगत हो सकेंगे,
2. तत्कालीन समाज में विद्यमान अशांति एवं अमानवीयता के वातावरण से अवगत हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु के जीवन–संघर्ष एवं भक्ति के मानवीय संदेश के विषय में जान सकेंगे।

4. तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु के काल में प्रचलित सामाजिक रुढ़ियों एवं उनके विरुद्ध इनके संघर्ष को जान सकेंगे।

5. समाज में भक्ति एवं अध्यात्म के द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना एवं विकास में तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु के योगदान के विषय में जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज एवं संस्कृति में मध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू शासन के पतन और मुस्लिम आक्रांताओं का यहाँ शासक के रूप में जमने का कालखंड है। फलस्वरूप समस्त भारत में युद्ध, अशांति एवं संघर्ष का माहौल चारों तरफ व्याप्त था। धार्मिक दृष्टि से भी इस कालखंड में हिंदू धर्म या सनातन धर्म में घर कर गई विकृतियों सहित इस्लाम के बढ़ते प्रभाव ने यहाँ बाह्य एवं आंतरिक रूप से धार्मिक टकराव तथा संघर्ष को बल प्रदान किया। चारों ओर राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक तनाव को भाँप कर यहाँ के तत्कालीन समाजचेता संतों–भक्तों एवं गुरुओं ने– अशांति के क्षणों में शांति, नाना धर्मों में समन्वय, विविधता में एकता, नाना जातियों में एकता के भाव का संचार करने के लिए भक्ति मार्ग का सहारा लिया और समाज में व्याप्त अमानवीयता के स्थान पर मानवीयता की स्थापना का प्रयास किया। इस दृष्टि से मराठी भक्त तुकाराम एवं चैतन्य महाप्रभु का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

11.2 विषय प्रवेश

मध्यकालीन भारत में राजनीतिक उथल–पुथल एवं धार्मिक कट्टरता के कारण समाज की हालत बड़ी दयनीय थी। समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ था। प्रत्येक जाति अपने–अपने अहंकार में दूसरी जाति को निम्न ठहरा रही थी। ऐसे में इन संतों व भक्तों ने समाज को जागृत करने का प्रयास किया। इसके साथ ही मराठी संतों ने समाज में घर कर गईं बुराइयों धर्म की बाहरी औपचारिकताएँ– तीर्थ–व्रत, स्नान आदि रुढ़ियों के स्थान पर भक्ति पर जोर दिया। ऐसे ही बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने शक्ति/काली की पूजा के स्थान पर भागवत भक्ति पर जोर दिया।

11.3 तुकाराम

11.3.1 जीवन परिचय

संत तुकाराम (वि.सं. 1665–1706; ई. सन् 1608–1649) वारकरी संप्रदाय के एक महत्त्वपूर्ण समाजचेता संत थे। कालक्रम की दृष्टि से ये छत्रपति शिवाजी एवं समर्थ रामदास के समकालीन थे। उस समय समाज में ऊँच–नीच, जाति–पाँति सहित इस्लामी शासन की कट्टरता भी मानवता की

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दुश्मन बनी हुई थी। ऐसे में संत शिरोमणि तुकाराम ने अपनी निर्मल भक्ति एवं सहज उक्तियों के द्वारा भारत के जन–मन में एक नव–स्फुर्ति व चेतना का संचार किया।

संत तुकाराम का जन्म पूना के निकट आलंदी से सात किलोमीटर दूर देहू में हुआ था। जिस प्रकार पंढरपुर पुंडलोक के, आलंदी ज्ञानेश्वर के, गोदावरी तट पर पैठण एकनाथ के, उसी प्रकार देहू तुकाराम के कारण प्रसिद्ध हुआ। तुकाराम का जन्म 1608 ई. में पूणे के निकट देहू में हुआ था। इनके पिता का नाम बोल्होबा और माता का नाम कनकाबाई था। तुकराम के दो भाई और दो बहनें थी। तुकाराम अपने माता–पिता की दूसरी संतान थे। तुकाराम कुनबी जाति ; जो कि वर्ण–व्यवस्था की दृष्टि से निम्न जाति समझी जाती है से संबंध रखते थे।

पांडुरंग विट्ठल की भक्ति इन्हें वंश परंपरा से मिली थी। जीवनयापन की दृष्टि से इनके पिता खेती और साहूकारी का कार्य करते थे। तुकाराम भी अपने पिता के कार्य में हाथ बँटाते थे। परंतु जब ये केवल सत्रह वर्ष के थे तो माता–पिता दोनों ही यह संसार सदा के लिए छोड़ गए। बड़ा भाई पहले ही संन्यास ले चुका था। ऐसी परिस्थिति में परिवार की सारी जिम्मेदारी तुकाराम पर आ गई। परंतु खेती और व्यापार दोनों में ही इन्हें बार–बार हानि हुई। परिणामस्वरूप घर–परिवार की जिम्मेदारी निभाना दुभर हो गया। अकाल में इनकी एक पत्नी और बेटा भी काल का ग्रास बन गया। दूसरी पत्नी इन्हें बहुत खरी–खोटी सुनाने लगी। ऐसे में ये संसार से पूर्णतः उदासीन हो गए। अविद्या की अंधेरी रात नष्ट हो गई और भक्ति का सूर्य इनके अंतःकरण में प्रस्फुटित हुआ।

11.3.2 विचार

एक भक्त के रूप में वे कहते हैं–

"ब्राह्मण तो याती अंत्यज असंता। मानावा तत्त्वता निश्चयेसीं।।

रामकृष्ण नामें उच्चारी सरळें। आठवीं सांवळलें रूप मनीं।।

शांति क्षमा दया अलंकार अंगीं। अभंग प्रसंगीं धैर्यवंत।।

'तुका' म्हणे गेल्या षड्ऊर्मी अंगें। सांडुनियां मग ब्रह्मचि तो।।

अर्थात् चाहे कोई जाति से अंत्यज (शूद्र) हो, किन्तु यदि वह सरल, मधुर राम–कृष्ण नाम का उच्चारण करता है, मन में श्री विट्ठल के साँवले रूप का ध्यान करता है, शान्ति, क्षमा, दया आदि सद्गुण उसके स्वभाव में बस गए हैं तथा दुःख एवं संकट के समय भी उसका धैर्य अभंग बना रहता है तब तो उस शूद्र को भी ब्राह्मण ही मानना चाहिए। तुकाराम कहते हैं– जिसने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर इन छह विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है, उसकी जाति नीच अथवा अन्त्यज ही क्यों न हो, वह साक्षात् ब्रह्म के समान ही है। वही सच्चा ब्राह्मण है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

संताचीं उच्छिष्टें बोलतों उत्तरें। काय म्या गव्हारें जाणावें हें।।

विट्ठलाचे नाम घेतां शुद्ध। तेथें मज बोध काय कले।।

करितों कवतुक बोबडा उत्तरीं। क्षणी मजवरि कोप धरा।।

काय माझी याति नेणां हा विचार। काय मी तें फांर बोलों नेणें।।[1]

अर्थात् मैं जो बातें, अथवा विचार करता हूँ, वे संतों की, विद्वानों की जूठन हैं, अन्यथा मैं निपट, गँवार ज्ञान या उपदेश क्या जानूँ। मैं तो 'विट्ठल' शब्द का उच्चारण तक ठीक तरह नहीं कर सकता, फिर उसका ज्ञान, परिचय मैं कहाँ से पाऊँगा। मैं तो अपनी तुतलाती बोली में कुछ कहने का यत्न करता हूँ– हे भाइयों! मेरे इस कार्य के कारण कोई मुझ पर क्रोध मत करना। आप मेरी जाति का भी कोई विचार मत कीजिएगा, मैं क्या हूँ, मेरी जाति क्या है, इस बारे में अधिक क्या कहूँ। आप सब जानते हैं। तुकाराम का मत है– भाइयों! वास्तविक तथ्य यह है कि वह भगवान् ही मुझसे बुलवाता है और मैं बोलता हूँ, इसलिए उन वचनों का या अभंगों का अर्थ क्या है, इनमें कौन–सा गुह्य आशय छिपा है, इसे मैं क्या जानूँ? मुझसे बुलवाने वाला वह भगवान् ही जाने। तुकाराम की यह स्वीकारोक्ति उनकी ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था को व्यक्त करती है।

तुकाराम की मान्यता थी कि उन्होंने जो अभंग रचे उनकी रचना स्वयं ईश्वर न कराई है–

"करितों कवित्व म्हणाल हें कोणी,
नव्हे माझी वाणी पदरींची।
माझिए युक्तीचा नव्हे हा प्रकार,
मज विश्वंभर बोलवितो।
काय मी पामर जाणे अर्थ भेद,
वदवी गोविंद तेंचि वदें।।"[2]

अर्थात् यदि कोई कहे कि तुकाराम ने अभंग/कविता रची है तो यह गलत है। यह भक्ति वाणी मेरी नहीं बल्कि स्वयं ईश्वर की वाणी है। इसमें मेरा कोई कौशल नहीं। मुझसे तो ईश्वर कहलवाता रहा है। मैं भला अर्थ का क्या रहस्य जानूँ। ईश्वर जो कहलवाता है, मैं तो वही कहता हूँ।

तुकाराम को 'राम कृष्ण हरि' मंत्र जप का आदेश स्वप्न में चैतन्य नामक गुरु से मिला, किंवदंति प्रचलित है कि "अगले ही मास भगवान् विट्ठल स्वप्न में आए। उन्होंने कहा– 'तुकाराम! अब तुम्हें लोगों को समझाना होगा, उनका मार्गदर्शन करना होगा। देखो ये कैसे भटक रहे हैं, गड्ढ़े में गिर रहे हैं, आत्मनाश कर रहे हैं। क्या तुम इन्हें इसी घृणास्पद अवस्था में पड़े रहने दोगे? जिसे भी दृष्टि प्राप्त है

1 *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता*, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 327–328
2 *संत तुकाराम*, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ. 65–66

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह किसी अंधे को गड्ढे में न गिरने दे।' कुछ दिनों बाद भक्त नामदेव उनके स्वप्न में आए। नामदेव ने कहा– 'सर्वत्र भक्ति–मार्ग का प्रसार करने की मेरी इच्छा थी, उसी हेतु मैं शतकोटि अभंग लिखना चाहता था, किन्तु मेरी इच्छा वैसी ही रह गई अर्थात् अधूरी रह गई। मैं चाहता हूँ कि उस कार्य को तुम पूरा करो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ। अभंग लिखो, विपुल संख्या में लिखो, सामान्य जनों की समझ में आवे, उनके मन में ईश्वरभक्ति पैठे ऐसा लिखो।' 'संत तुकाराम जी ने कहा– 'महाराज! आपकी आज्ञा शिरोधार्य।' अब तुकाराम बड़े ही उत्साह के साथ अभंग लेखन के कार्य में लग गए। इस कार्य में उनका सहयोगी था उनका बचपन का मित्र जिसका नाम था– संताजी जगनाडे। कहने का अभिप्राय यह है कि उन्होंने चैतन्य और नामदेव के भक्ति चिंतन को आगे बढ़ाते हुए गाते हुए असंख्य अभंग रचे जिसमें उनके सहयोगी भी शामिल थे।

माया मोह के पाश–आसक्ति के बंधन जलभुन कर नष्ट हो गये। भक्तों की बड़ी कठिन परीक्षा होती है। इस विषय पर तुकाराम की उक्ति बड़ी प्रसिद्ध है–

''देव भक्तालागी करु नेदी संसार। अङ्गी वारावार करुनिया।।
भाग्य ध्यावे तरी अंगी भरे लावा। म्हणोनि करंटा करोनि ठेवी।।
स्त्री ध्यावी गुणवंती नाती गुंते आशा। या लागी कर्कशा पाठी लागी।
तुका म्हणे मज प्रचित आलो। देखा आणिक या लोका काय सांगो।।''[1]

अर्थात् भगवान भक्तों को अपनी गृहस्थी भी नहीं चलाने देता। अहंकारपूर्ण होकर सौभाग्यशाली बनने से श्रेष्ठ है निरहंकारी दरिद्र बनकर रहना। गुणवती स्त्री होने पर उसी में आसक्ति बढ़ जाती है, संभवतः इसीलिए मेरी स्त्री कर्कशा/झगड़ालू है। हे ईश्वर! मुझे इसका पूर्ण ज्ञान हो गया है और इन लोगों को मैं क्या कहूँ? कहने का भाव यह है कि जीवन के यथार्थ ने उन्हें पूरी तरह परमार्थी बना दिया।

संत तुकाराम की कबीर की भाँति स्पष्टवादिता के कारण मठाधीशी वर्ग– ब्राह्मण वर्ग तुकाराम के विरोध में उठ खड़ा हुआ। परंतु अपने आत्मबल और ईश्वर–विश्वास के बल पर ये हर विरोध का सामना करने में समर्थ हुए। संत तुकाराम ने अपने विचारों को भजन–कीर्तन विषयक अभंगों में व्यक्त किया। उनके मराठी अभंगों को सुविधा की दृष्टि से तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है– आत्मचरितपरक अभंग, अध्यात्मपरक अभंग और समाजपरक अभंग। उन्होंने लगभग साढ़े चार हजार अभंगों का सृजन किया। जिनका मुख्य कथ्य भक्ति है और साथ में ही जाति–पाँति त्याग, वर्णाभिमान का त्याग, गृहस्थ धर्म में संतोष, परद्रव्य और परकांता आदि से बचना, संत निंदा का त्याग, काम–क्रोध आदि का त्यागकर साधना में रत रहना। उन्होंने मानव जीवन के सभी अंगों पर उपदेश दिए। वर्णाश्रम धर्म के कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर गहराई से चिंतन–मनन किया जो उचित लगा उसे निर्भीकता से कह दिया।

[1] *हिंदी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन,* डॉ. नरहरि चिंतामणि जोगलेकर, पृ. 248

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संत तुकाराम की 'अभंगगाथा' एक अति जनप्रिय व लोकग्राही रचना है। साथ ही यह मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं सुबोध भी है। पूरे महाराष्ट्र में इसकी सर्वमान्यता के कारण इसे 'तुकोपनिषद्' तथा 'पंचम वेद' कहा जाता है। मात्र इकतालीस वर्ष की अल्पायु में संत तुकाराम इस संसार से चले गए। मानव के लिए उनका संदेश– 'जप जप रामकृष्ण हरि का जप करो। विट्ठल–विट्ठल, पांडुरंग पांडुरंग ही सबका सहारा'।

11.3.3 रचनाएँ

तुकाराम की वर्तमान में उपलब्ध अभंगगाथा में पाँच हजार से अधिक अभंग मिलते हैं। इसे मराठी भाषा का वेद कहा जाता है। समग्रतः तुकाराम ने अपनी अमृतोपम वाणी से स्वराज्य संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज से लेकर वैदिक ब्राह्मणों तक, सिद्ध, भक्त व दांभिकों को भी, वीरों और कायरों सहित जन को भी यथोचित उपदेश दिए हैं। उनकी भाषाशैली तो कुसुमवत् कोमल है, परंतु समय पड़ने पर यह कोमल वाणी सामान्य तलवार से भी अधिक तीक्ष्ण सिद्ध होती है। महाराष्ट्र के अन्य संतों की तरह तुकाराम ने भी मराठी सहित हिंदी में भी अपने काव्य की रचना की है। तुकाराम के काव्य का विभाजन विषय की दृष्टि से इस प्रकार किया जा सकता है– गोपी–प्रेम, पाखंड–उद्घाटन, नीति और भक्ति के उपदेश। उनके समस्त पदों में भी सहज स्वाभाविक भक्ति सहित आध्यात्मिक और नैतिक विचार भरे पड़े हैं। यहाँ संत बहिणाभाई की यह उक्ति एकदम सार्थक प्रतीत होता है कि संत तुकराम का काव्य संत साहित्य के मंदिर के स्वर्ण कलश के समान है।

11.3.4 भक्ति एवं जीवन संदेश

कुनबी नाम की निम्न जाति में जन्मनें के लाभों का तुकराम जी ने विस्तार से इस प्रकार वर्णन किया है–

"शूद्रवंशी जन्मलों। म्हणोनि दंभें मोकलिलों।।
अरे तूंचि माझा आतां। मायबाप पंढरीनाथा।।
घोकाया अक्षर। मज नाहीं अधिकार।।
सर्वभावों दीन। 'तुका' म्हणे यातिहीन।।[1]

अर्थात् हे ईश्वर! मैं शूद्रवंश में उत्पन्न हुआ हूँ– यह बहुत अच्छा हुआ, अन्यथा यदि मैं किसी उच्च जाति में जन्म लेता तो जाति उच्चता के गर्व में मैं अकड़ता फिरता। भला हुआ जो मैं उस गर्व से बच गया। हे मेरे माई–बाप, पंढ़रीनाथ! शूद्र वंश में जन्म पाने का एक और लाभ यह है कि मैं तुझे माँ–बाप मानता हूँ और संसार में मैं केवल तेरा ही हूँ। अक्षर पठन यानी पोथी तथा वेद आदि शास्त्र अध्ययन का मुझे अधिकार नहीं, यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ, अन्यथा मैं अपने पांडित्य के घमंड में इतराता रहता। तुकाराम कहते हैं कि–अब मैं हीन जाति का एक दीन–हीन जन बनकर सर्वभावेन

[1] *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,* कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 324

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

तेरी शरण में आ सका हूँ, क्योंकि मैं जाति तथा ज्ञान के अहंकार से दूर रहा तथा दूर ही रहूँगा। तुकाराम की सहज स्वाभाविक सरल आचरण प्रवृत्ति को देख–परख कर इनकी शिष्या संत बहिणाबाई ने इनके विषय में वर्णन किया है–

'संतकृपा झाली। इमारत फळा आली।
ज्ञानदेवें रचिला पाया। उभारिलें देवालया।
नामा तयाचा किंकर। तेणें रचिलें ते आवार।
जनार्दन एकनाथ। खांब दिला भागवत।।
'तुका' झालासे कळस। भजन करा सावकाश।।'[1]

अर्थात्– संतों की कृपा से वारकरी संप्रदाय का यह मंदिर खड़ा हुआ है, जिसकी नींव संत ज्ञानेश्वर ने डाली है। नामदेव ने पत्थर बनकर उस संप्रदाय की नींव को और अधिक मजबूती प्रदान की है। जनार्दन के शिष्य एकनाथ ने 'भागवत' रूपी स्तम्भ को आधार प्रदान किया है। तुकाराम ने इस मन्दिर का कलश बनकर इस सम्प्रदाय को पूर्णता प्रदान की है। अब आप सुखपूर्वक भजन कीजिए। 'तुकाराम चरित्र' के लेखक पु. म. लाड ने तुकाराम की भक्ति की पृष्ठभूमि की ओर इंगित करते हुए लिखा है– "तुकाराम किसी ऊसर एवं बंजर जमीन में खाद देकर उत्पन्न किए गये अनाज की तरह नहीं उत्पन्न हुए, वरन् अनेक अनेक पीढ़ियों से ऊपजाऊ जमीन में बोये गये हरि भक्ति के पुण्य बीज से अंकुरित सरस, मधुर, वृक्ष के रसीले पक्के फल की तरह उत्पन्न हुए।"[2] वस्तुतः आषाढ़ माह की एकादशी के दिन पंढरपुर तथा आलंदी में भक्तों का विशाल समागम होता है। इस समय इन लोगों के भजन–कीर्तन का प्रमुख स्वर 'ज्ञानबा–तुकाराम' अर्थात् संत ज्ञानेश्वर (ज्ञानबा) और संत तुकाराम को (विट्ठल) के रूप में स्मरण किया जाता है। यही कारण है कि वारकरी संप्रदाय में संत तुकाराम को संत शिरोमणि कहा जाता है।

तुकाराम ने जब देखा कि समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को मंदिर प्रवेश की मनाही है तो उन्होंने भगवान् के नाम जप के माध्यम से उन्हें हिंदू समाज से जोड़े रखा। ईश्वर के नाम का जप सभी को पवित्र करता है। वे कहते हैं–

"हो कां दुराचारी। वाचे नाम जो उच्चारी।।
त्याचा दासं मी अंकित। कायावाचमनें सहित।।
नसो भाव चित्तीं। हरिचे गुण गातां गीतीं।।
करी अनाचार। वाचे हरिनाम उच्चार।।

1 *वही,* पृ. 324
2 *हिंदी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन,* डॉ. नरहरि चिंतामणि जोगलेकर, पृ. 247

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

हो कां भलते कुल। शुचि अथवा चांडाल।।
म्हणवी हरिचा दास। 'तुका' म्हणे धन्य त्यास।।"[1]

अर्थात् चाहे कोई दुराचारी हो, तथापि यदि वह भगवान के नाम का उच्चारण करता है तो मैं तन, मन और वचन सहित उसका दास होने के लिए तत्पर हूँ। चाहे किसी के हृदय में भाव–भावना ना हो, किन्तु यदि वह हरि के गुण गाता है। तो वह मनुष्य भी प्रशंसा के योग्य है। जो अनाचार करता है, तथापि वाणी में हरिनाम का जप करता है, वह चाहे किसी भी कुल का हो कुलीन हो, अकुलीन हो; पवित्र हो अथवा चांडाल हो, परंतु यदि वह व्यक्ति अपने को हरि का दास कहलाता है। तुकाराम कहते हैं– वह व्यक्ति भी धन्य है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि तुकाराम जन्म को नहीं अपितु कर्म को महत्त्व देते हैं। वे बार–बार कहते हैं कि सच्ची भक्ति का आशय है– ईश्वर से मिलन। सभी संतों ने मानव जीवन को तभी सार्थक माना है जब उसका मिलन ईश्वर से हो जाए। वास्तव में यही वह अनमोल अवसर है जब सत् गुरु की शरण में आकर, उनके मार्ग–दर्शन में ईश्वर भजन का अभ्यास करके ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। इस नश्वर जीवन और जगत् के पीछे एकमात्र ईश्वर की ही सत्ता नित्य है। इस आशय को तुकाराम दूध, दही, मक्खन और घी के उदाहरण से समझाते हुए कहते हैं–

पय दधि घृत आणि नवनीत।
तैसे दृश्यजात कएपणें।।
कनकाचे पाहीं अलंकार केले।
कनकत्वा आले एकपणें।।
मृत्तिकेचे घट माले नानापरी।
मृत्तिका अवधारी एकपणें।।
तुका म्हणे एक एक ते अनेक।
अनेकत्वी एक एकपणा।।'[2]

जिस प्रकार दही, घी और मक्खन सब वास्तव में दूध ही हैं, उसी तरह दिखाई देने वाले सभी पदार्थ वास्तव में एक ही हैं। सोने के गहने देखने में भिन्न–भिन्न रूप और आकार के होते हैं, पर होते सब सोना ही है। मिट्टी से नाना प्रकार के घड़े बनते हैं, पर मिट्टी सबमें एक ही होती है। तुकाराम कहते हैं कि वह प्रभु एक ही है। वह एक से अनेक हो गया है, लेकिन अनेकता लिए हुए भी वह एक ही है।

1 *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,* कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 326–327
2 *संत तुकाराम,* हरिकृष्ण देवसरे, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ. 40–41

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तुकाराम ने अनेक अभंगों में गुरु महात्म्य का वर्णन किया है। तुकाराम गाय और बछड़े के संबंध का वर्णन गुरु और शिष्य से स्थापित करते हुए कहते हैं– जैसे गाय अपने बछड़े को प्यार करती है– रक्षा करती है उसी प्रकार गुरु अपने शिष्यों की रक्षा करता है, ऐसे संत गुरु के उपकार को शब्दों में किसी भी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता–"काय सांगों आतां संताचे उपकार। मज निरंतर जागविती।" सच्चे सद्गुरु की कृपा से ही व्यक्ति ईश्वर के दर्शन कर पाता है। इसीलिए तुकाराम अपने गुरु से निवेदन करते हैं कि– आप मुझे इसी कृपा का दान दीजिए– आप ईश्वर को मेरा स्मरण करवाकर उनसे मेरी दयनीय स्थिति का आर्तभाव से वर्णन कीजिए। "मैं अनाथ, अपराधी पतिता आगला, परि पायांवेगला तका करुँ" अर्थात् ''अनाथ, अपराधी और घोर पापी हूँ। मैं ही सबसे अधिक पतित हूँ। हे गुरु महाराज फिर भी आप ईश्वर से कहिए कि वे मुझे अपने चरणों से अलग न करें''।

तुकाराम का अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा थी और वे गुरु को ही ईश्वर–प्राप्ति में उत्तरदायी मानते थे। कहा जाता है कि प्रभु भजन गाते गाते वे अंतर्धान हो गए थे। तुकाराम ने अपने एक अभंग में मृत्यु से साक्षात्कार होने की घटना का बड़ा ही शिक्षाप्रद वर्णन किया है–

"आपुलें मरण पाहिले म्यां डोला,
तो जाला सोहला अनुपम्य।
आनंदे दाटली तिन्हीं त्रिभुवने,
सर्वात्मकपणें भोग जाला।।
एक देशी होतो अहंकारे आथिला
त्याच्या त्यागें जाला सुकाल हां।
फिटलें सुतक जन्ममरणाचें
मी माइया संकोचे दुरी जालों।
नारायणें दिला वसतीस ठाव।
ठेवूनियां भाव ठेलों पाईं।।
तुका म्हणे दिल उमटूनि जगी।।
घेलले ते अंगी लावूनियाँ।"[1]

अर्थात् मैंने अपना मरण स्वयं अपनी आँखों से देखा। यह आनंद का अनुपम अवसर था। यह आनंद तीनों लोकों में छा गया क्योंकि मुझे ईश्वर के सर्वव्यापी होने का सहज अनुभव हो गया। जब तक मैं सशरीर था मुझमें अभिमान था। उस अभिमान को त्यागने से मुझे असीम आनंद की अनुभूति हुई। जन्म–मरण की बाधा समाप्त हो गई और 'मैं–मेरी' की संकीर्णता दूर हो गई। ईश्वर ने मुझे अपने

1 *वही*, पृ. 79–80

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

घर में बसा लिया। यानी ईश्वर के स्वरूप में मुझे सदा के लिए विश्राम मिल गया। अब मैं प्रेमपूर्वक तथा आनंदपूर्वक उनके चरणों का ध्यान कर रहा हूँ।

तुकाराम ने अपने समय में महाराष्ट्र में भगवत धर्म एवं आध्यात्मिक जागृति का नेतृत्व किया। उन्होंने परमात्मा की भक्ति के लिए सबका आह्वान किया और समाज के लोगों के बीच में विद्यमान ऊँच–नीच के विचार मिटाकर, मंदिर के एक ही प्रांगण में, एक ही प्रतिमा के सामने, भगवान का कीर्तन करने का अधिकार दिया। उनका कहना था कि भगवत्भक्ति का मूल आधार भगवान के नाम का संकीर्तन है इसलिए सब लोग कीर्तन करो। तुकाराम ने कहा कि केवल प्रभु के नाम में ही माया–जाल को तोड़ने और जन्म–मरण के चक्र को समाप्त करने की शक्ति है। इसलिए नाम स्मरण को परमात्मा के पास पहुँचने की सीढ़ी कहते हैं। इस कलियुग में तो नाम के सिवाय अन्य कोई साधन हो ही नहीं सकता। वह कहते हैं–

तुटे माया जाल विघडे भवसिंधू।
जरि लागे छंदु हरिनामें।
वेर कर्म धर्म करितां ये कली।
माजी तरला बली कोण सांगा।।
न पढ़वे वेद नव्हे शास्त्रबोध।
नामाचे प्रबंध पाठ करा।।
न साधवे योग न करवे वैराग्य।
साधा भक्ति भाग्य सतसंगे।
नव्हे अनुष्ठान न कले ब्रह्म ज्ञान।
करावी सोपान कृष्ण कथा।
तुका म्हणे वर्म दावियेलें संती।
या परती विश्रांति आणिक नाहीं।।[1]

11.3.5 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर केवल एक शब्द या वाक्य में दीजिए–
   (क) तुकाराम का जन्म कब और कहाँ हुआ?
   (ख) तुकाराम की कितनी पत्नी थीं?
2. विवेचनात्मक प्रश्न।
   (क) तुकाराम की भक्ति भावना स्पष्ट कीजिए?
   (ख) संत परंपरा में तुकाराम का स्थान निर्धारित कीजिए।

[1] *वही*, पृ. 74–75

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

11.4 चैतन्य महाप्रभु

11.4.1 जीवन–परिचय

बंगाल के वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु (ई.सन् 1485–1533) का जन्म बंगाल के नदिया या नवद्वीप नामक स्थान पर हुआ और सन् 1533 ई. में जगन्नाथपुरी में इनका पार्थिव शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र एवं माता का नाम शची देवी था। इनका परिवार में असली नाम 'विश्वभंर' था। घरवाले इन्हें प्यार से 'निमाई' एवं 'गौरांग' या 'गौरा' के नाम से भी पुकारते थे। छोटी आयु में इन्होंने अच्छी शिक्षा पाई, इसीलिए अल्पायु में ही इनकी गणना नवद्वीप के संस्कृत के विद्वानों में की जाने लगी। पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् चैतन्य का दूसरा विवाह विष्णुप्रिया नाम की युवती से हुआ। बचपन से ही कृष्णभक्ति का भाव इनके मन में बीज रूप में विद्यमान था।

पिता के देहावसान के पश्चात् जब ये पिंडदान हेतु 'गया' गये तो आध्यात्मिकता के वशीभूत इन्होंने ईश्वरपुरी महाराज से दीक्षा ले ली।[1] 'गया' दौरा इनके जीवन में एक नया मोड़ देने वाला साबित हुआ। गया में उनका आध्यात्मिक पुनर्जन्म हुआ। फिर इन्होंने नवद्वीप लौटकर कृष्ण–भक्ति का प्रचार–प्रसार किया। यहाँ तक कि जब ये अपने छात्रों को पढ़ाते तो सूत्र, वृत्ति, टीका आदि सभी में हरि नाम ही सिद्ध करने लगते। नित्यानंद एवं हरिदास जैसे भक्तों ने इनके कृष्ण संकीर्तन के प्रचार–प्रसार में सहायता की। कभी–कभी वे 'कृष्ण! कृष्ण!' पुकारने लगते, फिर अश्रुधार बहाते और मूर्छित हो जाते। फलस्वरूप इनके शिष्य शिकायत करने लगे। आखिर! कब तक वे व्याकरण और अलंकार आदि को छोड़कर कृष्ण पर ही उपदेश सुनते? परिणाम यह हुआ कि इन्हें अपनी पाठशाला को बंद करना पड़ा। विश्वभंर यानी चैतन्य महाप्रभु के भक्ति में भाव–विभोर होने के इस व्यवहार को वैष्णव समुदाय ने समझा और चैतन्य के नेतृत्व में यह नवीन धार्मिक पंथ अधिकाधिक जनता को अपनी ओर आकर्षित करने लगा। परिणामस्वरूप शीघ्र ही भक्तों की संकीर्तन सभाएँ नवद्वीप की सड़कों पर सामूहिक कीर्तन मंडलियों के रूप में दिखाई देने लगी। धीरे–धीरे मठाधीशी वर्ग और शासन सत्ता को यह नवीन वैष्णव भक्ति खटकने लगी। उन दिनों बंगाल में (तत्कालीन नाम गौड) इस्लामी शासक सुल्तान सैय्यद वंश का हुसैन शाह था। इसलिए चैतन्य को अनेक कठिनाइयों का सामना अपनी भक्ति के कारण करना पड़ा। इसीलिए ये अपना जन्म–स्थान बंगाल छोड़कर उड़ीसा के हिंदू राजा के शासन में चले गए।

चैतन्य महाप्रभु की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में दिलीप कुमार मुखर्जी (अनुवादक कमलेश) ने उल्लेख किया है कि "जहानाबाद अभिलेखों में हुसैन शाह को– 'जिसके राज्य में इस्लाम फल–फूल रहा है', कहकर संबोधित किया गया है। किसी अन्य सुल्तान की अपेक्षा उसके शासन–काल में बंगाल में सर्वाधिक मस्जिदों का निर्माण हुआ। हुसैन शाह के शासन–काल में बंगाल की प्रजा की दशा का वर्णन करते हुए उस समय आये पुर्तगाली यात्री बरबोसा ने लिखा है– "बंगाल के राजा के अधीन बहुत बड़े

[1] चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, डॉ. नरेशचंद्र बंसल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा सं. 1980, पृ. 26

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इलाके में 'हीदेन' (अर्थात् मूर्ति पूजक हिंदू) रहते थे। उनमें से अनेकों लोग राजा और हुक्मरानों का संरक्षण पाने के लिए रोज मुसलमान बन रहे थे।"[1]

11.4.2 भक्ति एवं विचार

चैतन्य महाप्रभु ने चौबीस वर्ष की अवस्था में (1510 ई. में) गृह–त्याग कर केशव भारती से संन्यास धर्म ग्रहण किया। इनके दीक्षा गुरु ने इनका नाम बदल कर कृष्ण चैतन्य रखा। क्योंकि उस समय के नवद्वीप में रूढ़िवादी और अभिमानी लोगों के नेतृत्व में समाज का एक प्रभावशाली वर्ग चैतन्य द्वारा प्रवर्तित नव वैष्णव मत का पुरजोर विरोध कर रहा था। चैतन्य ने उनका हृदय परिवर्तन कर उन्हें सार्वभौम प्रेम तथा मानवीयता के अपने मत में लाना चाहते थे। चैतन्य चरितामृत के अनुसार उन्होंने सांसारिक जीवन से सारे संबंध तोड़कर अपने मत को न मानने वालों को विजित करने के लिए संन्यास दीक्षा लेने का निश्चय किया। इस विवरण के अनुसार उन्होंने कहा– मुझे इन मनुष्यों के त्राण के लिए संन्यास जीवन ग्रहण करना है। मुझे संन्यास रूप में देखकर वे मुझे नमस्कार करेंगे और नमस्कार करने से उनके पाप नष्ट हो जायेंगे और उसके हृदय में भक्ति का उदय होगा...। इनकी भक्ति का पथ त्याग और वैराग्य का हठयोगी मार्ग नहीं था, अपितु उनकी भक्ति–भावना के आधार बिन्दु थे– प्रेम, ममता और भावुकता।"[2]

छह वर्षों तक इन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष का तीर्थाटन किया। परिणामस्वरूप विभिन्न भाषा–भाषियों से संवाद कर आध्यात्मिक भावों व विचारों के आदान–प्रदान में ये समर्थ हुए। इनके जीवन के अंतिम अट्ठारह वर्ष जगन्नाथपुरी में व्यतीत हुए। अड़तालीस वर्ष की अवस्था में ये ब्रह्मलीन हुए। कहते हैं कि ये जगन्नाथ जी की प्रतिमा में ही समाहित हो गए थे।

इनकी प्रेरणा से संपूर्ण बंगाल, उड़ीसा और बहुत हद तक असम में प्रेम भक्ति रूपी नई वैष्णव साधना की एक बाढ़ सी आ गई। यद्यपि इन्होंने किसी संप्रदाय की स्थापना नहीं की लेकिन फिर भी जो भी इनके संपर्क में आया वह इनके प्रवाह में बह गया। फलस्वरूप इनके चारों ओर संप्रदाय जैसी गरिमा इकट्ठी हो गई और अनजाने ही चैतन्य मत विकसित हो गया। पंद्रहवीं शताब्दी में जब संत कबीर, भक्त रैदास ने निर्गुण भक्ति की तथा गोस्वामी तुलसी के 'रामचरितमानस' ने सगुण भक्ति की धूम मचायी तभी श्री गुरु नानकदेव (ई.1469–1538) ने पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र में भक्ति–आन्दोलन तथा सामाजिक समरसता की अलख जागृत हुई थी, उसी समय पूर्व तथा दक्षिण पूर्व में एक अत्यंत तेजस्वी भगवद्भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु हरिस्मरण का आन्दोलन चला रहे थे।

11.4.3 जीवन संदेश

श्री चैतन्य महाप्रभु सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा मानते थे। वे जातिगत भेदभाव को न मान कर सभी को 'बोल हरि, बोलहरि' कहते थे। वे कहते हैं–

---

1 चैतन्य, दिलीप कुमार मुखर्जी, अनु. कमलेश, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली, पृ. 10

2 हिंदी साहित्य का इतिहास, विजयेन्द्र स्नातक, साहित्य अकादमी, सं. 2004, पृ. 95

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

"नीच जाति नहिं कृष्ण भजने अयोग्य,
सत्कुल विप्र नहिं भजनेर योग्य।
जेई भजे सेइ बड़ो अभक्त हीन छार,
कृष्ण भजने नहिं जाति कुल विचार।।"[1]

अर्थात् निम्न या छोटी कही जाने वाली जाति के लोग कृष्ण भजन के लिए अयोग्य नहीं हैं। अच्छे कुल का ब्राह्मण होने से ही वह कृष्ण भजन के लिए योग्य नहीं हो जाता। जो कृष्ण भजन करता है वही बड़ा है, अभक्त ही तुच्छ है, निम्न है। कृष्ण के भजन में जाति, कुल, गोत्र आदि का कोई महत्त्व या विचार नहीं है।

चैतन्य महाप्रभु के सामाजिक समन्वय एवं सामाजिक समरसता की दृष्टि से इनके शिष्यों में से अनेक शिष्य निम्न या छोटी कही जाने वाली जातियों एवं मुसलमानों में से थे। इस विषय में के. दामोदरन ने उल्लेख किया है कि– "चैतन्य ने घोषणा की कि हरेक को ईश्वर की आराधना करने का अधिकार है।"[2] यदि कोई कहता है कि मैं तो हीनजन्मा हूँ, आपके स्पर्श के योग्य नहीं हूँ तो चैतन्य महाप्रभु हँसकर कहते हैं– श्री कृष्ण और उनके भक्त हर जाति, हर रूप में मिलते हैं। वे किसी भी प्रकार से अस्पृश्य नहीं हो सकते। उन्हें स्पर्श करने में भला कौन धर्मशास्त्र दोष निकाल सकता है? वैसे भी भगवान नीचों या अछूतों के प्रति अधिक कृपालु होते हैं। कुलीनों और पंडितों को अपने कुल, विद्या आदि का अभिमान होता है। श्रीकृष्ण तो उसे मिलते हैं जो सहनशील होकर, निरभिमानी होकर दूसरों को मान देते हैं और श्रीकृष्ण का भजन करते हैं।[3]

चैतन्य महाप्रभु ने अत्याचारी धर्मांध मुस्लिम शासकों के विधर्मी एवं कठोर नियंत्रण को अनदेखा कर भारतीय समाज का संगठन भक्ति के माध्यम से किया। नवद्वीप में मुस्लिम काजी ने जब घोषणा की कि 'आज से कोई भी उच्च स्वर में कीर्तन नहीं करेगा। यदि कोई कीर्तन करते मिला तो उसका सर्वस्व तथा उसकी जाति भी छीन ली जाएगी।' काजी के इस आदेश से भक्तों का आतंकित होना स्वाभाविक था। परंतु चैतन्य ने कहा कि 'आज नगर में कीर्तन का अच्छा प्रबंध होना चाहिए।' कहते हैं कि संध्या होते ही घी के अनेकानेक मशाल जल उठे और एक साथ सैंकड़ों ढोल–करताल तथा मंजीरे आदि बजने लगे। असंख्य भक्त चैतन्य स्वामी को घेर कर कीर्तन करने लगे। लोग भी सुधबुध खोकर कीर्तन में शामिल हो गये।... असंख्य लोगों द्वारा तीव्र भजन–कीर्तन एवं जयघोष से धरती–आकाश गूँज उठा। और इन सबसे कट्टर काजी का हृदय भी काँप उठा। इस स्थिति में काजी डर गया। काजी के घर के बाहर पहुँचकर निमाई ने कीर्तन बन्द कर दिया। काजी ने द्वार पर आकर निमाई का स्वागत किया। काजी निमाई का परम अनुरागी हो गया। बाद में काजी के प्रयासों से नवद्वीप में गो–हत्या पर रोक लग गयी। अब भी नवद्वीप में निमाई की समाधि विद्यमान है।

---

1 भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 360–361
2 भारतीय चिंतन परंपरा, के. दामेदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. नई दिल्ली, पृ. 320
3 भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता, कृष्ण गोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 61

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री चैतन्य महाप्रभु के विश्व बन्धुत्व तथा कृष्ण–भक्ति से प्रेरित होकर बंगाल, बिहार आदि क्षेत्र के ढाई हजार से भी अधिक मुसलमान पुनः हिन्दू हो गए। इनमें शेरखान, डबरी खान तथा मलिक आदि ख्याति प्राप्त साहित्यिक प्रवृत्ति लोग भी शामिल थे। वे सभी नव हिन्दू वैष्णव सम्प्रदाय में शामिल हुए। शुद्धि के प्रयासों को लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु की वंदना करते हुए एक स्त्रोत में उनके भक्त कहते हैं–

'वंदे स्वैराहुतेहं त चैतन्य यत्प्रसादात।
यवना समुनायन्ते कृष्णनाम प्रजल्पकाः।।'

अर्थात् जिसके प्रसाद स्वरूप कृष्ण नाम को जपने वाले यवन भी पुष्प की तरह सुगन्धित हो गए उन महाप्रभु चैतन्य की मैं वन्दना करता हूँ।

समग्रतः भारतीय समाज में घोर निराशा एवं अंधकार के वातावरण में श्री चैतन्य महाप्रभु एक प्रेरणा, एक जीवन–शक्ति के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने लोक की पीड़ा को जान–समझकर उसके निराकरण के लिए 'हरि भक्ति' का सहारा लिया। उनका 'हरि' प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है। उनके कीर्तन की स्वर लहरी ने एक जन–आंदोलन का रूप धारण कर लिया। मुस्लिम शासकों के समक्ष जहाँ किसी के भी मुँह से एक शब्द नहीं निकलता था, वहाँ 'हरि बोल–हरि बोल' के स्वर से गाँव–गली गूँज उठीं। लोगों में यह आत्मविश्वास पनपा कि हमारे अंदर भी शक्ति है, ईश्वर हमारे साथ हैं। झाँझ, मंजीरे, मृदंग एवं घुँघरु के हृदयस्पर्शी स्वर से दिग्दिगंत गूँज उठा। हिन्दू समाज की सुसुप्त पड़ी और लुप्त हो रही चेतना एक बार पुनः लौटने लगी। समाज नवचैतन्य शक्ति के साथ उठ खड़ा हुआ। इसी का प्रबल कारण एवं उदाहरण है– पुरी की जगन्नाथ रथ यात्रा। इस यात्रा के माध्यम से चैतन्य महाप्रभु ने भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक पटल पर एक नया अध्याय जोड़ दिया।

"महाप्रभु चैतन्य के समय भगवान श्री कृष्ण, बलराम तथा उनकी भगिनी सुभद्रा की रथयात्रा जगन्नाथ जी के मन्दिर के सिंहद्वार से प्रारम्भ होती थी। राजा प्रताप रुद्रदेव लाखों भक्तों के साथ स्वयं उपस्थित रहते थे। भगवान् के विग्रहों को भक्त शूद्रगण अनन्य भक्तिभाव से गर्भगृह से लाकर रथों में स्थापित करते हैं, वे ही प्रभु को नैवे| अर्पित करते हैं। शूद्र भक्तगणों द्वारा प्रभु को रथ पर बैठाने के साथ ही महाप्रभु चैतन्य अपनी भक्तमण्डली के साथ भगवान की अर्चना प्रारम्भ करते हुए निवेदन करते हैं–

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो नवस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे–
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

अर्थात् न तो मैं ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय, न मैं वैश्य हूँ या शूद्र; न मैं ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ; न मैं वानप्रस्थी हूँ और न मैं संन्यासी हूँ। मैं तो स्वतः प्रकाशमान अखिल परमानन्द से परिपूर्ण अमृत–सागर–रूप गोपी–वल्लभ भगवान श्रीकृष्ण के दोनों पद पंकजों के दासों के दासों का अनुदास

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE COL SOL, University of Delhi

हूँ। महाप्रभु चैतन्य यहाँ जब स्वयं को 'दासानुदासः' कहते हैं तो यह विनय पद समाप्त होते ही लाखों कण्ठों से 'हरि–बोल', 'हरि बोल' की स्वरलहरी आकाश में गूँज उठती है। झाँझ, मृदंग, ढोल, खरताल के मधुर स्वरों के साथ–साथ 'हरे राम–हरे कृष्ण' का संकीर्तन प्रारम्भ होता है और जगन्नाथजी का रथ आगे बढ़ता है। यहाँ जाति, वर्ण, भाषा, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा आदि मानवीय भेद स्वतः धराशायी होकर जगन्नाथजी की जयजयकार ही सभी के हृदय, कंठ और वाणी पर विराजमान हो जाती है। यहाँ किसी प्रकार के शास्त्र अनुमोदित मन्त्र की गोपनीयता या कर्मकांडों का जंजाल दिखाई नहीं देता। कोई भी कार्य छोटा नहीं है। स्वयं महाप्रभु चैतन्य झाड़ू लेकर भक्तों के साथ मन्दिर के प्रांगण की सफाई के कार्य में जुट जाते थे। वे सभी जाति, वर्णों के भक्तों के साथ एक ही पंगत में बैठकर भोजन करते थे।

जगन्नाथजी की इस रथयात्रा को चैतन्य महाप्रभु मंदिर के परिसर से बाहर निकालकर सड़क पर ले आए। यहाँ सड़क पर जगन्नाथ समस्त जनता को सुलभ थे। शास्त्रों और ग्रंथों में छिपे मंत्रों को संकीर्तन के द्वारा चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों (ऊँच–नीच, ब्राह्मण–शूद्र, स्त्री–पुरुष) की जिह्वा पर ला रखा।

चैतन्य महाप्रभु द्वारा शुरू किए गए संकीर्तन का समस्त भक्ति आंदोलन या यह कहिए कि भारत पर गहरा असर पड़ा। उन्हीं की कृपा से आज का वृंदावन भक्ति का प्रमुख केंद्र बना। वे राम और कृष्ण में भेद नहीं मानते थे, वे दोनों के उपासक थे। ढोल, मंजीरें, मृदंग की स्वर लहरी के साथ– "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण–कृष्ण हरे–हरे। हरे राम, हरे राम, राम–राम, हरे–हरे" महामंत्र उन्हीं की देन है। "चैतन्यदेव की उपासना पद्धति, उनकी जीवन चर्या, उनकी विशाल शिष्य परंपरा का आज भी बंगीय संस्कृति तथा साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण धर्म के अनुशासन युग में परंपरागत वर्ण और जाति के मिथ्याभिमान का महाप्रभु चैतन्य ने परित्याग कर गुण गत विचार की मर्यादा–प्रतिष्ठा के लिए तत्कालीन समाज में क्रांति पैदा की। उन्होंने स्वयं निर्भयता के साथ दैव वर्णाश्रम की मर्यादा के विरुद्ध उच्च कंठ से बार–बार प्रचार किया। उनकी विचारधारा के अनुसार समस्त जाति और वर्ण के लोग हरि–भजन के समानाधिकारी थे। मनुष्य से मनुष्य के विभेद को दूर कर वे सभी को एक मानव जाति के परिनिष्ठित वैष्णव रूप में परिणत करने के महत्त्वाकांक्षी थे। भक्ति–प्रचार की भी भावना से उद्वेलित होकर वे संसार का त्याग कर संन्यासी होना आवश्यक समझते थे। वे प्रायः निज–गृह को त्याग कर वैष्णवों के गृहों में निवास करते। कभी–कभी वे व्यवहार की बातें करते। वस्तुतः वे श्रीकृष्ण में पूर्णतः अनुरक्त हो गए थे। इससे समाज में मानवीयता एवं मानव–मूल्यों की स्थापना में बड़ा सहयोग मिला। उनका संदेश आज भी मानवता का पथ प्रशस्त कर रहा है।

11.4.4 बोध प्रश्न

1. संत चैतन्य के मानवतावादी संदेश को स्पष्ट कीजिए।

---

1 भारतीय साहित्य की पहचान, सं. डॉ. सियाराम तिवारी, वाणी प्रकाशन, सं.–2015, पृ. 398

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2. बंगाल की संत परंपरा में संत चैतन्य का वैशिष्ट्य रेखांकित कीजिए।
3. चैतन्य का काव्य पाखंड विरोध और भक्ति से ओत–प्रोत है'– स्पष्ट करें।
4. संत तुकाराम के मानवतावादी जीवन संदेश को स्पष्ट कीजिए।

11.5 संदर्भ–ग्रंथ

1. *हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन,* डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर
2. *भारतीय संत परंपरा,* बलदेव वंशी
3. *हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता,* डॉ. शं.के. आडकर
4. *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,* कृष्ण गोपाल
5. *संत तुकाराम,* डॉ. हरिकृष्ण देवसरे
6. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* विजयेन्द्र स्नातक
7. *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता,* कृष्ण गोपाल
8. *भारतीय चिंतन परंपरा,* के. दामेदरन
9. *भारतीय साहित्य की पहचान,* सं. डॉ. सियाराम तिवारी
10. *चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य,* डॉ. नरेशचंद्र बंसल
11. *चैतन्य, दिलीप कुमार मुखर्जी,* अनु. कमलेश

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

12. चंडीदास, नरसी मेहता

डॉ. दीनदयाल
असिस्टेंट प्रोफेसर
कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज
दिल्ली विश्वविद्यालय

रूपरेखा

12.0 अधिगम का उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 भारतीय साहित्य की अवधारणा
12.3 भारत के प्रमुख भक्त : चंडीदास (बंगाल के भक्त-कवि)
12.3.1 चंडीदास का जीवन
12.3.2 चंडीदास की रचनाएँ
12.3.3 चंडीदास की भक्ति
12.3.4 चंडीदास की भाषा
12.3.5 बोध प्रश्न
12.4 भारत के प्रमुख भक्त : नरसिंह मेहता (गुजरात के भक्त-कवि)
12.4.1 नरसिंह मेहता का जीवन
12.4.2 नरसिंह मेहता की रचनाएं
12.4.3 नरसिंह मेहता की भक्ति
12.4.4 नरसिंह मेहता की भाषा
12.4.5 बोध प्रश्न
12.5 निष्कर्ष
12.6 अभ्यास प्रश्न
12.7 संदर्भ ग्रंथ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

12.1 अधिगम का उद्देश्य

यह इकाई भारत के कुछ प्रमुख भक्त एवं उनके विचारों पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी :

- उपेक्षित भक्तों के विराट चिंतन, राष्ट्रीय दृष्टि से परिचित होंगे।
- बंगाल और गुजरात के भक्तों के काव्य द्वारा भारतीय संस्कृति के अंत:सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- वैष्णव भक्ति के अखिल भारतीय विविध रूपों से परिचित होंगे ।
- भारतीय भक्तों (चंडीदास और नरसी मेहता) के अखिल भारतीय रूप को समझ सकेंगे।
- हिन्दी भाषी क्षेत्रों से अलग भक्तों के काव्य द्वारा उनकी दृष्टि और विचार को जानने का अवसर मिलेगा।
- भक्तों की भाषायी विविधता का परिचय मिलेगा।

> डॉ. नगेंद्र ने ठीक कहा है कि जिस प्रकार अनेक धर्म, विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता और अखंडता संदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज संभव है| भारतीय साहित्य का प्रचार और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिक एकता और भी रमणीय है।

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में पूर्व-मध्यकाल को भक्तिकाल के रूप में जाना जाता है। यह काल साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है, जिसे 'स्वर्णयुग' की संज्ञा भी दी गई है। भक्तिकाल एक आंदोलन के रूप में उभरकर आया। दक्षिण से उत्तर भारत में चाहे भक्ति को लाने का श्रेय रामानंद को है लेकिन उत्तर भारत में भक्ति को फैलाने का काम कबीर आदि संतों ने किया। दक्षिण से प्रेरणा ग्रहण कर यह आंदोलन न केवल हिंदी प्रदेश में अपितु सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, असम और उड़ीसा तक फैल गया। संपूर्ण भारत में भक्त कवियों की बाढ़-सी आ गई। समाज के हर वर्ग में इस नई जागरण की गूँज उठी। निम्न जाति के लोगों और स्त्रियों ने भी इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इस आंदोलन ने जनसाधारण को जितना प्रभावित किया, उतना किसी अन्य पूर्ववर्ती आंदोलन ने नहीं किया। इतने व्यापक स्तर पर यह अखिल भारतीय नवजागरण भारतीय ही नहीं विश्व साहित्य में अद्‌भुत है। इसी साहित्य के प्रादेशिक भक्तों में चंडीदास और नरसिंह मेहता का इस पाठ में विशेष अध्ययन किया जा रहा है; जिनके भक्तिकाव्य के माध्यम से विद्यार्थी उनके भाव, विचार, दर्शन और अखिल भारतीय दृष्टि को समझ सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

12.2 भारतीय साहित्य की अवधारणा

भारतीय साहित्य केवल हिंदी भाषा में नहीं लिखा गया है। वह भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी लिखा गया है। वस्तुतः साहित्य शब्द से पहले 'भारतीय' विशेषण का लग जाना यह संकेत कराता है कि भारतीय साहित्य में वह सब कुछ समाता है जो भारत में प्रचलित सभी देशी-विदेशी व क्षेत्रीय भाषाओं में देश की परिस्थितियों और संस्कृति के अनुरूप लिखा गया है। भारत एक विशाल देश है, उसकी संस्कृति अत्यधिक समृद्ध है और उसकी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जहाँ तक भारतीय साहित्य की विराटता व्यापकता का प्रश्न है, तो इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य हिंद महासागर से भी अधिक समृद्ध है।

भारत बहुधर्मी, बहुरंगी, बहुभाषी देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं - उत्तर पश्चिम भारत में पंजाबी, हिंदी और उर्दू; पूर्वी भारत में उड़िया, बंगला और असमिया; मध्य पश्चिमी भारत में मराठी और गुजराती तथा दक्षिण भारत में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं का विशेष स्थान है। सबका अपना साहित्य है, लेकिन सबकी खुशबू, रंग एक है। जिस प्रकार भारत में विविधता में एकता स्पष्ट दिखाई देती है, ठीक उसी प्रकार भारतीय साहित्य भले ही अलग-अलग भाषाओं में रचित है; परंतु उसमें भी समानता देखी जा सकती है।

भारतीय साहित्य का मूल प्रेरणा स्रोत संस्कृत साहित्य रहा है, जिसमें रामायण, महाभारत, पुराण, वैष्णव भक्ति आदि को विषय वस्तु का मूल आधार बनाया गया है। भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों में व्यापक भिन्नता के कारण उसमें छिटपुट अंतर भी आ गया है; फिर भी भारतीय साहित्य में एकरूपता दिखाई देती है, न केवल विषय वस्तु बल्कि कार्य-शैली व काव्य-रूपों में भी समानता देखी जा सकती है।

12.3 भारत के प्रमुख भक्त : चंडीदास (बंगाल के भक्त-कवि)

12.3.1 चंडीदास का जीवन

चंडीदास मध्ययुग के चौदहवीं शताब्दी के बांग्ला भाषा के कवि हैं। वे चैतन्य-पूर्व बांग्ला साहित्य में वैष्णव पदावली के रचयिता की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखते हैं। वे राधाकृष्ण लीला सम्बन्धी साहित्य के आदिकवि माने जाते हैं।

इनका बंगाली वैष्णव समाज में बड़ा मान है। चैतन्यदेव के जन्म से पहले इन्हीं चण्डीदास के नाम से प्रसिद्ध बहुत से गीतिपद लोगों के मुख में रहते थे। बहुत दिनों तक इनके बारे में कुछ विशेष ज्ञात नहीं था। चंडीदास को द्विज चंडीदास, दीन

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

चंडीदास, बडु चंडीदास, अनंतबडु चंडीदास इन कई नामों से युक्त पद प्राप्त थे। इनकी पदावली को प्रायः *कीर्तनिया* लोग गाया करते थे। इसके पदों का सर्वप्रथम आधुनिक संग्रह *जगद्बन्धु भद्र* द्वारा "महाजन पदावली" नाम से किया गया। यह संग्रह सन् 1874 ई. में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में चंडीदास नामांकित दो सौ से अधिक पद संग्रहीत हैं। सन् 1916 ई. तक चंडीदास के परिचय, समय इत्यादि के संबंध में कोई निश्चित मत न होते हुए भी इस बात की कोई समस्या नहीं थी कि चंडीदास नाम के एक ही व्यक्ति थे या अनेक। इसी समय *वसंतरंजन राय* ने स्वयं प्राप्त की हुई 'श्रीकृष्णकीर्तन' नाम की हस्तलिखित ग्रंथ की प्रति को सम्पादित कर प्रकाशित किया। यह ग्रंथ *कृष्णलीला* काव्य है। प्रचलित पदावली की भाषा और वर्ण्य विषय से 'श्रीकृष्णकीर्तन' की भाषा एवं वर्ण्य विषय में अन्तर होने के कारण इस बात की सम्भावना जान पड़ी कि चंडीदास नाम के एकाधिक व्यक्ति अवश्य थे। बहुत छानबीन के उपरान्त प्रायः सभी विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दो चंडीदास अवश्य थे।

चण्डीदास द्वारा रचित मानवीय प्रेम के कुछ पद

ब्रह्माण्ड व्यापिया आछये ये जन, केह ना जानये तारे।
प्रेमेर आरति ये जन जानये सेइ से चिनिते पारे।।
मरम ना जाने, मरम बाथाने, एमन आछये यारा।
काज नाइ सखि, तादेर कथाय, बाहिरे रहुन तारा।
आमार बाहिर दुयारे कपाट लेगेछे – भितर दुयार खोला।
कहे चण्डीदास, कानुर पीरिति – जतिकुलशील छाड़ा।

चैतन्यदेव के पूर्ववर्ती एक चंडीदास थे, इस बात का निर्देश 'चैतन्य-चरितामृत' एवं 'चैतन्यमंगल' में मिलता है। चैतन्यचरितामृत में बताया गया है कि चैतन्य महाप्रभु चंडीदास एवं *विद्यापति* की रचनाएँ सुनकर प्रसन्न होते थे। *जीव गोस्वामी* ने *भागवत* की अपनी टीका 'वैष्णवतोषिनी' में *जयदेव* के साथ चंडीदास का उल्लेख किया है। *नरहरिदास* और *वैष्णवदास* के पदों में भी इनका नामोल्लेख है। इन चंडीदास का जो कुछ परिचय प्राप्त है वह प्रायः जनश्रुतियों पर ही आधारित है। ये ब्राह्मण थे और *वीरभूम* जिले के नामूर ग्राम के निवासी थे। 'तारा', 'रामतारा' अथवा 'रामी' नाम की *धोबिन* इनकी प्रेमिका थी, यह एक जनश्रुति है। दूसरी जनश्रुति के अनुसार ये *बाँकुड़ा जिले* के छातना ग्राम के निवासी थे। ये 'वाशुली' देवी के भक्त थे। इनके नाम से प्रकाशित ग्रंथ 'श्रीकृष्णकीर्तन' में प्रबन्धात्मकता है। यह प्राचीन *जात्रा नाट्य* और *पांचाली काव्य* का मिला-जुला रूप है।

'दीन चंडीदास' नामक एक व्यक्ति चैतन्यदेव के परवर्ती थे, इस बात का भी पता चलता है। दीन चंडीदास के नाम से नरोत्तमदास का वन्दना सम्बंधी एक पद प्राप्त है। इससे वे नरोत्तमदास के शिष्य ज्ञात होते हैं। दीन चंडीदास नांमाकित बहुत से पद प्राप्त हैं। इनका संपादित संग्रह *मणीन्द्रमोहन वसु* ने प्रकाशित किया है। चंडीदास एक प्रसिद्ध भक्त कवि थे। इनका बंगाली वैष्णव समाज में बड़ा मान है। चंडीदास को बंगाली

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कविता का जनक भी कहा जाता है। उन्होंने प्रेम और भक्ति की जो धारा शुरू की, वह बाद में गोविंददास, रवींद्रनाथ टैगोर और अन्य बंगाली कवियों में भी विकसित हुई। उनके गीत बंगाल में ऐसे गाए जाते हैं जैसे देश में रामायण या गीता के श्लोक सुनाए जाते हैं। उनके गीत मानव व दिव्य प्रेम के बीच समानता खोजते थे तथा वैष्णव व सहज्या धार्मिक आंदोलनों के प्रेरणास्रोत भी थे।

क्या आप जानते हैं कि चंडीदास को 'पगला चंडी' क्यों कहते हैं?

उनका जन्म वीरभूमि जनपद के छात्रा नामक गाँव में हुआ जो छोटी उम्र में ही नानूर गाँव में बस गए और वहाँ पर वसूली देवी के मंदिर में पुरोहित का काम करने लगे उनके जीवन की उल्लेखनीय घटना है कि वह रामी नाम की एक धोबिन से प्यार करते थे। इसके अनेक प्रमाण उनकी रचना में मिलते हैं चंडीदास के इस कृत्य को समाज विरोधी कार्य मान लिया गया और उन्हें पुरोहित पद से हटा दिया गया। यहाँ तक कि उन्हें उनकी जाति से भी बहिष्कृत कर दिया गया। जब लोगों ने चंडीदास का ब्रह्म भोज कराया उन्हें दोबारा जाति में शामिल करने को कहा तो चंडीदास जी इस बात को मान गए। जिस समय चंडीदास ब्रह्मभोज करा रहे थे उसी समय रानी धोबिन वहां पहुँच गई और रोने लगी। उसका रोना देखकर चंडीदास ने उस धोबिन का साथ दिया जिस पर समाज के लोग पुनः नाराज हो गए और चंडीदास को दोबारा जाति से निकाल दिया। इस पर चंडी ने उसे वेदमाता की उपाधि से अलंकृत कर उसकी उपासना करनी शुरू कर दी। इससे लोगों ने कवि के विरुद्ध आवाज उठाई और उसे 'पगला चंडी' कहकर संबोधित किया।

चंडीदास प्रतिभावान थे। जब भी वे कीर्तन गाने लगते थे बहुत संख्या में लोग उनका कीर्तन सुनने के लिए अपना काम छोड़कर बाहर आ जाते थे। कहा जाता है कि एक बार जब चंडीदास जी कीर्तन पद गाकर गाँववालों को सुना रहे थे। तभी मकान की छत गिर पड़ी और मकान की छत गिरते ही सन 1916 में चंडीदास की देहलीला समाप्त हो गयी।

12.3.2 रचनाएँ

भक्त-कवि चंडीदास ने लगभग 1000 गीतों की रचना की थी, परंतु बाद में श्रीकृष्ण नामक ग्रंथ की प्राचीन पांडुलिपि मिली तो पता चला कि पुष्पी गाँव में रचयिता के रूप में बडु चंडीदास अथवा अनंत बडु चंडीदास का उल्लेख मिलता है। इस पांडुलिपि का काल कुछ विद्वान 15वीं शताब्दी तो कुछ सोलवीं शताब्दी मानते हैं। भाषा विशेषज्ञों के अनुसार श्रीकृष्ण कीर्तन का काल 14वीं-15वीं शती माना जाता है। कवि चंडीदास के बारे में जो लोकमत प्रचलित है, उससे यह समय मेल खा जाता है। अन्य साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि उनका नाम चंडीदास या अनंत बडु चंडीदास था। वे ग्राम देवी बांसुरी देवी के भक्त थे। उन्होंने प्रत्येक खंड के अंत में बांसुरी देवी का उल्लेख करते हुए यह स्वीकार किया है कि यह उनके काव्य की प्रेरणा स्रोत है। 'श्रीकृष्ण कीर्तन' की पांडुलिपि पूर्ण नहीं है। यह प्रबंधकाव्य की रचना है। इसके कुल 13 खंड हैं और उसमें

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

500 से अधिक गीत हैं। इसका आरंभ श्रीकृष्ण के जन्म से होता है तथा अंत श्रीकृष्ण के वियोग में तड़पती हुई राधा के करुण विलाप से होता है।

12.3.3 चंडीदास की भक्ति

14वीं शती के मध्यकाल में वैष्णव साहित्य की धारा का पुनः आविर्भाव हुआ। इस युग के प्रमुख वैष्णव कवियों में चंडीदास, विद्यापति, सुकृति वासु झा आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें से बडु चंडीदास, विद्यापति, मलाधर बसु ने कृष्णकाव्य की रचना की जबकि कृतिबास ओझा ने रामायण की रचना की। इनमें चंडीदास कृत 'श्रीकृष्ण कीर्तनमाला' बांग्ला वैष्णव साहित्य का आरंभिक व प्रमुख ग्रंथ हैं। चंडीदास कृत श्रीकृष्ण कीर्तन के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। चंडीदास ने 500 से अधिक गीत लिखे और इसे 13 खंडों में विभक्त किया। इसका आरंभ कृष्ण-जन्म से होता है और उसका अंत कृष्ण-वियोग के उपरांत राधा के करुण विलाप से होता है। उन्होंने राधा और कृष्ण को मानव जगत की स्त्री और पुरुष के रूप में ही अधिक चित्रित किया है। दान खंड में कृष्ण द्वारा दादी की सहायता से मार्ग दान या मार्ग कर के रूप में राधा का समर्पण दिखाया गया है। नोखा खंड में मल्हार रूप में कृष्ण राधा को नाव में बैठाकर नदी के बीच में ले जाते हैं और वहाँ पर वह नाव को उल्टा देते हैं। अत: राधा को कृष्ण से लिपटकर नदी पार करनी पड़ती है। मार्ग खंड व छात्र खंड में राधा की सास द्वारा राधा के आवागमन पर रोक व दादी के प्रयास द्वारा इस बंधन से मुक्ति की बात दर्शाई गई है। वृंदावन खंड में राधा की ईर्ष्या को दिखाया गया है। कालीदमन में कालिया मर्दन का, यमुना खंड में राधा-कृष्ण की जलक्रीड़ा का, हरण खंड में कृष्ण द्वारा राधा वह उसकी सखियों के वस्त्र के हरण का, वंशी खंड में राधा द्वारा कृष्ण की वंशी चुराने का तथा राधा बिरहा खंड में वियोग में राधा के करुण विलाप का चित्रण किया गया है। चंडीदास ने राधा-कृष्ण प्रेम में सहजिया-परकिया प्रेम को मिलाकर उसे दिव्य प्रेम की भूमि तक पहुँचा दिया है। कृष्ण के प्रेम की प्रधान अनुभूति ने राधा को जगत से विरक्त और मेघ की शुभ मयूर कंठ में कृष्ण वर्ण के प्रति आसक्त कर दिया है। राधा में प्रेम के इस उदय का स्त्रोत और रूप जितना अलौकिक है, कवि चंडीदास उतनी ही अलौकिक अनुभूति से उसे व्यक्त भी किया है। यद्यपि कवि ने कृष्ण-प्रेमी तथा राधा-प्रेमिका के आध्यात्मिक प्रेम का मधुर चित्रण किया है, परंतु इस संबंध में विद्वानों में काफी मतभेद है, कारण यह है कि इस काव्य में प्रेम का स्तर इतना ऊँचा नहीं हो सका कि उसे उदार-आध्यात्मिक प्रेम कहा जा सके, फिर भी ग्रंथ के उत्तर भाग में परिष्कार तथा उदात्ता देखने को मिलती है। वस्तुतः यह संपूर्ण काव्य राधा-कृष्ण के प्रेम का काव्य कहा जा सकता है। तत्कालीन बांग्ला समाज में इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व है।

चंडीदास ने इन पदों में कृष्ण की माधुर्य भाव से ओतप्रोत होकर विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। प्रणय-लीला कृष्ण-यशोदा के हृदयस्पर्शी चित्रण, वात्सल्य प्रेम तथा कृष्ण सुदामा के सखा भाव का भी वर्णन इसमें मिलता है। इन्होंने बंगाली वैष्णव पदावली में वैष्णव भाव माधुर्य भाव की भक्ति को और भी ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया, तभी से बांग्ला साहित्य में राधा-कृष्ण की रसात्मक प्रेमलीला, मानवीय के स्तर से ऊपर उठकर आध्यात्मिक प्रेम के साथ पर विराजमान हुई। चैतन्ययुगीन बांग्ला साहित्य में वैष्णव पदावली से संबंधित ग्रंथों में लगभग 5000 पद संकलित हैं। इन पदों की रचना हिंदू कवियों के साथ-साथ मुसलमान कवियों ने भी की है, परंतु इन पदों के रचनाकारों में चंडीदास, बलरामदास, ज्ञानदास, गोविंददास ही

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं, फिर भी चंडीदास के जीवन-वृत्त के बारे में बांगला साहित्य का इतिहास मौन है। उनके पद आज भी हृदय को स्पर्श करने में सक्षम हैं। उनके पद का एक उदाहरण है-

चातक जलद कहि से नहे तुलना,
समय नहिले से ना देय एक कणा।
कुसुमे मधुप कहि एहे नेह तुल,
ना आइले भ्रमर ना जाय सेया पुल।
किछार चकोर चांद दुहुं समनहे,
त्रिभुवन हेन नाहिं चंडीदास कहे।

एक पद में श्रीवृषभानुनन्दिनी के पवित्र भाव से भावित होकर वे श्यामसुन्दर से कह रहे हैं, मानो श्रीलाड़िली जी अपने प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दर को सामने देखकर उन्हें अपने हृदय की क्रन्दन-ध्वनि सुना रही हैं -

बंधु कि आर बोलिबो आमि।
जीवने मरणे जनमे जनमे प्राणनाथ होओ तुमि ।।
तोमार चरणे आमार पराणे बाँधिलो प्रेमेर फाँसी।
सब समर्पिया एक मन होइया निचय हैलाम दासी ।।
भावि देखिलाभ ए तीन भुवने आर के आमार आछे ।
राधा बलि केह सुधाइते नाइ, दाँड़ाव काहार काछे ।
ए कुले ओ कुले दु कुले गोकुले आपना बोलिबो काय ।
शीतल बलिया शरण लइनु, ओ दुटी कमल पाय ।।
ना ठेलिओ मोरे अबला बोले, ये हय उचित तोर ।
भाविया देखिनु प्राणनाथ बिने गति ये नाहिक मोर।।
आँखिर निमिषे यदि नाहि देखि, तबे से पराणे मरि ।
चण्डीदास कय परशरतन गलाय गाँथिया परि ।।

'मेरे प्रियतम! और मैं तुम्हें क्या कहूँ । बस, इतना ही चाहती हूँ – जीवन में मृत्यु में, जन्म-जन्म में तुम्हीं मेरे प्राणनाथ रहना। तुम्हारे चरण एवं मेरे प्राणों में प्रेम की गाँठ लग गयी है, मैं सब कुछ तुम्हें समर्पित कर एकान्त मन से तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ। मेरे प्राणेश्वर! मैं सोचकर देखती हूँ – इस त्रिभुवन में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कौन है । 'राधा' कहकर मुझे पुकारने वाला तुम्हारे सिवा और कोई भी तो नहीं है। मैं किसके समीप जाकर खड़ी होऊँ ? इस गोकुल में कौन है, जिसे मैं अपना कहूँ ? सर्वत्र ज्वाला है, एकमात्र तुम्हारे युगल चरण कमल ही शीतल हैं, उन्हें शीतल देखकर ही मैं, तुम्हारी शरण में आयी हूँ। तुम्हारे लिये भी अब यही उचित है कि मुझ अबला को चरणों में स्थान दे दो, मुझे अपने शीतल चरणों से दूर मत फेंक देना। नाथ ! सोचकर देखती हूँ, मेरे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना अब मेरी अन्य गति ही कहाँ है। तुम यदि दूर फेंक दोगे तो मैं अबला कहाँ जाऊँगी। मेरे प्रियतम ! एक निमेष के लिये भी जब तुम्हें नहीं देख पाती, तब मेरे प्राण निकलने लगते हैं। मेरे स्पर्शमणि! तुम्हें ही तो मैं अपने अंगों का भूषण बनाकर गले में धारण करती हूँ|' भक्त चण्डीदास और महाकवि विद्यापति परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित थे। चण्डीदास विद्यापति से मिलने गये थे। परम पवित्र भगवती भागीरथी के तट पर चण्डीदास और कविशेखर विद्यापति का सम्मिलन हुआ था, प्रेम और सौन्दर्य ने एक-दूसरे का दर्शन किया था। चण्डीदास ने श्रीकृष्ण प्रेम का अत्यन्त अलौकिक ढंग से वर्णन किया, वे श्रीकृष्ण के पूर्ण भक्त थे। श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु उनके गीतों से भक्ति के उद्दीपन तत्त्व की अनुभूति किया करते थे। चण्डीदास ने सुख में दुःख देखा था। वे मिलन-सुख में वियोग के दुःख से सदा आशंकित रहते थे। विरहकाल में वे मूर्तिमान् अनुराग हो उठते थे। उनका भगवत्प्रेम अथवा श्रीराधाकृष्ण का भक्तिभाव सर्वथा लोकोत्तर था। उसमें माधुर्य-ही- माधुर्य दीख पड़ता है। चण्डीदास का नाम एक गौरवपूर्ण और विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित है। चण्डीदास का नाम सुनते ही नयनों में प्रेम के अश्रु उमड़ पड़ते हैं, रसना पर श्रीराधा-कृष्ण का सौन्दर्य - माधुर्य छलक पड़ता है, हृदय में भक्ति की मन्दाकिनी का वेग बढ़ जाता है। चण्डीदास पूर्ण प्रेमी और परम भगवद्भक्त थे।

12.3.4 चंडीदास की भाषा

वस्तुत: तुर्कों के आक्रमण के कारण बंगाल में फैली राजनीतिक अव्यवस्था के चलते बंगाल में 12वी शताब्दी के उतरार्द्ध में कवि-भक्त चंडीदास का आविर्भाव बंगाल में हुआ तो भक्ति की धारा एक बार फिर उमड़ पड़ी चंडीदास को बंगला भाषा का प्रथम कवि माना जाता है। चंडीदास की काव्य भाषा की निम्न विशेषताएँ मिलती हैं –

1. चंडीदास ब्रजबुली (बांग्ला भाषा का एक रूप) में रचना की, जबकि ये अच्छी संस्कृत भी जानते थे।
2. इन्हें काव्यशास्त्रीय परम्परा की भी अच्छी जानकारी थी।
3. इनकी काव्यभाषा, अलंकार योजना, रूप निर्माण की क्षमता बेजोड़ थी।
4. इनके पद ध्वनि और अर्थ क्षमता से अनुनादित हैं।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

12.3.5 बोध प्रश्न

प्रश्न (क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द/वाक्य में दीजिए-

1) चंडीदास किस ईश्वर की भक्ति करते थे?

2) चंडीदास की प्रेमिका का नाम क्या था?

3) चंडीदास ने किस भाषा के कवि थे?

प्रश्न (ख) सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ती कीजिए-

1. चंडीदास को.....कहा जाता था। (झल्ला चंडी/ पगला चंडी)
2. चंडीदास कृत.....बांग्ला वैष्णव साहित्य का आरंभिक ग्रंथ हैं। (श्रीकृष्ण कीर्तनमाला/ श्रीकृष्ण नाममाला)

12.4 नरसिंह मेहता (गुजरात के भक्त-कवि)

12.4.1 नरसिंह मेहता का जीवन

नरसिंह मेहता अथवा नरसिंह मेहता गुजराती भक्ति साहित्य के श्रेष्ठतम कवि थे। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व की महत्ता के अनुरूप साहित्य के इतिहास ग्रंथों में 'नरसिंह-मीरा-युग' नाम से एक स्वतंत्र काव्य काल का निर्धारण किया गया है, जिसकी मुख्य विशेषता भावप्रवण कृष्ण की भक्ति से अनुप्रेरित पदों का निर्माण है। पदप्रणेता के रूप में गुजराती साहित्य में नरसिंह का लगभग वही स्थान है जो हिन्दी में महाकवि सूरदास का है।

ऐतिहासिक दृष्टि से नरसिंह मेहता के जीवनकाल को लेकर विवाद ही मिलता है। उनकी 'हार्माला' नामक कृति में दी गयी तिथि संवत् 1512 मानी है जबकि वर्णित घटना से सिद्धरा मांडलिक की समकालीनता के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने उन्हें 15वीं शती में रखा है। 'वृद्ध मान्य समय' ने इनका समय 1414-81 ई. माना है जबकि चैतन्य के प्रभाव के कारण नरसिंह मेहता का समय 1500-1580 ई. से पूर्व नहीं माना जा सकता है। चाहे गुजरात के अनेक मान्य विद्वानों ने इस विवाद में भाग लिया तथापि वह अब भी प्राय: अनिर्णीत है। उनकी रचनाओं में जयदेव, मीरा, नामदेव, रामानंद का उल्लेख मिलता है।

नरसिंह मेहता का जन्म जूनागढ़ के समीपवर्ती 'तलाजा' नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता कृष्ण दामोदर वडनगर के नागारवंशी कुलीन ब्राह्मण थे। उनका देहांत हो जाने पर बाल्यकाल से ही नरसिंह मेहता को अत्यंत कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

एक कथा के अनुसार वे आठ वर्ष तक गूंगे रहे और किसी कृष्णभक्त साधु की कृपा से उन्हें वाणी का वरदान प्राप्त हुआ। साधु संग उनका व्यसन था। उद्यमहीनता के कारण उन्हें भाभी की कटूक्तियाँ सहनी पड़तीं और अंतत: गृहत्याग भी करना पड़ा। विवाहोपरांत पत्नी माणिकबाई से कुँवरबाई तथा शामलदास नामक दो संतानें हुईं। कृष्णभक्त होने से पूर्व उनके शैव होने के प्रमाण मिलते हैं। कहा जाता है,'गोपीनाथ' महादेव की कृपा से ही उन्हें कृष्णलीला का दर्शन हुआ जिसने उनके जीवन को सर्वथा नई दिशा में मोड़ दिया। गृहस्थ जीवन में चमत्कारिक रूप से अपने आराध्य की ओर से सहायता प्राप्त होने के अनेक वर्णन उनकी आत्मचरितपरक कई रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। नरसिंह मेहता की मृत्यु का समय 1480 माना जाता है।

12.4.2 नरसिंह मेहता जी की रचनाएँ

नरसी मेहता ने बड़े मर्मस्पर्शी भजनों की रचना की। गाँधी जी का प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये' उन्हीं का रचा हुआ है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पदों के अतिरिक्त उनकी यह कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—

'सुदामा चरित', 'गोविन्द गमन','दानलीला','चातुरियो','सुरत संग्राम','राससहस्त्र पदी',

'श्रृंगार माला','वंसतनापदो','कृष्ण जन्मना पदो

नरसिंह मेहता की हुंडी बड़ी प्रसिद्द है। संतों के साथ बहुत सी कथाएँ जुडी होती हैं। नरसिंह मेहता के सम्बन्ध में भी ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। इनमें से कुछ का उल्लेख स्वयं उनके पदों में मिलता है, जिस कारण लोग इन्हें यथार्थ घटनाएँ भी मानते हैं। उन दिनों हुंडी(धनादेश) का प्रचलन था। लोग पैदल यात्रा में नकद धन नहीं ले जाते थे। किसी विश्वस्त और प्रसिद्द व्यक्ति के पास रुपया जमा करके दूसरे शहर के व्यक्ति के नाम हुंडी लिखा लेते थे। नरसिंह मेहता की गरीबी का उपहास करने के लिए कुछ शरारती लोगों ने द्वारका जाने वाले तीर्थ यात्रियों से हुंडी लिखवा ली, पर जब यात्री द्वारका पहुंचे तो श्यामल साह सेठ का रूप धारण करके श्रीकृष्ण ने नरसिंह की हुंडी का धन तीर्थ यात्रियों को दे दिया। उनकी हुंडी के ये दोहे इसका प्रमाण हैं—

जिय मैं निसि बासर जरत, पुनि नित करत प्रपंच ।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नरसी सौं बांधव निलज, राखत प्रेम न रंच ।।
बांधवजन के बैर की, बरनत हौं इक बात ।
आई गढ़ मैं एक दिन, जुरि कै संत जमात ।।
लोगन सौं पूछयो इहाँ, का कहुँ साहू नाहिं ।
जाकी हुंडी चलि सकत, पुरी द्वारिका माहिं ।।
जरे भुने जे बंधुजन, लै नरसी कौ नाम ।
दीन्हौं तिन्हें बताइ द्रुत, ताकौ पतै तमाम ।।
व्याजस्तुति कीन्हीं बहुत, बहु बिधि बात बनाइ ।
अधोलिखित पाटी अधम, परिजन दई पढ़ाई ।।
नरसी जौ मानै नहीं, करै साफ इनकार ।
तौ पग ताके पकरि कै, बिनवहु बारंबार ।।
'संत असंत न देखहीं, देत दुलत्ती झार ।
खलजन एते खलक मैं चूकत नाहिं चमार ।।
खल कौ रखिये ख्याल नित, खुदा दूसरो मानि ।
बंदिय ताकों बिनयजुत, जोरि जानु जुग पानि ।।
सीधे सादे संत सब, जानि सके नहिं जाल ।
जहँ नरसी की झौंपरी, आये तहाँ उताल ।।
'जै नरसी की' संतजन, सब बोले इक साथ ।
नरसी तिन्हें निहारि कै, उठ्यौ जोरि दुहुँ हाथ ।।
बोल्यौ नरसी बिनय तैं, अहोभाग मम आज ।
कुटिया कौं पावन करी, सहृदय संत समाज ।।
स्वारथ बस आए सकल, संत कह्यौ हे साह ।
बढ़े भाग तेरौ बहुत, लाखन कौ है लाह ।।
यौं कहि खीसे खोलि अब, खाली कीन्ह नितंत ।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नरसी ढिग ढेरी करत, गिन गिनि रुपया संत ।।
कहा बात ? नरसी कह्यौ, कृपया देहु बताइ ।
करे जातु हो ढेर क्यौं, गिनि गिनि मो ढिग लाइ ।।
राम विमुख रखि रात दिन, हिय उपजात हराम ।
भगत न चाहत दाम सो, भगतन चाहत दाम।।
संत कह्यौ हम नाम सुनि, आए तेरे पास ।
हुंडी लिखवानी हमैं, यहै काम है खास ।।
सुनि संबोधन 'सेठ', निज नरसी जोरे हाथ ।
बोल्यौ, हौं तौ दास हौं, सेठ द्वारिकानाथ ।।
हँसी करत क्यौं संत है, मोकौं सेठ पुकार ।
कौन कह्यौ या दीन कैं, हुंडी कौ ब्यौपार ।।
घास फूस की झोंपरी, तैसो सर अंजाम ।
देबे कौं तूंबी इहाँ, लेबे कौं हरिनाम ।।
अरे संतजन! आपकौं कौन दये भरमाइ ।
कीन्ह मसखरी कौन यह, दीजै मोहिं बताई ।।
अरे भगत ! हम साधुजन, कौन हमें भरमाइ ।
तू भरमावत क्यौं वृथा, बीसौं बात बनाइ ।।
कहा बतावत यौं कुटी, तूंबा हमैं तमाम ।
ये तो प्यारे ! प्रिय हमैं, इनही सौं है काम ।।
साँचे ज्ञानी होत सो, सरल रहत जिमि साध
बैभव तैं बौरात ना, उर के होत अगाध ।।
तू ज्ञानी ध्यानी परम, दानी सेठ लखात ।
तो सानी कोउ और ना, जानी हम यह बात ।।
तू तौ रुपया लेइ कै, लिखि दै हुंडी साह ।
पटिहै कै पटिहै नहीं, याकी ना परवाह ।।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

जान्यौ नरसी बंधुजन चाली कै तौ चाल।
कै भगवत कीन्ही कृपा, भेज्यौ खरच दयाल।।
हुंडी हाथौं हाथ लै, सिद्धि करी सब संत।
पुरी द्वारिका पहुँचि कै, उतरे जाइ इकंत।।
कियौ तहाँ बिसराम कछु, खानो पीनो खाइ।
ढूँढ़न लागे साह कौं, अब बजार मैं आइ।।
लाग्यौ पते न लेसहू, होइ होइ संत हैरान।
सब ही आए साँझ कौं, थाकि आपुने थान।।
बैठे सोच बिचार मैं, अब सब होइ उदास।
साह रूप धरि साँवरौ, प्रगटि पधारयौ पास।।

12.4.3 नरसिंह मेहता की भक्ति

नरसिंह मेहता गुजरात के एक बहुत बड़े श्रीकृष्णभक्त हो गये हैं। उनके भजन आज दिन भी न केवल गुजरात में बल्कि सारे भारत में बड़ी श्रद्धा और आदरके साथ गाये जाते हैं। बचपन में ही उन्हें कुछ साधुओं का सत्संग प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में श्रीकृष्णभक्ति का उदय हुआ। वे निरन्तर भक्त – साधुओं के साथ रहकर श्रीकृष्ण और गोपियों की लीला के गीत गाने लगे। धीरे-धीरे भजन-कीर्तन में ही उनका अधिकांश समय बीतने लगा। यह बात उनके परिवार वालों को पसन्द नहीं थी। उन्होंने इन्हें बहुत समझाया, पर कोई लाभ न हुआ। एक दिन इनकी भौजाई ने ताना मारकर कहा कि 'ऐसी भक्ति उमड़ी है, तो भगवान से मिलकर क्यों नहीं आते ?' इस

यौं चीठी लिखि चाव सौं, सौंपी साह सुजान।
माफी सब सौं माँगिकै, दीन्ही बिदा निदान।।
संत लोग करि जातरा, पहुँचे नरसी पास।
सौंपी चीठी साह की, हिय दरसाइ हुलास।।
पढ़ि कागद अति प्रेम सौं, नरसी गदगद होइ।
समाचार पूछे सकल, झट संतन दिसि जोड़।।
अटपट पगरी, पेट कटि, ढीली सटपट चाल।
संत बखान्यौ साह कौ, हँसि हँसि सगरौ हाल।।
सुनि सुनि कै नरसी भगत, भयौ मगन मन माहिं।
जस न जतायौ आँख पै, होठ हिलायौ नाहिं।।
संतन के रुपया सकल, संतन काज लगाइ।
भयौ उरिन नरसी भगत, कृपा कीन्हि जदुराइ।।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ताने ने नरसिंह पर जादू का काम किया। वे घर से उसी क्षण निकल पड़े और जूनागढ़ से कुछ दूर श्रीमहादेवजी के पुराने मन्दिर में जाकर वहाँ श्रीशंकर की उपासना करने लगे। कहते हैं, उनकी पूजा से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के गोलोक में ले जाकर गोपियों की रासलीलाका अद्‌भुत दृश्य दिखलाया। वे गोलोक की लीला को देखकर मुग्ध हो गये। तपस्या पूरी कर जब वे घर आये और अपने बाल-बच्चों के साथ अलग रहने लगे। परंतु केवल भजन-कीर्तन में लगे रहने के कारण बड़े कष्ट के साथ उनकी गृहस्थी का काम चलता स्त्री ने कोई काम करने के लिये उन्हें बहुत कहा, परंतु नरसीजी ने कोई दूसरा काम करना पसंद नहीं किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि श्रीकृष्ण मेरे सारे दुःखों और अभावों को अपने आप दूर करेंगे । हुआ भी ऐसा ही। कहते हैं, उनकी पुत्री के विवाह में जितने रुपये और अन्य सामग्रियों की जरूरत पड़ी, सब भगवान ने उनके यहाँ पहुँचायी और स्वयं मण्डप में उपस्थित होकर सारे कार्य सम्पन्न किये। इसी तरह पुत्र का विवाह भी भगवत्कृपा से सम्पन्न हो गया। कहते हैं नरसी मेहता की जाति के लोग उन्हें बहुत तंग किया करते थे। एक बार उन लोगों ने कहा कि अपने पिता का श्राद्ध करके सारी जाति को भोजन कराओ। नरसीजी ने अपने भगवान् को स्मरण किया और उसके लिये सारा सामान जुट गया। श्राद्धके दिन अन्त में नरसीजीको मालूम हुआ कि कुछ घी घट गया है। वे एक बर्तन लेकर बाजार घी लाने के लिये गये। रास्ते में उन्होंने एक संत मण्डली को बड़े प्रेम से हरि-कीर्तन करते देखा। बस, नरसीजी उसमें शामिल हो गये और अपना काम भूल गये । घर में ब्राह्मण भोजन हो रहा था, उनकी पत्नी बड़ी उत्सुकता से उनकी बाट देख रही थीं। भक्तवत्सल भगवान् नरसी का रूप धारणकर घी लेकर घर पहुँचे । ब्राह्मण भोजन का कार्य सुचारु रूप से पूरा हुआ। बहुत देर बाद कीर्तन बंद होने पर नरसीजी घी लेकर वापस आये और अपनी पत्नी से देर के लिये क्षमा माँगने लगे। स्त्री आश्चर्य में डूब गयीं । पुत्र – पुत्री का विवाह हो जाने पर नरसीजी बहुत कुछ निश्चिन्त हो गये और अधिक उत्साह से भजन-कीर्तन करने लगे। कुछ वर्षों बाद एक-एक करके इनकी स्त्री और पुत्र का देहान्त हो गया। तब से वे एकदम विरक्त-से हो गये और लोगों को भगवद्भक्ति का उपदेश देने लगे। वे कहा करते-'भक्ति तथा प्राणिमात्र के साथ विशुद्ध प्रेम करने से सबको मुक्ति मिल सकती है।' कहते हैं कि एक बार जूनागढ़के राव माण्डळीक ने उन्हें बुलाकर कहा- 'यदि तुम सच्चे भक्त हो तो मन्दिरमें जाकर मूर्ति के गले में फूलोंका हार पहनाओ और फिर भगवान्‌की मूर्ति से प्रार्थना करो कि वे स्वयं तुम्हारे पास आकर वह माला तुम्हारे गले में डाले अन्यथा तुम्हे प्राणदण्ड मिलेगा|' नरसीजीने रातभर मन्दिर में बैठकर भगवान् का गुणगान किया। दूसरे दिन सबेरे सबके सामने मूर्ति ने अपने स्थान से उठकर नरसीजी को माला पहना दी। नरसी की भक्ति का प्रकाश सर्वत्र फैल गया पर कहते हैं कि इसी पाप से राव माण्डळीक का राज्य नष्ट हो गया।

नरसी जी ने अपने दोहों में अपने आराध्य, सहायक श्रीकृष्ण की बार-बार उपासना की है। वे हुंडी के किस्से को माध्यम बनाकर उनकी उपासना करते हैं। प्रमाण स्वरूप उनके दोहे हैं-

संतन सौं अब सेठजी पूछ्यौ बोलि प्रनाम ।
हुंडी को लाए इहाँ ? नरसी की मो नाम ।।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

यह सुनि, संतनके तुरत आए तन मैं प्रान ।

बोलि उठे चट उचकि, हम लाये हैं श्रीमान ।।

हारे हम तौ हेरिकै सकल द्वारिका माहिं ।

पै हमकौं तौ आप को पतौ लग्यौ कहुँ नाहिं ।।

आप छुपे रुस्तम अहो, नरसी सेठ समान ।

जगत सेठ से जचत हो, का हम करैं बखान ।।

साधुन की सुध लेइकै, कियौ अमित उपकार ।

घर घर होवै आप की, जग मैं जय जयकार ।।

दै असीस हुंडी दई साधूजन सँभलाइ ।

साह बाँचि तिहिं सात सौ रुपया दए गनाइ ।।

थैली को मुख बाँधि कै, करि लेखे कौ काम ।

पत्र लिख्यौ अब प्रेम सौं, नरसीजी कैं नाम ।।

नरसी जी ने अपने आराध्य को 'जूनागढ़ का सरताज', 'छुपा रुस्तम' आदि कहकर संबोधन किया है। लाज रखने वाले भगवान की नरसी बार बार वंदना गाते हैं-

सिद्धि सिरी जूनागढ़ साह सिरताज सिरी-

भक्तराज नरसी सौं 'जै जै नरसी की' है।

कुसल इहाँ पै सब आपहूँ कुसल, हम-

संतन सौं जानी सब बात तहँ नीकी है।

हुंडी के रुपैया रोक सात सौ चुकाइ दीन्हे,

खोटी नाहिं कीन्हे, ना लगाई बात फीकी है।

जानिकै गुमासता जरूर याद कीज्यौ हमैं,

काम काज लिखियो दुकान आप ही की है ।।

नरसी मेहता ने हुंडी देने आये सेठ के रूप वाले अपने आराध्य श्रीकृष्ण की अद्‌भुत छवि का वर्णन किया है जोकि ईश्वर के रूप वर्णन की भक्ति का एक रूप है-

माथे पै लपेटि राखी अटपट पाग मोटी,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

खुलि खुलि जाति चोटी फहरत न्यारी है;

खिसकि खिसकि परी एड्रिन लौं धोती, जाति

घिसी आति अंगरखी घेरघारवारी है।

कटि कैं लपेटि राख्यौ लाँबौ सौ दुपट्टो, और

पेट राख्यौ काढ़ि कछु चाह कै अगारी है;

कान पै कलम, बही बगल दबायें साह,

काँधे धरी धम्मसे सुथैली आन डारी है ।।

अर्थात श्रीकृष्ण ने अपने माथे पर बेतरतीब की पगड़ी पहनी हुई है जिसमें से उनकी चोटी निकल निकल कर, खुल-खुलकर उड़ी जा रही थी। उनकी धोती भी सही से नहीं बंधी थी वह भी ढीली-ढाली थी जो बार बार-बार खिसके जा रही थी। उनका अंगोछा भी व्यवस्थित नहीं था। उनका पेट अलग से दिख रहा था। उन्होंने कान पर कलम भी लगाई हुई थी जैसे मुनीम जी लगाते हैं। उन्होंने अपने कंधे पर थैली भी रखी हुई थी। इस प्रकार अपने आराध्य के रूप और कृपा की नरसी ने बार-बार उपासना की है।

नरसिंह मेहता मूलतः वैष्णव भक्त हैं; अपने भावगर्भित भक्ति से सराबोर पदों के लिए समूचे देश के वैष्णव भक्तों में ख्यात; और गुजरात के लोकमानस में गहरे पैठे हुए। यह नरसी या नरसिंह मेहता का ही रचित पद 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' है, जो स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी की प्रार्थना सभाओं में तो गूँजा ही है, समूचे देश ने जिसके माध्यम से एक सच्चे वैष्णव भक्त और वैष्णव भक्ति की पहचान की है। निःस्वार्थ अहेतुक भक्ति सत्य से मंडित धर्म हमेशा से वरेण्य और काम्य रहा है। नरसी के पदों से गुजरते हुए बराबर अनुभव होता है कि सचमुच एक सच्चे भक्त और संत का मनोलोक कितना व्यापक, उदार, पारदर्शी और मानवीय चिंता से परिपूरित होता है। भक्ति जहाँ 'स्व' के कल्याण के लिए नहीं, लोक के कल्याण के प्रति समर्पित होती है। नरसिंह के कुछ चुने हुए पद, कुछ पद्यांश यहाँ संकलित हैं—

वैष्णव जन तो तेने रे कहिए जे पीर पराई जाणे रे ।
परदुःखे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे ।
सकल लोकमाँ सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे. धन्य धन्य जननी तेनी रे ।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ।
मोह व्यापे नहि तेने दृढ़ वैराग्य जेना मनमाँ रे ।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, SOL, University of Delhi

सरल शब्दों में नरसी ने कहा है कि आत्मतत्त्व को पहचानो और ढोंग को छोड़ो—

ज्याँ लगी आतमा तत्त्व चित्यों नहीं, त्याँ लगी साधना सर्व जूठी।

शुं थयुँ स्नान सेवा ने पूजा थकी, शुं थयुँ घेर रही दान दीधे।

शुं थयुँ धरि जटा भस्म लेपन कीधे, शुं थयुँ बाल लोचन कीधे।

शुं थयुँ तप ने तीर्थ कीधा थकी, शुं थयुँ माल ग्रही नाम लीधे।

शुं थयुँ वेद व्याकरण वाणी वगे ...

शुं थयुँ खट दर्शन सेवी थकी॥

वे आडंबर और दंभ का त्याग करने की बात भी कहते हैं—

की आ संन्यासी शरण ज पाम्या, दंड, भेख, जटाधारी रे,

काँ स्त्री मरे के खावा टले त्यारे, मुंड मुंडावी भगुवा पहेरौं रे।

प्रेमभक्ति वैराग्य विना रे, फुंकाओ कान बहेरो।

तारा उँकारनँ कर ने अथाणु... ॥

वे बाहरी वेश को व्यर्थ बताते हैं और अंतर्मन की शुद्धता को जरूरी बताते हैं —

भोगी रे भोगी, अल्या अगे भोगी रे भोगी।

जेना पाप होय ते थाय जोगी, अल्या अमे भोगी रे भोगी।

जटा धरे जगदीश मले तो वट वैकुंठ चाले रे,

दंड धरे दीनानाथ मले तो गर्धव छारमा लोटे रे,

दंडवते दयाल मले, तो भोरिंग ब्रा ने भेंटे।

वनमा वसे ब्रजराज मले, तो वनचर मुक्ति पामे रे।

भणे नरसैंयो तमे प्रेम वेर न जाणो, मिथ्या वढवुं मूको॥

अर्थात हम भोगी हैं, हम भोगी हैं; हाँ, हम सौ बार भोगी हैं। जिसने पाप किए हों, यदि वह जोगी है, तो हम डंके की चोट पर भोगी हैं। यदि जटा धारण करने से ही भगवान मिलते, तो सभी वटवृक्ष वैकुंठ जाते। यदि दंड धारण करने से प्रभु की प्राप्ति होती, तो सब दंडधारी अंधों की मुक्ति हो जाती। यदि भस्म का लेप करने से ईश्वर मिलता, तो गर्दभ तो सदा धूल में लोटता है। यदि दंडवत् प्रणाम करने से विश्वनाथ के दर्शन संभव

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

होते, तो नाग को तो ब्रह्म-दर्शन अवश्य होता। यदि वन में जाकर रहने से ही मुक्ति मिलती, तो सारे वनचर पशु-पक्षी मुक्त हो जाते । वस्तुतः मिथ्या वाद-विवाद छोड़कर प्रभु को केवल प्रेम से पाया जा सकता है।

नरसी जी की दृष्टी समदृष्टि थी वे भक्ति में ऊँच-नीच कुछ नहीं मानते है :-

पक्षा पक्षी त्याँ नहि परमेश्वर, समदृष्टि ने सर्वसमान....

भोर थया लगि भजन कीधुं, संतोष पाम्या सउ वैष्णव....

जाग्या लोक नर-नारी पूछे, महेताजी तमे एवाँ धुँ ?

नात न जाणो ने जात न जाणो, न जाणो कोई विवेक सार ।

कर जोडी ने कह नरसैयो, वैष्णव तणो छे मन छे आधार।।

अर्थात भगवान के राज्य में पक्षपात नहीं है। वहाँ समदृष्टि है; सब समान हैं। ढेड़ जाति के लोगों के निवेदन पर उनके घर जाकर रात भर भजन करने का विवरण देते हुए नरसी कहते हैं - लोगों के हँसी-मजाक करने पर तथा जाति-पाँति का विचार किए बिना ढेड़ों के यहाँ जाने के अविवेक के लिए कोसने पर वे बोले कि ऐसा करने के लिए मेरे पास वैष्णव धर्म का आधार है। (गुजरात में गंगी को ढेड़ कहते हैं ।) नरसी जी ने अपने काव्य में स्त्री-महिमा भी की है :-

सारमाँ सार भवसार अबला तणो, जे बले बलिभद्र वीर रीझे ।

अर्थात स्त्री का अवतार तो सार का भी सार है; जिस पर श्रीकृष्ण रीझ गए ।

कौन पुण्ये करी नारि हुँ अवतरी ।

वे कहते हैं नारी का अवतार न जाने किन पुण्यों का परिणाम है ?

अत: नरसिंह मेहता के काव्य में केवल भक्ति नहीं, मूल्यों, आचार, आदर्श, समता आदि विभिन्न पक्षों पर भी अभिव्यक्ति की है।

12.4.4 नरसिंह मेहता की भाषा

मनुष्य एक सामजिक प्राणी है समाज में रहकर वह अपनी बातें दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों की बातें स्वयं समझना चाहता है। लोगों के बीच होने वाले भावों-विचारों के इस विनिमय को 'सम्प्रेषण' कहा जाता है। हम लोग अपने बातें दूसरों तक संप्रेषित करने के लिए कभी इशारों या अस्पष्ट ध्वनियों का सहारा लेते हैं, किन्तु मनुष्य सम्प्रेषण के लिए सबसे अधिक जिस माध्यम का सहारा लेता है, उसे भाषा कहते हैं। नरसी मेहता की भाषा मूलत: गुजराती है। उनकी भाषा के निम्न गुण दिखते हैं-

- उनकी कविता धार्मिक भक्ति के अलावा स्कूली शिक्षा या व्यवसाय का कोई संदर्भ नहीं देती है, इसलिए भाषा शुद्ध भावात्मक है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- 'पाड़ा', 'आख्यान ' और 'प्रभातियाँ' उनकी कुछ साहित्यिक विधाएँ गुजराती भाषा की ही हैं ।
- नरसिंह के लेखन की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से एक यह है कि वे उस भाषा में उपलब्ध नहीं हैं जिसमें उन्होंने उन्हें लिखा था। उन्हें ज्यादातर मौखिक रूप से पारित किया गया है।
- पुत्र विवाह, ममेरू, हुंडी, हर सामे नो पाड़ा, झरी ना पाड़ा और हरिजन स्वीकृति को चित्रित करने वाली रचनाएँ आत्मकथात्मक संगीतात्मकता का गुण लिए हुए हैं।
- प्रेम का संग्राम, सुरता संग्राम, एक ओर राधा और उसकी सखियों के बीच और दूसरी ओर कृष्ण और उसकी सहेलियों के बीच भावुक खेल को एक युद्ध के रूप में दर्शाता है। ऐसे प्रसंगों में उनके भाषा चित्रात्मक बन पड़ी है।

नरसी जी की ठेठ गुजराती का उदाहरण देखिये-

हलवाँ कर्मनो हुँ नरसैयो, सुजने तो वैष्णव व्हाला रे ।

हरिजनथी जो अंतर गणशे, तेना फोगड फेरा ठाला रे ।।

अर्थात मैं लोगों की दृष्टि में नीच और अनुचित कर्म करने वाला हूँ; किंतु मुझे तो वैष्णव प्यारे हैं और जो भी हरिजन से भेद रखेगा, उसका संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ सिद्ध होगा ।

नीच ने ऊँचनुं त्याँ नथी, पारसुँ प्रेम दीठो तेने रह्यो रे झाली

अर्थात भगवान ऊँच और नीच को नहीं देखते।

इस प्रकार नरसी जी ने अपनी मातृभाषा गुजराती में अपने आराध्य की भक्ति का काव्य रचा है।

12.4.5 बोध प्रश्न

प्रश्न (क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द/वाक्य में दीजिए-

1. नरसी मेहता का पूरा नाम क्या था?
2. नरसी मेहता के आराध्य कौन हैं?
3. नरसी मेहता किस भाषा के कवि थे?

प्रश्न (ख) सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. नरसी मेहता की.....प्रसिद्ध है । (हुंडी/चंडी)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2. नरसिंह मेहता रचित एक पद..... है। (वैष्णव जन तो तेने कहिए/पायो जी मैंने राम रतन धन पायो)

12.5 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य ही नहीं भारतीय साहित्य में संतों और भक्त-कवियों का बहुत बड़ा योगदान है। हिन्दी भाषी कवियों की भाँति अहिन्दी भाषी प्रादेशिक कवियों ने भी भक्तिकाव्य सृजन कर, भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। भाषागत स्तर पर चाहे सम्पूर्ण भक्तिकाव्य विविध रूप में दिखते हों लेकिन इन सबका मूल एक ही है। इन्हीं की सुगंधी से सारा हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य महक रहा है। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक भारतीय साहित्यकारों विशेषकर भक्तों और संतों का योगदान अप्रतिम है।

12.6 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
2. कृष्ण भक्त कवियों में नरसी मेहता का स्थान निर्धारित कीजिए।
3. चंडीदास की भक्ति भावना का विश्लेषण कीजिए।
4. "भक्तिकाव्य ने ही अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्र को जोडने का कार्य किया है" – कथन की समीक्षा कीजिए।

12.7 संदर्भ-ग्रंथ

- *'राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य'*– डॉ. शशि तिवारी
- *'राष्ट्रीय एकता और भारतीय साहित्य'*– योगेन्द्र गोस्वामी
- *'राष्ट्रीयता'*– बाबू गुलाबराय
- *'संत साहित्य की परख'*– आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
- *'भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास'*– डॉ नगेन्द्र
- *'भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता'*– डॉ कृष्ण गोपाल
- https://www.wikiwand.com
- https://hi.m.wikipedia.org
- https://www.studywithgyanprakash.com

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

13. श्रीमंत शंकरदेव

डॉ. दीनदयाल
असिस्टेंट प्रोफेसर
कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज
दिल्ली विश्वविद्यालय

रूपरेखा

13.0 अधिगम का उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 भारतीय साहित्य : अभिप्राय और स्वरूप
13.3 श्रीमंत शंकरदेव (आसाम के भक्त-कवि)
13.3.1 जीवन
13.3.2 रचनाएँ
13.3.3 बोध प्रश्न
13.4 भक्ति
13.5 भाषा
13.5.1 बोध प्रश्न
13.6 निष्कर्ष
13.7 अभ्यास प्रश्न
13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.0 अधिगम का उद्देश्य

यह अध्याय भारत के प्रमुख भक्त श्रीमंत शंकरदेव की भक्ति और उनके विचारों पर केन्द्रित है। इस अध्याय के अध्ययन के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम हो सकेंगे-

- भारतीय भक्त श्रीमंत शंकरदेव के अखिल भारतीय रूप को समझ सकेंगे।
- हिन्दी भाषी क्षेत्रों से अलग भक्तों के काव्य द्वारा उनकी दृष्टि और विचार को जानने का अवसर मिलेगा।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- उपेक्षित भक्तों के विराट चिंतन, राष्ट्रीय दृष्टि से परिचित हो सकेंगे।
- असम के भक्त श्रीमंत शंकरदेव के काव्य द्वारा भारतीय संस्कृति के अंत:सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- वैष्णव भक्ति के अखिल भारतीय विविध रूपों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्तों की भाषायी विविधता और श्रीमंत शंकरदेव की भाषा का परिचय मिलेगा।

13.1 प्रस्तावना

सन 1350 से 1650 के समय को भारतीय साहित्य में पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल के रूप में जाना जाता है। यह काल साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है, जिसे स्वर्णयुग की संज्ञा भी दी गई है। वैसे तो अधिकतर भारतीय भाषाएँ सन 1000 से 1300 के बीच में उभरकर आईं; किंतु साहित्यिक भाषा के रूप में लेकिन उन्हें व्यापक मान्यता नहीं मिली थी। भक्तिकाल में एक लंबे अंतराल के बाद भारतीय साहित्य में देशी भाषाओं की प्रतिष्ठा हुई। संस्कृत के बाद क्रमश: पालि, प्राकृत और अपभ्रंश प्रकाश में आईं, जो वस्तुत: जनभाषाएँ नहीं थी; अपितु विशेष धर्मों की वाहक भाषाएँ थी। जहाँ-जहाँ बौद्ध धर्म फैला वहाँ पालि के केंद्र स्थापित हुए। जहाँ भी जैनधर्म का प्रचार हुआ, वहाँ पर प्राकृत या अपभ्रंश के प्रयोग को मान्यता मिली। यह धार्मिक केंद्र उत्तर भारत में ही नहीं दक्षिण भारत में भी थे। इन भाषाओं में धर्मनिरपेक्ष साहित्य या तो रचा ही नहीं गया या बहुत कम रचा गया। हालाँकि प्रादेशिक भाषाओं का काव्य सच्चे अर्थों में सार्वजनिक था क्योंकि वह सीधे जनता के हृदय से फूटा था और इसके रचयिता ब्राह्मण से लेकर शूद्र-चांडाल तक सभी वर्ग के लोग थे। दक्षिण से प्रेरणा ग्रहण कर यह आंदोलन न केवल हिंदी प्रदेश में अपितु सिंध, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, असम और उड़ीसा तक फैल गया। संपूर्ण भारत में भक्त कवियों की बाढ़-सी आ गई। समाज के हर वर्ग में इस नई जागरण की गूँज उठी। स्त्रियों ने भी इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इस आंदोलन ने जनसाधारण को जितना प्रभावित किया, उतना किसी अन्य पूर्ववर्ती आंदोलन ने नहीं। इतने व्यापक स्तर पर यह अखिल भारतीय नवजागरण भारतीय ही नहीं विश्व साहित्य में बेजोड़ है। इसी साहित्य के प्रादेशिक भक्तों में श्रीमंत शंकरदेव का इस अध्याय में विशेष अध्ययन किया जा रहा है; जिनके भक्तिकाव्य के माध्यम से विद्यार्थी उनके भाव,विचार और दर्शन आदि को समझ सकेंगे।

13.2 भारतीय साहित्य : अभिप्राय और स्वरूप

भारतीय साहित्य की बात करते हुए यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि क्या भारतीय साहित्य केवल हिंदी भाषा में लिखा गया है या वह भारत की अन्य भाषाओं में भी लिखा गया है, जो अलग-अलग स्थानों पर देश में प्रचलित अनेक भाषाओं में विद्यमान है। क्या उन भाषाओं के साहित्य को भी भारतीय साहित्य में शामिल किया जा सकता है जो मूल रूप से तो विदेशी हैं; परंतु जिनमें साहित्य का उन्नयन भारतीय परिस्थितियों और साहित्य के अनुरूप हुआ है। वस्तुत: साहित्य शब्द के पूर्व भारतीय विशेषण का लग जाना स्वत: ही यह संकेत कराता है कि भारतीय साहित्य वह सब कुछ है जो भारत में प्रचलित सभी देशी-विदेशी व क्षेत्रीय भाषाओं में देश की परिस्थितियों और संस्कृति के अनुरूप लिखा गया है। भारत एक विशाल देश है, उसकी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृति अत्यधिक समृद्ध है और उसकी सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जहाँ तक भारतीय साहित्य की विराटता और व्यापकता का प्रश्न है, तो इस संबंध में यही कहा जा सकता है कि वह अगाध एवं अपार है। यदि वैदिक काल से लेकर 21वीं शताब्दी तक भारतीय भाषाओं में रचित ग्रंथों को एक-एक रत्न मान लिया जाए तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी की समृद्धि के मामले में भारतीय साहित्य हिंद महासागर से भी अधिक समृद्ध है।

भारत एक विशाल देश है, जिसमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं उत्तर पश्चिम भारत में पंजाबी, हिंदी और उर्दू; पूर्वी भारत में उड़िया, बंगला और असमिया; मध्य पश्चिमी भारत में मराठी और गुजराती तथा दक्षिण भारत में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं का विशेष स्थान है। सबका अपना साहित्य है, इसके अतिरिक्त अन्य भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं विशेषकर अंग्रेजी आदि में भी साहित्य रचना हुई है।

क्या आप जानते हैं कि..
भारतीय साहित्य का निर्माण केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं अंग्रेज़ी भाषा में भी हुआ है|

जिस प्रकार भारत में विविधता में एकता स्पष्ट दिखाई देती है, ठीक उसी प्रकार भारतीय साहित्य भले ही अलग-अलग भाषाओं में रचित है; परंतु उसमें भी समानता देखी जा सकती है। इस संदर्भ में डॉ. नगेंद्र ने ठीक कहा है कि जिस प्रकार अनेक धर्म, विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता और संदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज संभव है। भारतीय साहित्य का प्रचार और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिक एकता और भी रमणीय है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय साहित्य का मूल प्रेरणा स्रोत संस्कृत साहित्य रहा है; जिसमें रामायण, महाभारत, पुराण, वैष्णव भक्ति आदि को विषय वस्तु का मूल आधार बनाया गया है। भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों में व्यापक भिन्नता के कारण उसमें छिटपुट अंतर भी आ गया है; फिर भी भारतीय साहित्य में एकरूपता दिखाई देती है, न केवल विषय वस्तु बल्कि कार्य-शैली व काव्य-रूपों में भी समानता देखी जा सकती है।

वस्तुतः भारतीय साहित्य की विराटता हमें दार्शनिक आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ती है। कोई भी राष्ट्र इन्हीं मूल्यों के आधार पर गरिमा पाता है, अपना अस्तित्व बनाए रखता है; लेकिन आज बड़े दुख की बात है कि भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण भारतीय मूल्यों की अवहेलना हो रही है, इसीलिए भारतीय साहित्यकारों का अध्ययन करके हम अपनी भारतीय संस्कृति और मूल्यों की पहचान सकते हैं, उसकी गरिमा को अपना सकते हैं और भारत को पुनः एक सुदृढ़ आदर्श राष्ट्र बना सकते हैं।

13.3 श्रीमंत शंकरदेव (आसाम के भक्त-कवि)

13.3.1 जीवन

आसाम को पौराणिक युग में प्राग्ज्योतिषपुर कहते थे। 13वी शती में ब्रह्मदेश से आहम जाति के लोगों ने आकर कामरूप राज्य पर अधिकार प्राप्त किया। 'आहम' नाम से इस राज्य का नाम 'आसाम' नाम पड़ा। आसाम प्रान्त में कायस्थ जाति में कुसुम्बरा नाम के एक सहृदय व्यक्ति बड़े ही शिवभक्त थे। शंकरजी के प्रसाद से 1449 ई० में उन्हें एक परमरूपवान् और शुभलक्षणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता ने उसका नाम 'शंकर' रखा। शंकर बड़े ही प्रतिभाशाली और होनहार बालक थे। बाल्यावस्था में ही अपने अलौकिक सद्गुणों के कारण वे आसपास के गाँवों में प्रसिद्ध हो गये थे। असम के प्रसिद्ध भक्त-कवि श्रीमंत शंकरदेव का जन्म नवगाँव ज़िले में बरदौवा के समीप अलिपुखुरी में हुआ। इनकी जन्मतिथि अब भी विवादास्पद है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

यद्यपि प्राय: यह 1371 शक मानी जाती है। जन्म के कुछ दिन पश्चात् इनकी माता सत्यसंध्या का निधन हो गया। 21 वर्ष की उम्र में सूर्यवती के साथ इनका विवाह हुआ। मनु कन्या के जन्म के पश्चात् सूर्यवती परलोकगामिनी हुई।

श्रीमंत शंकरदेव ने 32 वर्ष की उम्र में विरक्त होकर प्रथम तीर्थयात्रा आरंभ की और उत्तर भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन किया। रूप और सनातन गोस्वामी से भी शंकर का साक्षात्कार हुआ था। तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् श्रीमंत शंकरदेव ने 54 वर्ष की उम्र में कालिंदी से विवाह किया। तिरहुतिया ब्राह्मण जगदीश मिश्र ने बरदौवा जाकर श्रीमंत शंकरदेव को भागवत सुनाई तथा यह ग्रंथ उन्हें भेंट किया। श्रीमंत शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ 'महानाट' के अभिनय का आयोजन किया। इसके पूर्व 'चिह्नयात्रा' की प्रशंसा हो चुकी थी।

श्रीमंत शंकरदेव ने 1438 शक में भुइयाँ राज्य का त्याग कर अहोम राज्य में प्रवेश किया। कर्मकांडी विप्रों ने श्रीमंत शंकरदेव के भक्ति प्रचार का घोर विरोध किया। दिहिंगिया राजा से ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि शंकर वेदविरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। कतिपय प्रश्नोत्तर के पश्चात् राजा ने इन्हें निर्दोष घोषित किया। हाथीधरा कांड के पश्चात् श्रीमंत शंकरदेव ने अहोम राज्य को भी छोड़ दिया। पाटवाउसी में 18 वर्ष निवास करके इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 67 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 97 वर्ष की अवस्था में इन्होंने दूसरी बार तीर्थयात्रा आरंभ की। उन्होंने कबीर के मठ का दर्शन किया तथा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस यात्रा के पश्चात् वे बरपेटा वापस चले आए। कोच राजा नरनारायण ने श्रीमंत शंकरदेव को आमंत्रित किया।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्रीमंत शंकरदेव का धर्म जनधर्म था। उसे राजकीय धर्म बनाना उन्हें अभीष्ट न था। इसी कारण किसी राजाको 'शरण' देने के वे समर्थक न थे। पर मधुपुर में रहते समय राजा नरनारायण ने उनसे 'शरण' लेने की इच्छा प्रकट की। राजा नरनारायण को 'शरण' देने की बात भी वे टालते गये पर नरनारायण भी अड़ गये। आदर्श के पक्के श्रीमंत शंकरदेव बड़ी द्विविधा में पड़ गये, आखिर कल विचार किया जाएगा, कहकर वे चले गए। कहा जाता है कि उसी रात को एक फोड़े के दर्द को निमित्त बनाकर उनके आराध्य श्रीकृष्ण ने उन्हें वैकुण्ठवासी बना दिया और उस द्विविधा से मुक्ति दिला दी । इस प्रकार 120 वर्ष की लम्बी आयु बिताकर भारतवर्ष के अन्यतम महान् धर्म प्रचारक, चिन्तक, समाज-संगठक, द्रष्टा एवं महापुरुष श्रीमन्त श्रीमंत शंकरदेव अपने आराध्य से जा मिले। कूचबिहार में 1490 शक में वे वैकुंठगामी हुए। उन्होंने योगबल से देहत्याग कर दिया।

क्या आप जानते हैं कि शंकरदेव कुशल तर्कशास्त्री थे..

माधवदेव कट्टर शाक्त थे। एक बार उन्होंने देवी से मनौती कर ली थी। इसी कारण देवी को बलि चढ़ाने के उद्देश्य से अपने बहनोई गयापाणि से एक अच्छा सा बकरा ला रखने को कहकर वे व्यापार में निकल गये। लौटने पर उन्होंने बहनोई से पूछा- 'बकरा ले आये हैं या नहीं?' इसी बीच गयापाणि ने वैष्णव-धर्म में शरण ले ली थी और शंकरदेव के अनुयायी बन गये थे, अतः उन्होंने बकरा- बलि देने का विरोध किया। माधवदेव ने भी अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। वे बहनोई पर बिगड़ पड़े। दोनों में देर तक बहस चली । अन्त में गयापाणि ने कह दिया- 'मुझसे तो तुम बढ़-चढ़कर वाद-विवाद कर रहे हो, पर शंकरदेव के सामने जाते ही तुम्हारी ज़बान बन्द हो जायगी।'

माधवदेव आवेश में शंकरदेव से भी बहस करने के इरादे से चल पड़े। शंकरदेव के समीप पहुँच कर उनकी सौम्यमूर्ति देख, अभिभूत से होकर उन्होंने चरणों में प्रणाम किया। सच्चे गुरु की दृष्टि भी बड़ी पैनी होती है। शंकरदेव को भी लगा कि उनके पास एक ऐसा व्यक्ति आया है जो दूसरों से भिन्न है। दोनों में देर तक शास्त्रार्थ चलता रहा। और अन्त में शंकरदेव ने निम्नाङ्कित श्लोक सुनाया-

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

'जिस तरह वृक्ष के मूल या जड़ में पानी डालने से उसके तने से लेकर डालियाँ – टहनियाँ तक तृप्त हो जाती हैं और जिस तरह प्राण को आहार देने पर सारी इन्द्रियाँ भी तृप्त हो जाती हैं, उसी तरह एकमात्र श्रीकृष्ण की आराधना से अन्य समस्त देवी-देवता भी सन्तुष्ट हो जाते हैं; क्योंकि परात्पर ब्रह्मरूपी श्रीकृष्ण ही सबके मूल हैं।' और तब माधवदेव निरुत्तर हो गये। उनके ज्ञान - नेत्र खुल गये। उन्होंने विनम्रतापूर्वक शंकरदेव का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और गुरु - निर्देशित 'एक शरणीया कृष्ण-भक्ति' के प्रचार में जुट गये। शंकरदेव को भी माधवदेव जैसा शिष्य मिलने पर धर्म प्रचार में नया बल मिल गया था। दोनों के इस परम पावन

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सम्बन्ध जुड़ने को असम के वैष्णव धर्म के इतिहास में 'मणि - काञ्चन - संयोग' कहा जाता है। गुरु में आजीवन एकनिष्ठ भक्ति-भावना रखनेवाले माधवदेव धर्म प्रचार में भी उनके दाहिने हाथ बन गये । माधवदेव भक्ति-साधक, संगीतज्ञ एवं संगठक तो थे ही, शंकरदेव-जैसे ही अतुल काव्य-प्रतिभा के अधिकारी भी थे।

इसके पश्चात् आसाम में वैष्णव धर्म के दो पृथक सम्प्रदाय हो गये। माधवदेव के अनुयायी 'महापुरुषीय' वैष्णव और दामोदरदेव के अनुयायी 'दामोदरीय' वैष्णव के नाम से अभिहित हुए । श्रीमंत शंकरदेव के पुत्र हरिदेव ने भी एक सम्प्रदाय चलाया, जो 'हरिदेवीय' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमंत शंकरदेव के वैष्णव संप्रदाय का मत एक शरण है। इस धर्म में मूर्तिपूजा की प्रधानता नहीं है। धार्मिक उत्सवों के समय केवल एक पवित्र ग्रंथ चौकी पर रख दिया जाता है, इसे ही नैवेद्य तथा भक्ति निवेदित की जाती है। इस संप्रदाय में दीक्षा की व्यवस्था नहीं है।

13.3.2 रचनाएँ

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और मेधा के प्रभाव से अल्पकाल में ही शास्त्राभ्यास करके श्रीमंत शंकरदेव ने गुरुदक्षिणा देकर गुरु से विदा ली। उसके बाद वे योगसाधना में लग गये और निरन्तर अभ्यास से साधना में उनकी अच्छी प्रगति हुई। उनको कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हुईं; परंतु इससे उनकी तुष्टि न हुई और उन्होंने योगाभ्यास का परित्याग करके श्रीमद्भागवतगीता और वेदान्त आदि का अनुशीलन करना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप उनका आत्मचिन्तन बढ़ने लगा और उनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण भक्ति ही जीव के लिये एकमात्र गति है। अब उनका जीवन भक्तिस्रोत में प्रवाहित होने लगा और उन्होंने श्रीकृष्ण-भक्ति का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

शंकरदेव द्वारा रचित

प्रथम कविता निम्नलिखित है-

करतल कमल कमल दल नयन।
भबदब दहन गहन बन शयन॥
नपर नपर पर सतरत गमय।
सभय मभय भय ममहर सततय॥
खरतर बरशर हत दश बदन।
खगचर नगधर फनधर शयन॥
जगदघ मपहर भवभय तरण।
परपद लय कर कमलज नयन॥

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उनके अनन्य उपास्यदेव एकमात्र द्विभुजधारी मुरली मनोहर श्रीकृष्ण थे। चारों ओर उनकी ख्याति हो गयी और लोग उनके शिष्य बनकर कृष्ण-भक्ति का रसास्वादन करने लगे। 34 वर्ष की अवस्था में वे तीर्थभ्रमण करने के लिये निकले और काशी, गया, वृन्दावन, मथुरा, बदरिकाश्रम, द्वारका, रामेश्वरम् आदि तीर्थो का दर्शन करते तथा अनेकों विद्वान् तथा धार्मिक संतों से शास्त्रालोचना करते हुए घर लौटे। एक दिन उनका माधव नामके एक विशिष्ट पण्डित से साक्षात्कार हुआ। वे शाक्तमत के अनुयायी थे। श्रीमंत शंकरदेव से उनका शास्त्रार्थ हुआ। श्रीमंत शंकरदेव के पाण्डित्य और भक्तिभावना का माधव के ऊपर प्रभाव पड़ा और उन्होंने वैष्णव धर्म स्वीकार करके उनसे दीक्षा ले ली। आगे चलकर दामोदर नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण उनके शिष्य बने। दामोदरदेव के द्वारा ब्राह्मणों में वैष्णवधर्म का प्रचार होने लगा । हरिदेव नामक एक और विद्वान् ब्राह्मण श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य बनकर वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए और आसाम में श्रीकृष्णभक्ति का प्रचार करने लगे। इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्यों के द्वारा आसाम में चारों ओर वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ और कृष्णभक्ति आसाम की भूमि परिप्लावित हो उठी। पश्चात् श्रीमंत शंकरदेव दूसरी बार अपने शिष्यों को साथ लेकर तीर्थ भ्रमण के लिये निकले और दक्षिण के अनेक तीर्थों का भ्रमण करते हुए पुरी में आये। वहाँ उनका श्रीचैतन्य महाप्रभु से समागम हुआ कुछ दिन पुरी में निवास करके और श्रीचैतन्य महाप्रभु के सत्संग का लाभ उठाकर वे अपनी शिष्य मण्डली के साथ आसाम लौट आये।

मार्कंडेय पुराण के आधार पर श्रीमंत शंकरदेव ने 615 छंदों का हरिश्चंद्र उपाख्यान लिखा। 'भक्तिप्रदीप' में भक्तिपरक 308 छंद हैं। इसकी रचना का आधार गरुड़ पुराण है। हरिवंश तथा भागवत पुराण की मिश्रित कथा के सहारे इन्होंने 'रुक्मिणीहरण' काव्य की रचना की। शंकरकृत कीर्तनघोषा में ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण तथा भागवतपुराण के विविध प्रसंगों का वर्णन है। वामन पुराण तथा भागवत के प्रसंगों द्वारा 'अनादिपतनं' की रचना हुई। अंजामिलोपाख्यान 426 छंदों की रचना है। 'अमृतमंथन' तथा बलिछलन का निर्माण अष्टम स्कंद की दो कथाओं से हुआ है। 'आदिदशम' कवि की अत्यंत लोकप्रिय रचना है जिसें कृष्ण की बाललीला के विविध प्रसंग चित्रित हुए हैं। 'कुरुक्षेत्र' तथा 'निमिमनसिद्धसंवाद' और 'गुणमाला' उनकी अन्य रचनाएँ हैं। उत्तरकांड रामायण का छंदोबद्ध अनुवाद उन्होंने किया। विप्रपत्नीप्रसाद, कालिदमनयात्रा, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण नाटक, पारिजात हरण, रामविजय आदि नाटकों का निर्माण श्रीमंत शंकरदेव ने किया। असमिया वैष्णवों के पवित्र ग्रंथ 'भक्तिरत्नाकर' की रचना इन्होंने संस्कृत में की। इसमें संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है। इनके अन्य काव्यों में गजेन्द्र उपाख्यान, कुरुक्षेत्र, गोपी और उद्धव संवाद और कृष्ण प्रयाण-पाण्डव निर्वारण प्रसिद्ध हैं। गीतों में इन्होने बरगीत, भटिमा (देवभटिमा, नाटभटिमा, राजभटिमा) टोटय, चपय आदि लिखे।

श्रीमंत शंकरदेव ने 'महाधर्म' नाम से जिस धर्म का प्रचार किया था उसमें कृष्ण लीलाओं को प्रधान रूप से स्थान दिया था। श्रीमंत शंकरदेव ने अपने 'भक्ति रत्नाकर' नामक ग्रंथ में कृष्ण भक्ति नानाविध लीलाओं का गान किया है। यह मूल ग्रंथ संस्कृत भाषा में है जिसकी असमिया अनुवाद श्री रामचरण ठाकुर ने किया। वैष्णव भक्तों में तीन अन्य ग्रंथ और प्रचलित हैं जिनके नाम कीर्तन, दर्शन और नामघोष हैं। इन तीनों ग्रंथों

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

के नामों से ही वैष्णव भक्ति का संकेत मिल जाता है। नवधा भक्ति में स्वीकृत श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि को ही इनमें प्रमुख स्थान दिया गया है। श्रीमंत शंकरदेव ने भागवत पुराण को अपना उपजीव्य ग्रंथ बनाकर भक्ति विषयक विचार प्रस्तुत किए हैं। आत्म-समर्पण की भावना की स्वीकृति होने से यह भक्ति संप्रदाय अन्य वैष्णवों से कुछ भिन्न लक्षित होता है किंतु मूल विचार में भेद नहीं है। इनकी भक्ति में दास्य भावना का प्राधान्य है। दास्य भावना की भक्ति के कारण इन भक्तों को 'शरणिया' शब्द से अभिहित किया जाता है । शरणिया कोटि की भक्ति का प्रचार श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य माधवदेव ने बड़े उत्साहपूर्वक किया। माधवदेव ने कृष्ण-भक्ति साहित्य की रचना द्वारा भी इस वैष्णव भक्ति को असम में लोकप्रिय बनाया। श्रीमंत शंकरदेव के असमिया नाटक भी प्रचार में सहायक सिद्ध हुए।

13.3.3 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द/वाक्य में दीजिए-

(क) श्रीमंत शंकरदेव किस प्रकार की भक्ति करते थे?

(ख) श्रीमंत शंकरदेव किस भक्त/संत के समकालीन थे?

(ग) श्रीमंत शंकरदेव की पत्नियों के क्या नाम थे?

(घ) श्रीमंत शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ किस अभिनय का आयोजन किया?

प्रश्न 2 सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ती कीजिए-

(क) श्रीमंत शंकरदेव के पाण्डित्य और भक्तिभावना का.....पर प्रभाव पड़ा । (माधव/केशव)

(ख) श्रीमंत शंकरदेव ने..... की रचना की है। (वरगीत/बरगीत)

(ग) श्रीमंत शंकरदेव ने.....की रचना संस्कृत में की। (गुणमाला/भक्तिरत्नाकर)

(घ) कोच राजा.....ने श्रीमंत शंकरदेव को आमंत्रित किया। (नरनारायण/दामोदरदेव)

13.4 भक्ति

श्रीमंत शंकरदेव द्वारा रचित साहित्य उस अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन का एक अंग है जिसे भक्ति आन्दोलन कहा गया। महाराष्ट्र में नामदेव, एकनाथ पंजाब में गुरु नानक एवं उत्तर प्रदेश में सूर, कबीर तुलसी एवं दक्षिण में आलवार व नयनार और असम में श्रीमंत शंकरदेव इन सभी रचनाकारों में एक ही

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अन्तश्चेतना प्रवाहित हो रही थी जो समूचे देश को समभाव से देखती थी। श्रीमंत शंकरदेव इस अर्थ में विशिष्ट हो जाते हैं कि उन्होंने केवल साहित्य ही नहीं रचा, सन्देश ही नहीं दिये बल्कि आगे बढ़कर विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा एक प्राणधारा का संचार भी किया।

डॉ रसाल सिंह के अनुसार उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का सबसे अनूठा पक्ष यह है कि उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से न सिर्फ असम बल्कि पूर्वोत्तर क्षेत्र में लोगों के मन में भक्ति के रसायन द्वारा समूचे राष्ट्र के प्रति भावात्मक एकता का सूत्रपात किया। अपने साहित्य में जब वे एक ईश्वर के रूप में कृष्ण को प्रस्तावित करते हैं तो अनायास ही वो लोगों के मानस में नववैष्णववाद का भाव को पैदा करते हैं। अपने साहित्य में जब वे एक ईश्वर के रूप में कृष्ण को प्रस्तावित करते हैं तो अनायास ही लोगों के मानस में गुजरात के द्वारिकापुरी का और ब्रजक्षेत्र में मथुरा-वृन्दावन का असम के अहोम क्षेत्र से ऐसा गहरा लगाव पैदा होता है जो तमाम भौगोलिक उच्चावचनों को एक झटके में पाट देता है। और इस प्रकार यह नववैष्णववाद एक राष्ट्रभाव को पैदा करता है।

श्रीमंत शंकरदेव ने भारत की यात्रा की थी। वे बद्रीनाथ से कन्याकुमारी तक और द्वारिकापुरी से जगन्नाथपुरी तक लगभग सभी प्रसिद्ध स्थानों तक गये थे। इस यात्रा में उन्होंने भारत की विविधता में एकता के दर्शन किये। भारतवर्ष की महान सांस्कृतिक परम्पराओं में अंतर्भूत मौलिक एकात्मवाद को उन्होंने बड़ी गहराई से महसूस किया।

इसी सन्दर्भ में डॉ. महेश्वर नियोग ने लिखा है कि माधवदेव ने 'नामघोष' में रेखांकित किया है कि गारो, भोटा (भुटिया), यवना (मुस्लिम), मीरी, असमा (अहोम) और कछारी मूल के लोगों ने नामधर्म को स्वीकार किया था जो कि शंकरेदव के समय तक हिन्दूवाद परिधि से बाहर थे। अमूल्य रत्न में असम के भक्तों - गोविन्द, (भुटियाभ) कन्डसाई (मुस्लिम) और भट्टदेव (ब्राह्मण) का जिक्र मिलता है जिन्हें श्रीमंत शंकरदेव से स्वयं नामधर्म में परिवर्तित किया था और ये भक्त असम के वैष्णव भक्तों में विशेष सम्माननीय भी रहे हैं।

श्रीमंत शंकरदेव ने जनजातियों को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इनको जागरुक करके नववैष्णववाद के द्वारा समतामूलक समाज की स्थापना में यह एक बड़ा कदम था। यह एकता और अखण्डता के लिए अनिवार्य था।

तमाम विविधताओं के बीच भेद में अभेद का भाव एवं सांस्कृतिक एकता का मंत्र इस यात्रा की बड़ी उपलब्धि रहा जो उनके साहित्य से लेकर सत्र एवं नामघरों तक अन्तरधारा के रूप में प्रवाहित होता है। इसी का परिणाम है कि श्रीमंत शंकरदेव को भारतभूमि से गहरा लगाव है और इसी लगाव के कारण उन्होंने कहा है कि कोटि-कोटि जन्मों के पुण्यों के कारण ही मनुष्य को कभी सौभाग्यवश भारतभूमि पर जन्म मिलता है। वे कहते हैं-

"कोटि-कोटि जन्म अंतरे जाहार
आसे महा पुन्यराशि

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सिषि कदाचित मनुष्य होवय
भारतवरिषे आसि।"

भारत के गौरव को रेखांकित करते हुए भारतवर्ष के प्रति सभी लोगों के मन में एक भक्ति का भाव जगाने एवं उनमें एक दार्शनिक व सांस्कृतिक ऐक्य का भाव पैदा करने में श्रीमंत शंकरदेव की महती भूमिका रही। श्रीमंत शंकरदेव ने उत्तर-पूर्व के लोगों को आपस में मिलाकर उनमें सशक्त राष्ट्र भावना का भाव भरा है। डॉ. सर्वेश्वर राजगुरु ने इसी संदर्भ में कहा है कि किसी व्यक्ति के करोड़ो जन्मों के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप व्यक्ति को भारत में जन्म मिलता है। इस प्रकार असमी लोगों की संस्कृति भारत की संस्कृति का अभिन्न अंग बनती है। श्रीमंत शंकरदेव ने उत्तरपूर्व के लोगों को आपस में - मिलाकर उनमें सशक्त राष्ट्र भाव भरा है भावना का। राष्ट्रीयता विभेदों को तोड़ती है। जाति, धर्म, नस्ल, भाषा, लिंग आदि भेदों को समाप्त करके एकात्मकता का सन्देश देती है। भेदभाव रहित व्यवहार राष्ट्रीयता की पहली शर्त है। वे हरिभक्ति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं मानते–

क्या आप जानते हैं कि श्रीमंत शंकरदेव का 'एकशरणम् नामधर्म' क्या है...

शंकरदेव ने 'एकशरणम् नामधर्म' से असम के छोटे-छोटे समुदायों में बंटे लोगों को आपस में जोड़ा। पुराहित पंथी बाह्याचारों से मुक्ति दिलाने और भारतीय दर्शन और आध्यात्म को लोकभाषा में प्रस्तुत कर मानवधर्म के रूप में नामधर्म का विकास करना उनकी संगठन वृत्ति का ही अंग था। भक्ति उनके लिए सामाजिक संगठन का साधन थी, प्रेमोन्माद अथवा गलित भावुकता नहीं। यहाँ इस तथ्य की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि शंकरदेव के साहित्य में प्राप्त सामाजिक शिष्टाचार के निर्देश प्रायः सर्व-भारतीय हैं। यथा, अभिवादन पद्धति प्रायः समान है। जो व्यक्ति सम्माननीय होते थे उनके लिए 'नमो', 'नमस्ते', 'नमस्कार', 'प्रणाम' आदि संबोधनों का प्रयोग प्रचलित था। साष्टांग दण्डवत और प्रदक्षिणा का भी उल्लेख उनके साहित्य में मिलता है। यह वस्तुतः उनके काव्य में सांस्कृतिक एकात्मकता का ही विस्तार है जो भारत की राष्ट्रीयता के निर्माण की नीव तैयार करता है।

शुना रामायण सबे सभासद यत
हरि भकतरि देखा महत्व।
तृण वन वृक्ष पशु पंतगरो गति
एकोवे न बाछे देखा हरिर भकति।।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्रीमंत शंकरदेव ने 'एकशरणम् नामधर्म' मार्ग सुझाया जिसमें नामस्मरण और कीर्तन का विशेष महत्त्व हैं। भागवतपुराण में उल्लिखित भक्ति के नौ प्रकारों में से दो प्रकार ये भी हैं। इस भक्ति मार्ग में पुजारी की कोई जरूरत नहीं होती है। नाम स्मरण और कीर्तन में भक्त, जो कि भगवान का प्यारा होता है, उच्च और निम्न अथवा पवित्र या अपवित्र के खाँचों में नहीं बँटा होता था। इसमें श्रीमंत शंकरदेव की महती भूमिका है।

श्रीमंत शंकरदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व में राष्ट्रीयता का भाव कूट-कूट कर भरा है। वस्त्र और आभूषणों के नामकरण तक इसका विस्तार है, जिसका एक प्रमाण-'वृन्दावनी चीर' है जिसका उल्लेख साहित्य में एवं सत्र-नामघरों में भी है। श्रीमंत शंकरदेव ने भक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र को जोड़ने का प्रयास किया है।

'महाकवि शंकरदेव विचारक एवं समाज सुधारक' नामक पुस्तक में डॉ. कृष्ण प्रसाद ने रेखांकित भी किया है कि- "उनकी कविता का मूल स्वर मानवतावादी है। **एको छिद्र न घरन्त हरि.... चाण्डाल पर्यन्त करि हरि-भक्ति अधिकारी.... शत्रु मित्र उदासीन सबातो समान** आदि उक्तियाँ उनकी ईश्वर कल्पना को साम्य भाव (साम्यवाद नहीं) तक ले जाती हैं। इनमें उनका मानव-प्रेम ही छलकता दिखायी देता है।"

डॉ. विरिंचित कुमार बरूदा ने 'शंकरदेव : वैष्णव सेंट ऑफ असम', में सही ही लिखा है कि- "श्रीमंत शंकरदेव का महत्त्व एकशरणम के प्रचार-प्रसार द्वारा असम को नवजीवन देने की दृष्टि से तो है ही, साथ ही तत्कालीन असम को शेष भारत से उसकी सांस्कृतिक अंतरंगता और भावात्मक एकता कायम करने में भी है। श्रीमंत शंकरदेव ने जिस सांस्कृतिक एकात्मकता को प्रतिष्ठित और प्रोत्साहित किया है उसमें बरगीत, भाओना, अंकिया नाट के साथ-साथ सत्र और नामघरों की विशेष भूमिका रही है। भारत की सांस्कृतिक चेतना बरगीतों का कथ्य है। भाओना और अंकिया नाट भारत की जातीय संस्कृति को बड़ी सजीवता से प्रस्तुत करते हैं। समाज को समरस और समान बनाने में भाओना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि इसमें जाति भेद नहीं था और किसी भी जाति से संबंध रखने वाला व्यक्ति भाओना के प्रदर्शन में अलग-अलग भूमिकाएँ निभा सकता था।

श्रेय का मार्ग सदैव दुर्गम होता है। श्रेय के मार्ग पर कदम बढ़ाते ही लगातार बाधाओं का सिलसिला शुरू हो जाता है। श्रीमंत शंकरदेव के सम्मुख भी लगातार विरोध की लहरें आने लगीं; पर उनके मन में अविचल आस्था थी और हृदय में ज्ञान की अखण्ड ज्योति जलती रही। अतः वे निर्भीक होकर हर विरोध का सामना करते रहे। कर्म का मार्ग हो या भक्ति का वे अग्रसर होते रहे।

13.5 भाषा

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं है बल्कि यह समूचे सत्ता विमर्श को, सांस्कृतिक परम्पराओं को और सामाजिक स्तरीकरण को भी व्यक्त करती है। श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी संवेदना को व्यक्त करने के लिए भाषा का चयन खूब सोच समझ कर किया है। उन्होंने ब्रजबुलि और असमी भाषा को संस्कृत पर प्रधानता दी। ऐसा करते समय निःसंदेह उनकी दृष्टि भारतवर्ष पर रही होगी और हृदय के केन्द्र में रहा होगा एक राष्ट्र भाव। कहना न होगा कि उनका मूल उद्देश्य समावेशी रहा होगा जो राष्ट्रीयता के लिए बेहद जरूरी है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्रीमंत शंकरदेव ने उत्तर भारत के रामानंद के समान आम आदमी की बोलचाल वाली भाषा को अपने संदेशों और व्याख्यानों आदि के लिये अपनाया और उसे शास्त्रीय भाषा की गरिमा प्रदान की। उन्होंने भागवत पुराण का अध्ययन किया और उसके अंशों को असमी भाषा के गीतों, नाटकों में प्रयोग किया जिससे कि उनकी सीखें आम असमी व्यक्ति को प्रभावित कर सकें। इस प्रकार असमी भाषिक अस्मिता श्रीमंत शंकरदेव के नववैष्णववाद के द्वारा आकार प्राप्त करती है।

क्या आप जानते हैं कि नामघर क्या है...

'नामघर' ईश्वर अराधना के लिए स्थान विशेष था लेकिन डॉ. विमल फूकन अपनी पुस्तक "श्रीमंत शंकरदेव - वैष्णव सेंट आफ आसाम" में लिखते हैं कि "नामघर लोगों का प्रार्थना-घर ही नहीं था। साथ-साथ प्रार्थना करने और विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेने से लोगों में निकटता आई।

यह एक ऐसा स्थान था जहाँ विभिन्न सामाजिक मुद्दे-जिनमें लड़ाई-झगड़े से लेकर समुदाय के विकासपरक मुद्दे तक शामिल थे- पर बहस होती थी। यहाँ समाज के विभिन्न समुदाय के लोग इकट्ठे होते थे और लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा एक निष्कर्ष पर पहुँचते थे। कई आयामों में नामघर ग्रामीण संसद के समान थे।"

यह समावेशी दृष्टिकोण भाषा के चयन तक ही सीमित नहीं था अपितु श्रीमंत शंकरदेव के शब्द-भण्डार में भी इसकी झलक दिखाई पड़ती है। इनका काव्य लोकचेतना से संबंधित और अनुप्राणित था अतः लोकचेतना के प्रतीक स्वरूप देशज शब्दों का भी भरपूर प्रयोग मिलता है। उनमें असम की विभिन्न जनबोलियों के भी अनेक शब्द मिलते हैं। तद्भव और देशज शब्दों के उदाहरणस्वरूप ये शब्द देखे जा सकते हैं - छाति (छत्र), नेत (वस्त्र विशेष), तेतिक्षण (तत्क्षण), दरिशन (दर्शन), थान (स्थान), तंभ (स्तंभ), मेथोन (गाय- जातीय पशु), मातिला (बुलाया), डाकि (पुकार), बोवाली (हाहाकार), ऐरि (त्यागना) आदि।

श्रीमंत शंकरदेव की काव्य भाषा के कुछ पद देखिए-

भकति सुखत यार निमजिल मन ।
क्षुद्र स्वर्ग सुखे तार किबा प्रयोजन ॥
यिटो क्रीड़ा करे अमृतर सागरत ।
तार किबा काम आछे बृष्टिर जलत ॥
गर्त्तर जलर सम स्वर्ग सुखचय ।
इहात तोमार प्रयोजन नाहिकय ॥

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तप जप संन्यास परम महादाने।
नपावे आमाक सखि योग महाज्ञाने ॥
केवले भकति एक मोक करे वश्य ।
कहिलो उद्धव इटो परम रहस्य ॥

विष्णु वैष्णवर कथा दुयो समतुल ।
श्रवण कीर्तन करे पापक निर्म्मूल ।।
चांडाल पर्यन्ते करे सबाके पवित्र ।
जानि निरन्तरे सुना बैष्णव चरित्र ।।

श्रीमंत शंकरदेव ने अपने साहित्य की रचना के लिए जिस भाषा का चयन किया है यह भी उनके राष्ट्रबोध को अभिव्यक्त करता है। उनके द्वारा साहित्य रचना में प्रयोग की जाने वाली "ब्रजबुलि" वस्तुतः असमी भाषा और ब्रजभाषा के मिलन से बनने वाली भाषा है। ब्रजबुलि की ब्रजभाषा से ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक एवं शाब्दिक स्तर की समानता एक समान मानसिक परिवेश का निर्माण करती है।

13.5.1 बोध प्रश्न

प्रश्न 1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द/वाक्य में दीजिए-

(क) श्रीमंत शंकरदेव का 'एकशरणम' से क्या अभिप्राय है?

(ख) श्रीमंत शंकरदेव के समावेशी दृष्टिकोण पर विचार कीजिए?

(ग) श्रीमंत शंकरदेव ने किस भाषा में भक्ति का काव्य लिखा?

(घ) श्रीमंत शंकरदेव की कविताओं में निहित राष्ट्रीय भावना का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न 2. सही शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ती कीजिए-

(क) श्रीमंत शंकरदेव की भाषा में 'डाकि' का अर्थ है.....(डकार/पुकार)

(ख) श्रीमंत शंकरदेव ने..... की स्थापना की । (दानघरों/नामघरों)

(ग) दक्षिण में आलवार व नयनार और.....में श्रीमंत शंकरदेव प्रसिद्ध भक्त हैं। (उड़ीसा/आसाम)

13.6 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य में संतों और भक्त-कवियों का बहुत बड़ा योगदान है। हिन्दी भाषी कवियों की भाँति अहिन्दी भाषी कवियों ने भी काव्य सृजन कर भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। भाषागत स्तर पर चाहे ये काव्य विविध रूप में दिखते हों लेकिन इन सबका मूल एक ही है। इन्हीं की सुगंधी से सारा हिन्दी ही नहीं भारतीय साहित्य महक रहा है। इसी क्रम में आसाम के प्रमुख

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भक्त श्रीमंत शंकरदेव की भक्ति भावना से ओत प्रोत काव्य सम्पूर्ण भारत को राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँधता दिखाई देता है।

13.7 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालिए?
2. भक्त कवियों में श्रीमंत शंकरदेव का स्थान निर्धारित कीजिए?
3. श्रीमंत शंकरदेव की भाषा का विश्लेषण कीजिए?
4. "भक्तिकाव्य ने ही अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्र को जोडने का कार्य किया है" – कथन की समीक्षा कीजिए?

13.8 संदर्भ-ग्रंथ

- *राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य* – डॉ. शशि तिवारी
- *राष्ट्रीय एकता और भारतीय साहित्य* – योगेन्द्र गोस्वामी
- *राष्ट्रीयता* – बाबू गुलाबराय
- *शंकरदेव के गीतों के राग पर आधारित गीतों का अध्ययन* – जयंत कुमार बोरो
- *महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव* – राम निरंजन
- *संत साहित्य की परख* – आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
- *भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास* – डॉ नगेन्द्र
- *भारत की संत परम्परा और सामाजिक समरसता* – डॉ कृष्ण गोपाल
- *महाकवि शंकरदेव विचारक एवं समाज सुधारक* - डॉ कृष्ण प्रसाद
- *शंकरदेव : वैष्णव सेंट ऑफ असम* - डॉ. विरिचित कुमार बरूदा
- https://www.wikiwand.com
- https://hi.m.wikipedia.org
- https://www.studywithgyanprakash.com

© DDCE, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई III : मानव मूल्य और भक्ति

मानव मूल्य का अर्थ

डॉ. वंदना
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (तदर्थ)
हिंदी विभाग,
श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.1 अधिगम का उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 मानव की संकल्पना
1.4 मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ
1.5 मानव मूल्य का अर्थ एवं अवधारणा
1.5.1 बोध प्रश्न
1.6 साहित्य, संस्कृति और मानव मूल्य
1.6.1 बोध प्रश्न
1.7 मूल्य परिवर्तन के कारण और प्रभाव
1.8 मानव मूल्यों का महत्व
1.9 निष्कर्ष
1.10 अभ्यास प्रश्न
1.11 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.1 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित को कर सकने में सक्षम होंगे-

- मूल्य का अर्थ समझेंगे।
- मानव मूल्यों की आवश्यकता को समझ पाएंगे।
- मानव मूल्यों के महत्व को जान पायेंगे।
- मानव मूल्यों में आने वाले परिवर्तनों और उसके प्रभावों से अवगत हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- भारतीय समाज और संस्कृति में मूल्य-चिंतन का समझ सकेंगे।
- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मूल्यों के परिवर्तन और विकास के मुख्य आधारों से परिचय प्राप्त करेंगे।
- नैतिक मूल्यों-संवेदनाओं के मर्म को समझेंगे।
- अपने जीवन में इन मूल्यों को आत्मसात करने के महत्त्व को समझे पाएंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में मानव मूल्यों को बहुत महत्त्व दिया गया है। मानव मूल्य व्यक्ति के नैतिक आचरण को समाज के साथ व्यवस्थित करते हैं, जिनसे समाज के व्यापक हित जुड़े होते हैं। हमारी संस्कृति में मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ बताया गया है पर क्या केवल मनुष्य रूप में जन्म लेने से ही हमारा जीवन श्रेष्ठ बन जाएगा, इस पर भारतीय दर्शन और चिंतन ने पर्याप्त चिंतन किया है। वे मानव मूल्य ही हैं जो मनुष्य को अन्य जीवों से अलग बनाते हैं। मानव मूल्य मनुष्य के नैतिक आचरण और सर्वकल्याण की भावना को परिष्कृत करके मानव को एक बेहतर मनुष्य वनाते हैं। मानव मूल्यों के अनेक संदर्भ हैं। ये संदर्भ व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व से जुड़कर आदर्श रूप से प्रगति की ओर अग्रसरित करते हैं। भारत अनेक संस्कृतियों को आत्मसात करके चलने वाला देश है। यह विविधता हमारे देश की विशेषता है। ये हमारी भारतीय संस्कृति के वे विशिष्ट मानव मूल्य ही हैं जो सामाजिक संस्कृति और इतनी विविधताओं के बावजूद हमें निरंतर प्रगतिशील बनाये हुए हैं। आधुनिक युग और वर्तमान परिवेश में मानव मूल्यों में परिवर्तनों के प्रमुख कारणों और उनके परिणामों को भी यहाँ समझा जा सकता है। जब हम कहते हैं कि समाज आज पतनशील है और नैतिक ह्रास बढ़ता जा रहा है तो इसके पीछे मानव मूल्यों की उपेक्षा को स्पष्ट देखा जा सकता हैं। समाज और राष्ट्र की प्रगति के साथ ही साथ विश्व सद्भाव को भी इन मानव-मूल्यों द्वारा सहेजा और संवारा जा सकता है। मूल्य से संबंधित आवश्यक तत्त्वों को समझते हुए उसके सकारात्मक और नकारात्मक आयामों को भी समझना चाहिए। मानव मूल्यों की अर्थवत्ता को समझते हुए उसकी कसौटी को भी जानना आवश्यक है। आधुनिक जीवन शैली की आपा-धापी और बाज़ारवाद की बढ़ती चकाचौंध के बीच इन मानव मूल्यों की प्रासंगिकता और बढ़ गई है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव मूल्यों का अर्थ समझते हुए हम अपने जीवन में उन्हें आत्मसात् करें। मानव मूल्य का अर्थ, क्षेत्र और अवधारणा बहुत व्यापक है। इस अध्याय के अंतर्गत इन्हें समझने और चिंतन के लिए आपको एक आधार मिलेगा.

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.3 मानव की संकल्पना

मनुष्य आदिकाल से वर्तमान समय तक अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए सतत गतिशील रहा है। मानव की उत्पत्ति और विकास संबंधी अवधारणाओं का अध्ययन करते हुए इसे समझा जा सकता है। जीव के रूप में चार पैरों से लेकर दो पैरों पर चलने और सीखने-समझने की मानव यात्रा बहुत लंबी और रोचक है। इस यात्रा में वह कई अवस्थाओं से गुजरा है। इन अवस्थाओं में मानव की शारीरिक अवस्था के साथ ही साथ मानसिक अवस्था में भी विकास एवं परिवर्तन होता रहा है। मानव भौतिक जगत के साथ-साथ चिंतन के क्षेत्र में भी वह गतिशील रहा है। मानव सृष्टि के आरंभ से आधुनिक समय तक परिस्थितियों के साथ संघर्ष करते हुए मनुष्य अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कई तरह के मूल्यों का पालन करते हुए आगे बढ़ा है.

1.4 मूल्य शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ

मानव मूल्यों पर चर्चा करने से पूर्व हमें मूल्य शब्द का अर्थ भी समझना होगा। 'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'मूल' धातु के साथ 'यत्' प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ है – जो मूल में हो, प्रतिष्ठा के योग्य। अर्थशास्त्र में मूल्य का अर्थ वस्तु के बाज़ार भाव से है। नीतिशास्त्र में 'मूल्य' से अभिप्राय मानवीय क्रियाओं और आचार-व्यवहार में अच्छाई से है, जिसे सामाजिक आदर्श और व्यक्तिगत उच्चता आदि से जोड़ा जा सकता है। 'मूल्य' का एक पर्याय 'वैल्यू' है, जो लैटिन भाषा के 'वैलारे' से बना है, जिसका अर्थ है – अच्छा, सुंदर, उपयोगी, उत्तम। अत: कहा जा सकता है कि जो कुछ भी वांछित है, उपयोगी और उत्तम है, वही मूल्य है। हालाँकि मूल्य का कोई एक निश्चित अर्थ भी हम इन आधारों के माध्यम से नहीं निकाल सकते हैं। कई बार इनमें विरोधाभास भी हो सकता है, जिन्हें पाठ में आगे चलकर हम समझने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि 'मानव मूल्य' के अर्थ विस्तार की इस प्रक्रिया में नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान का भी पर्याप्त योगदान है.

1.5 मानव मूल्य का अर्थ एवं अवधारणा

विद्वानों के अनुसार मूल्य वह वैचारिक इकाई है, जिसे आधार बनाकर मनुष्य अपना जीवन जीता है और इससे उसे स्वयं तथा उसके साथ ही साथ समाज को भी उपलब्धियाँ प्राप्त होती है। मानव मूल्य का अर्थ उस विवेक से भी लिया जा सकता है जिसका प्रयोग मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य से पूर्व लिए गए निर्णय में करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसके प्रत्येक कार्य का प्रभाव

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसके व्यक्तिगत जीवन के साथ ही साथ समाज पर भी पड़ता है। मानव मूल्य उसके व्यवहार को नियंत्रित करते हुए उसे और बेहतर करने की संभावना को बढ़ा देते हैं। इसे मंगल भावना के विस्तार के रूप में भी समझा जा सकता है। जहाँ व्यक्ति, परिवार, परिवेश, समाज और राष्ट्र की इकाईयाँ परस्पर जुड़ी होने के कारण एक-दूसरे से प्रभावित भी होती हैं। मानवीय मूल्य इन इकाईयों के बीच अधिक से अधिक लोगों के हितों से जुड़ें होते हैं। यह भी समझना होगा कि मानव मूल्य सदैव एक से नहीं रहे। समय, देश काल और परिस्थितियों के अनुरूप उनमें निरंतर परिवर्तन होता रहा है। इस आधार पर इनका विभाजन भी संभव है। जैसे सार्वभौमिक मानव मूल्य और परिवर्तनशील मानव मूल्य। मानव मूल्य शाश्वत भी होते हैं और समसामयिक भी। मानव मूल्यों के अंतर्गत दया, करुणा, प्रेम, सहनशीलता, सत्य, अहिंसा, मैत्री, सहृदयता आदि कुछ शाश्वत मानवीय मूल्य हैं। समसामयिक मूल्यों की चर्चा करते हुए हमें यह समझना होगा कि मनुष्य चेतनशील प्राणी है। जिस तरह वह विभिन्न संस्थाओं का निर्माण करता है उसी प्रकार समय-समय पर इन संस्थाओं में समय की माँग के अनुरूप परिवर्तन और संशोधन भी करता है। समसामयिक मूल्यों की चर्चा इन्हीं संदर्भों में की जा सकती है। जैसे भारतीय संस्कृति में बच्चे ईश्वर की देन और उनका ही स्वरूप माने जाते हैं लेकिन आज बढ़ती जनसंख्या, महंगाई के समय में 'हम दो हमारे दो' या 'बच्चे दो ही अच्छे' जैसे समसामयिक मूल्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है। हमारे समय की सबसे बड़ी आपदा के तौर पर आप कोविड के बाद आये बदलावों को भी देख सकते हैं। 'सामाजिक दूरी का पालन करें' आदि मूल्यों को नागरिकों के सामान्य जीवन का हिस्सा बनाने के लिए प्रयास किया गया। यह उस समय के अनुकूल था। विश्व इस महामारी के दौर में और उसके गुज़र जाने के क्रम में भी अपने लिए बहुत से समसामयिक मूल्यों का निर्माण कर रहा है। इसी तरह समय के साथ आ रहे बदलावों के बीच परिवार, समाज और राष्ट्र की परिवर्तनशील भूमिका में समसामयिक मूल्य अपनी जगह बनाते हैं.

मानव मूल्य, समाज द्वारा स्थापित वे मान्यताएँ हैं जिनमें लोक हितकारी भावना समाहित रहती है। ये मूल्य मनुष्य को उसके परिवार, समाज, राष्ट्र और व्यक्तिगत रूप से भी प्राप्त होते हैं। मूल्य मानव जीवन के लिए साध्य भी हैं और साधन भी। साध्य इस रूप में कि मनुष्य का जीवन मूल्यों के बिना निरर्थक है। मानव जीवन की गरिमा और अर्थ उसे इन मूल्यों द्वारा ही मिलती है इसीलिए एक बेहतर मनुष्य बनने की यात्रा में इन मूल्यों को हमें अपने जीवन में लगातार बनाये रखना चाहिए। भारतीय धर्म और संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन का ध्येय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। मानव जीवन की लक्ष्य प्राप्ति भी इन मूल्यों से ही संभव है। ये मूल्य जीवन के औचित्यपूर्ण व्यवहार से जुड़े

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

हैं। एक व्यक्ति के तौर पर कई बार जो हमें अपने लिए सबसे बेहतर लगता है, हो सकता है कि वह परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए बेहतर न हो। ऐसे समय में मानव मूल्य मनुष्य को उस वांछित और औचित्यपूर्ण व्यवहार और चिंतन के लिए प्रेरित करते हैं जिससे सबके हित जुड़ें होते हैं। स्पष्ट है कि इनका निर्माण सामान्य रूप से न होकर गंभीर और संवेदनशील चिंतन के परिणामस्वरूप हुआ है.

मनुष्य व्यक्तिगत इकाई के तौर पर सबसे पहले अपना भला सोचता है। उसके बाद अपने परिवार का फिर अपने पड़ोस और फिर अपने समाज तथा उसके बाद अपने राष्ट्र का। इस क्रम में उसके 'सर्वहित की भावना' जितनी विस्तृत होती जाती है। उसकी परहित की भावना भी उतनी ही व्यापक होती जाती है। मनुष्य को सही और गलत के बीच के चुनाव का विवेक मानव-मूल्यों द्वारा मिलता है। मानव मूल्य मनुष्य की नैतिकता से जुड़े होने के कारण आदर्श रूप धारण करते हैं। मानव मूल्य चिंतन एवं मानवीय विवेक की विकासशील प्रवृत्ति के परिणाम हैं। विकास की अवस्था में जो मूल्य जितने उपयोगी होंगे, वे अपने समय में उतने ही महत्त्वपूर्ण भी होंगे। मानव मूल्यों में उस मूल्य का महत्त्व उसके उपयोगी होने की शर्त के रूप में सामने आता है। मानव मूल्यों के निर्माण प्रक्रिया के संबंध में विचार करें तो हम देखेंगे कि मूल्य विचार से सिद्धांत और अपनी उपयोगिता के माध्यम से व्यवहार की ओर उन्मुख होते हैं। मानव मूल्य किसी भी समाज, जातीय अस्मिता तथा उसकी संस्कृति के परिचायक और संरक्षक होते हैं।

समय, देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप मानव मूल्यों और नैतिकता की परिभाषा बदलती रहती है। पहले मनुष्य ईश्वर को सर्वोपरि सत्ता मानकर अपने व्यवहार और आचरण को संचालित करता था। आधुनिक समय में विज्ञान और तकनीक ने मनुष्य को भी शक्तिशाली होने का अहसास कराया है। उसकी भूमिका लगातार चेतनशील और समझदार प्राणी के रूप में हो रही है। समझदार या बुद्धिमान होने के बावजूद अन्य जीवों से इतर मनुष्य की मनुष्यता ही उसे श्रेष्ठ सिद्ध करती है। मानवीय मूल्य ही मानव की गरिमा को बनाए रखकर मनुष्यता का संरक्षण करते हैं.

मानव मूल्यों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है लेकिन अध्ययन की सुविधा से इसे कुछ प्रमुख आधारों पर वगीकृत किया जा सकता है। दृष्टिकोण के आधार पर इन्हें सकारात्मक और नकारात्मक मूल्यों में बांटा जा सकता है। इसी प्रकार उद्देश्य के आधार पर साध्य और साधन मूल्यों में। विषय क्षेत्र के आधार पर सामाजिक मूल्य, मानव मूल्य, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य, भौतिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, मनोवैज्ञानिक मूल्य आदि। कार्य क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक मूल्यों, न्यायिक मूल्य तथा व्यावसायिक मूल्य आदि।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मानव मूल्यों का अर्थ और परिभाषा बहुत विशाल है। नैतिकता भी इसी तरह इससे जुड़ी हुई है। इनकी परिभाषा समय, देश और स्थान के आधार पर तय होती है। एक समय में हमारे देश में बाल-विवाह प्रचलन में था लेकिन आज का सभ्य, सुशिक्षित समाज इसे बिल्कुल सही नहीं मानता। इसी तरह सरकार ने भी इसी मूल्य को आधार बनाकर विवाह के लिए बालिग़ होने की उम्र तय की है। इसी तरह पहले की बहुत-सी मान्यताएँ जिन्हें तब समाज अपने आचरण में लाता था, आज बेबुनियाद साबित हुई हैं। शाश्वत मूल्यों की अपेक्षा ये सामाजिक मूल्य निरंतर परिवर्तनशील होते हैं। इसी तरह पारिवारिक मूल्य भी बदलते हैं। पहले जहाँ संयुक्त परिवार आदर्श माने जाते थे और अतिथि को देवता की संज्ञा दी जाती थी। आज शहरी जीवन की आपाधापी के बीच इन मूल्यों का ह्रास भी हुआ है। एकल परिवार का प्रचलन बढ़ा है। घर में मेहमान आने की अवधारणा को बदलते हुए देखा जा सकता है। आप इन उदाहरणों से समझ सकते हैं कि कई बार इस तरह मूल्यों में परिवर्तन सकारात्मक तथा नकारात्मक भी होते हैं। आप अपने आस-पास के उदाहरणों द्वारा भी इस पर चर्चा कर सकते हैं। जाहिर है कि नैतिकता और मानव मूल्य व्यक्ति अपने समाज द्वारा ग्रहण करता है। इसी के साथ इसे वह अपनी सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में भी ग्रहण करता है। कुछ मूल्य हमें विरासत में मिलते हैं तो कुछ हमें संघर्षों द्वारा भी प्राप्त होते हैं। देश की आज़ादी के लिए हमारे देशवासियों ने बहुत संघर्ष किया। देशभक्तों ने इसके लिए अपने प्राणों का भी बलिदान दिया। स्वंतत्रता जैसे मूल्य के लिए हमारे राष्ट्रीय संघर्ष को इतिहास में देखा जा सकता है।

जब हम मानव मूल्यों की चर्चा करते हैं तो कई विचार हमारे मन में आते हैं-

- मनुष्य क्या है ?
- क्या मूल्य बदलते रहते हैं ?
- अगर मूल्य बदलते हैं और मनुष्य वही है तो फिर ऐसे कौन से कारक हैं जो मूल्यों को बदलते हैं?
- हमारे जीवन के अनुभव और उनसे निर्मित पूर्वाग्रह भी कई बार दूसरों को समझने की हमारी क्षमता को प्रभावित करता है। तब क्या मूल्यों के साथ भी यह हो सकता है ?

इन प्रश्नों पर विचार करते हुए हम पाएंगे कि हमारी परिस्थितियाँ भी यह निर्धारित करती हैं कि हम किन मूल्यों को अपनाएंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.5.1 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. मानव मूल्यों के निर्माण और विकास में कौन से कारक अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं?
2. मानव मूल्यों की परिभाषा किस आधार पर बदलती है ?
3. मानवीय मूल्य हमें किस प्रकार प्राप्त होते हैं ?
4. आप अपने आस-पास और जीवन में किन मूल्यों को देखते हैं?

(ख) सही शब्द के चुनाव के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. मानव मूल्य मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित करते हुए उसके द्वारा..... करने की संभावना को बढ़ा देते हैं। (गलत/बेहतर)
2. मानव मूल्य, समाज द्वारा स्थापित वे मान्यताएँ हैं जिनमें ..... भावना समाहित रहती है। (लोक हितकारी/व्यक्ति हितकारी/सरकारी)
3. विकास की अवस्था में जो मूल्य जितने ..... होंगे, वे अपने समय में उतने ही महत्त्वपूर्ण भी होंगे। (अनुउपयोगी/ उपयोगी/सहयोगी)

1.6 साहित्य, संस्कृति और मानव मूल्य

महाभारत, शांतिपर्व में लिखा है, 'न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरो हि किंचित' अर्थात समस्त प्राणियों में मनुष्य ही श्रेष्ठ है। भोजन, निद्रा आदि तो पशु भी करते हैं लेकिन मनुष्य पशु से भिन्न इसी अर्थ में है कि उसके प्रत्येक कर्तव्य-अकर्तव्य के पीछे विवेक की भावना है। अब सवाल यह उठता है कि कौन सा मनुष्य श्रेष्ठ है। भारतीय दर्शन में मनीषियों ने मानव मूल्यों से युक्त मनुष्य को ही श्रेष्ठ बताया है। मूल्य-परायण व्यक्ति ही श्रेष्ठता की कसौटी पर खरा उतरता है। मूल्यों का सृजन-अनुग्रहण मानव जीवन का लक्ष्य है। इसी से परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व सुख-शांति और समृद्धि तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से विकसित होगा। एक बेहतर मनुष्य बनने के क्रम में जिस मार्ग पर चलते हुए वह मूल्यों को अपनाता है, वही मानव मूल्य हैं। मनुष्य की सामाजिक गतिविधियाँ तथा सभी मानवीय क्रियाकलाप विचारों से संचालित होते हैं और ये विचार मानव के संपूर्ण कार्यक्षेत्र को प्रभावित करते हैं। अत: मनुष्य के प्रत्येक विचार, कर्म और कल्पना में मूल्य का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। बहुत से सद्गुण, भाव, स्थितियाँ, आदर्श, मर्यादा, नीति, नियम और भारतीय दृष्टि की मान्यताएँ मानवीय मूल्यों का अंग हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

साहित्य में 'मूल्य' शब्द को केवल समाज कल्याण या व्यापक हित वाले अर्थ तक सीमित नहीं किया जा सकता। कई बार साहित्य में वर्णित आचरण, घटना या व्यक्ति नैतिकता की दृष्टि से ठीक नहीं लगते पर उनका मूल्य होता है। घटनाओं के पीछे दिए गए तर्क या वर्णन की विशेषता से भी पाठक या श्रोता के मन में यह विश्वास उत्पन्न होता है कि यह घटना, व्यक्ति या उसका कर्म अनैतिक नहीं है। द्रौपदी द्वारा अपने अपमान के प्रतिशोध का प्रण, सीता द्वारा लक्ष्मण रेखा को पार करना, राम द्वारा सीता का परित्याग या फिर माँ द्वारा बच्चे को डांटना या पीटना कई इस तरह की स्थितियां हैं, जहाँ हमारे मूल्य आपस में टकराते भी हैं। अत: मानव मूल्यों में 'सत्यं, शिवम सुन्दरम्' की अवधारणा को समझना आवश्यक है। सभी मानव मूल्य 'सत्यं, शिवं और सुंदरम्' होने की कसौटी पर एक साथ खरे उतरें, यह आवश्यक नहीं है। विज्ञान और तर्क के लिए सत्य ही वास्तविक मूल्य हो सकता है तो नीतिवादियों के लिए शिव, वहीं सौंदर्यवादियों के लिए सौन्दर्य ही अंतिम मूल्य है। अत: यहाँ समझना होगा कि मूल्यों की परिभाषा या मापदंड को किसी एक तय या पारंपरिक सांचों में फिट नहीं किया जा सकता। एक के लिए जो नैतिक हो सकता है, दूसरों के लिए वह अनैतिक आचरण है।

मूल्य निर्धारण में हमारे चिंतन और व्यवहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें संस्कृति की भी बलवती भूमिका होती है। संस्कृति का आधार पाकर मूल्य विकसित, पल्लवित और स्थिर होते हैं। जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति में सहअस्तित्व और संयुक्त परिवार के मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। वहीं पाश्चात्य संस्कृति में व्यक्तिकेंद्रिता तथा एकल परिवार अधिक हैं। इसे ध्यान से देखें तो मूल्य राष्ट्रीय चरित्र में समाहित हो जाते हैं। मानवीय मूल्यों से समाज-निर्माण होता है और मूल्य संपन्नता से ही राष्ट्र का गौरवशाली रूप निरखता है। मानव-कल्याण की चेतना को केंद्र में रखना मानव मूल्य का आवश्यक तत्त्व है। निस्वार्थ भाव से किये गए अच्छे कार्य और मूल्य, शिष्ट समाज द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। मानव मूल्य, जन सामान्य का उन्नयन करने वाले हों। इन बातों को मानव मूल्यों का अनिवार्य तत्त्व माना जा सकता है। समाज और वृहत्तर इकाई के कल्याण के लिए उचित साधनों से किया गया कार्य मूल्यपरक होगा। अत: मूल्यपरकता में साधन और साध्य की शुद्धता पर भी बल दिया जाना चाहिए।

मानव मूल्यों का चिंतन क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इस पर विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से बहुत विचार-विमर्श किया है। मानव मूल्यों के इस विस्तृत क्षेत्र में साहित्य इन्हें समझने में हमारी बहुत मदद करता है। जब तुलसीदास यह कहते हैं 'परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई' तो वास्तव में परोपकार को सबसे बड़े धर्म तथा मानव मूल्य के रूप में स्थापित करते हैं। इस अर्थ को

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ग्रहण करते हुए इसे मानव हित की अवधारणा से जोड़ना चाहिए। मानव मूल्य मनुष्य को 'स्व' की सीमित इकाई के दायरे से निकालकर 'सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय:' के उदात्त धरातल पर मनुष्य की आत्मा का उन्नयन करते हुए लोकमंगल की धारणा से जोड़ते हैं। प्रकृति के अधिकांश जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही स्वयं को सीमित रखते हैं लेकिन मनुष्य होने की सार्थकता सिर्फ खुद या अपने परिवार को लेकर ही नहीं बल्कि पूरे समाज को साथ लेकर चलने में है। मूल्यों से युक्त नागरिक अपने समाज तथा राष्ट्र हितों के प्रति भी सचेत रहता है.

मानवीय मूल्यों और नैतिकता के साथ साहित्य का बहुत पुराना संबंध है। मूल्यों के सांस्कृतिक संदर्भों को देखें तो इस महत्त्वपूर्ण संबंध को हम समझ पाएंगे। आपको पंचतंत्र की कहानियों की रोचक रचना प्रक्रिया के बारे में पता होगा। पंडित विष्णु शर्मा द्वारा राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए उन्होंने इसकी रचना की थी। राजकुमार चंचल प्रवृत्ति के थे और परंपरागत पद्धति से शिक्षा ग्रहण नहीं कर पा रहे थे। तब विष्णु शर्मा ने पारंपरिक शिक्षा पद्धति से भिन्न राजकुमारों की शिक्षा व्यवस्था की योजना बनाई। पंचतंत्र की कहानियों में विभिन्न पशु-पक्षियों पर आधारित कहानियों के माध्यम से उन्होंने राजकुमारों को मित्रता, नीतिशास्त्र, राजनीति, कूटनीति तथा शासन व्यवस्था से संबंधित आवश्यक जीवन मूल्यों को शिक्षा दी। राजकुमारों ने पंचतंत्र की रोचक कहानियों के माध्यम से इन मूल्यों को आत्मसात किया। साहित्य अपने समय और समाज के जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है। भारत में वेद-पुराणों के बाद हितोपदेश, उपनिषद् और पंचतंत्र की कहानियाँ इसका सशक्त उदाहरण हैं। मध्ययुग में कबीर, रहीम, रैदास, तुलसीदास आदि कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से नैतिकता और मानवीय मूल्यों के मापदण्ड स्थापित किए। आधुनिक युग में भारतेंदु, प्रेमचंद, भीष्म साहनी तथा अन्य बहुत से महत्त्वपूर्ण रचनाकारों ने मनुष्यता के धरातल पर अपने साहित्य के माध्यम से मानव मूल्यों को प्रतिबिंबित किया है। हम साहित्य की कोटि में ऐसे रचनात्मक लेखन को लेते हैं जिनमें अपने समय और समाज तथा समग्र जीवन की छवि दिखलाई पड़ती है। समाज के उन्नयन, उत्कर्ष और परिष्कार के लिए साहित्य मानव मूल्यों को स्पष्ट करता है। दूसरे शब्दों में शाश्वत और प्रासंगिक मानव मूल्यों को निरुपित करना साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए।

हम साहित्य से आदर्श लेते हुए सामायिक चुनौतियों पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। पंचतंत्र की कहानी 'चतुर खरगोश' और 'वानर और मगरमच्छ' आदि कहानियों में संयम, धैर्य और बुद्धिमानी जैसे मूल्यों के महत्त्व को समझा जा सकता है। ये कहानियाँ बहुत जीवंत और सहज रूप में मूल्यों की समझ विकसित करती हैं। तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' का भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों पर गहरा असर पड़ा है। राम के जीवन की कथा में श्रेष्ठ मानव मूल्यों की स्थापना

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

को देखा जा सकता है। 'रामायण' पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों को बहुत सुंदर ढंग से हमारे सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत करती है। 'महाभारत' जैसे ग्रंथों में मानव मूल्यों के विघटन से उपजे संकट और इन मूल्यों की स्थापना के लिए बड़े स्तर पर संघर्ष को देखा जा सकता है। भक्तिकाल के कवियों ने अपने काव्य में मानव मूल्यों को बड़ी गहराई से संजोया हुआ है। कबीर की वाणी तो इसका एक बड़ा उदाहरण है। कबीर के यहाँ सभी तरह की शिक्षा के ऊपर 'ढाई आखर प्रेम' को ही महत्व मिला। कबीर ने प्रेम, दया, करुणा, समानता, सद्भाव, वैचारिक तथा आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए बाह्याडम्बरों की अपेक्षा मानव मूल्यों को महत्त्व दिया। कबीर की वाणी इन मानव मूल्यों के कारण आज भी प्रासंगिक बनी हुई है। लोकजीवन और संस्कृति में रचे-बसे उनके दोहे समाज को आइना दिखाने के साथ ही साथ मानव मूल्यों के प्रकाश में मार्ग भी दिखाते हैं। जब वे कहते हैं,

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय I
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय II

यहाँ लगातार खुद के भीतर ही सुधार के मूल्य को महत्त्व दिया गया है। जीवन में ज्यादातर बदलाव हम बाहर और दूसरों में ही चाहते हैं। अपने भीतर झांकने और दोषों को दूर करने के लिए हम बहुत कम सोचते हैं। परिवर्तन की शुरुआत स्वयं से करनी चाहिए। आगे चलकर यही प्रक्रिया बाहर भी दूसरो को प्रभावित करेगी। गाँधीजी का जीवन इसका उदाहरण है। उन्होंने अपनी मानवीय कमजोरियों को दूर करने का प्रयास किया और इस क्रम में नैतिक आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए वे विश्व के लिए आदर्श बनते हैं। गुजराती कवि नरसी मेहता द्वारा 15वीं सदी में लिखा गया भजन महात्मा गाँधी का भी प्रिय भजन बन गया, जिसे उन्होंने अपनी दैनिक पूजा का हिस्सा बना लिया;

वैष्णव जन तो तेने कहिये,
जे पीड परायी जाणे रे I
पर दुःखे उपकार करे तो ये,
मन अभिमान न आणे रे II

तुलसीदास दया को धर्म का मूल मानते हैं और अभिमान को पाप का मूल मानते हैं। वे कहते हैं कि जब तक शरीर में प्राण हैं मनुष्य को दया का भाव नहीं छोड़ना चाहिए। वे सत्संग के महत्त्व को सबसे ऊपर मानते हैं। मानवीय मूल्यों के प्रति सुंदर आग्रह उनके काव्य में देखा जा सकता है-

तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर I
बसीकरण एक मंत्र है, परिहरु बचन कठोर II

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मानव मूल्यों की यह प्रतिष्ठा साहित्य को भी ऊँचा उठाती है। रहीम प्रेम, सद्भावना, सत्संगति, संतोष, मीठे वचनों तथा मित्रता को अपने दोहों में महत्त्व देते हैं-

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय I
टूटे ते फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परी जाय II

आधुनिक युग में भारतेंदु ने अपने साहित्य में समय के अनुकूल मानव मूल्यों की चर्चा की। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी क्रम को आगे बढ़ा कर साहित्यिक रुचियों का परिष्कार करते हुए मानव मूल्यों पर बल दिया। प्रेमचंद ने साहित्य को समाज के लिए आगे चलने वाली मशाल कहा और इस बात पर बल दिया कि साहित्य ऐसा हो जो सुलाए नहीं बल्कि जागने की बेचैनी दे। उनके साहित्य में मानव मूल्यों से जुड़े कई पहलू हमारे सामने आते हैं। 'गोदान' उपन्यास तो मानव मूल्यों की दास्तान बनकर उभरता है। भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ़ की दावत' समाज द्वारा वृद्धों के प्रति व्यवहार से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण मानव मूल्य से साक्षात्कार कराती है। भारतीय साहित्य और संस्कृति ने जीवन में मानव मूल्यों की साधना पर बल दिया है। यहाँ अमृत पा लेने की आकांक्षा नहीं बल्कि दूसरों के लिए अमृत होने की महत्ता को रेखांकित किया गया है।

1.6.1 बोध प्रश्न

(क) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. भारतीय दर्शन में मनीषियों ने मानव मूल्यों से युक्त मनुष्य को ही श्रेष्ठ बताया है। (सही/गलत)
2. मनुष्य के प्रत्येक विचार, कर्म और कल्पना में मूल्य का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। (सही/गलत)
3. मूल्यों की परिभाषा या मापदंड को किसी एक तय या पारंपरिक साँचों में फिट किया जा सकता है। (सही/गलत)
4. मूल्य सम्पन्नता से ही राष्ट्र का गौरवशाली रूप निखरता है। (सही/गलत)

(ख) सही शब्द के चुनाव के द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

1. मूल्य ..... व्यक्ति की श्रेष्ठता की कसौटी पर खरा उतरता है। (विहीन/परायण/रहित)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2. मूल्य निर्धारण में हमारे चिंतन और ..... की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। (व्यवहार/सिद्धांत/पेरो)

3. ..... का आधार पाकर मूल्य विकसित, पल्लवित और स्थिर होते हैं। (नियम/कानून/संस्कृति)

1.7 मूल्य परिवर्तन के कारण और प्रभाव

वर्तमान समय में मूल्यों के परिवर्तन और ह्रास की चिंता लगातार व्यक्त की जा रही है। हमें यह समझना होगा कि मूल्य समय और समाज के सापेक्ष होते हैं। भारतीय समाज और संस्कृति में कुछ मूल्य शाश्वत हैं। जैसे; सत्य, प्रेम, मित्रता, अहिंसा, दया, त्याग, श्रद्धा, करुणा, परोपकार, न्याय, सत्संगति आदि लेकिन कुछ पुराने मूल्य अप्रासंगिक होकर समाप्त भी हो जाते हैं। जैसे पहले हमारे समाज में सती प्रथा, बाल विवाह, दहेज़ प्रथा का प्रचलन था लेकिन अब ये अप्रासंगिक हो चुके हैं। इसी के साथ हमें यहाँ इन बातों का भी ध्यान रखना होगा कि बदलते परिवेश के कारण कुछ शाश्वत मानव मूल्यों का भी ह्रास हो रहा है, लेकिन इन मूल्यों के ह्रास का नकारात्मक प्रभाव भी समाज में देखा जा सकता है। वास्तव में मानव मूल्यों में विचलन, समाज के विचलन का भी कारण बनता है। मूल्य परिवर्तनों के कुछ कारणों पर चर्चा करें तो हम पाएंगे कि इसके पीछे बहुत से कारण हो सकते हैं। शिक्षा, स्थान-परिवर्तन, सामाजिक परिस्थितियाँ, वैचारिकी, बदलता परिवेश, तकनीकी विकास, भूमंडलीकरण आदि आधुनिक जीवन शैली की आप-धापी और बाजारवाद के इस युग में मानव मूल्यों को दरकिनार करके आगे बढ़ने के लिए इन मूल्यों की उपेक्षा भी बढ़ गई है। भूमंडलीकरण की दुनिया में आपसी संबंध उत्पादक और उपभोक्ता तक सीमित रह गए हैं। ऐसे में आपसी लगाव, आत्मीयता, स्नेह, बुढ़ापे में बच्चों का सहयोग जैसे संकट उत्पन्न होंगे। एक सबसे बड़ा संकट तो प्रकृति के विनाश का हम झेल ही रहे हैं। मनुष्य और प्रकृति का संबंध अभिन्न और अटूट है पर मनुष्य अपने लालच के चलते सारी संपदा पा लेने की होड़ में लगातार उसका दोहन कर रहा है। पर्यावरण के विनाश से मनुष्यता पर भी संकट स्पष्ट देखा जा सकता है। बाज़ारवाद की दुनिया ने आत्म-संतोष, संतुष्टि जैसे मानव मूल्यों की उपेक्षा करते हुए उन्हें 'थोड़ा और विश करो' से स्थानातंरित कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सब कुछ पा लेने की होड़ में स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, हिंसा और यहाँ तक कि युद्ध की विभीषिका भी झेलने के लिए मानवता अभिशप्त है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.8 मानव मूल्यों का महत्त्व

मूल्य मानव जीवन के संस्कार हैं। ये केवल अतीत की विरासत ही नहीं बल्कि भविष्य की संभावना को भी समृद्ध करते हैं। मूल्य व्यक्ति और समाज के बीच सेतु का कार्य करते हैं। आधुनिकता का संबंध बाहरी चमक-दमक से नहीं बल्कि तर्कशीलता और वैचारिकता से है। हमें यह समझना होगा कि पुराना सब कुछ इसलिए नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि वह पुराना है और इसी प्रकार नया सब कुछ इसीलिए स्वीकार्य नहीं होना चाहिए क्योंकि वह नया है। हमें मानव मूल्यों की कसौटी पर परखकर विवेकपूर्ण ढंग से अपनी नैतिकता और आचरण को निर्धारित करना चाहिए। आगे बढ़ने के लिए धरती पर एक कदम का टिका रहना जरुरी है। समझना होगा कि कहीं तेज़ भागने और मंज़िल पा लेने की जल्दबाजी में दोनों पैर ऊपर उठाए तो तुरंत जमीन पर गिरेंगे। अप्रासंगिक मूल्यों को छोड़ना उठे हुए क़दमों का प्रतीक है तो ज़मीन पर टिका पैर प्रासंगिक जीवन मूल्यों को धारण करने का, दोनों का संतुलन ही मानवता को आगे बढ़ाएगा। संपूर्ण मानव समाज, मानव कल्याण और मनुष्यता की रक्षा के लिए मानव मूल्यों का संरक्षण और अनुपालन आवश्यक है। मानवता के विकास में मूल्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मनुष्य अपनी सभ्यता, सामाजिक और सांस्कृतिक यात्रा में इन मानव मूल्यों को आत्मसात करके अपने भौतिक जीवन के साथ ही साथ अध्यात्मिक जीवन को भी समृद्ध बनाता है। मानव मूल्य मनुष्य की रीढ़ की हड्डी के समान है जिसके बिना उसका खड़ा रहना संभव नहीं है। वर्तमान समय में समाज और देश की चुनौतियों जैसे; सामाजिक समस्याओं, आर्थिक चुनौतियों, प्रदूषण, जन-स्वास्थ्य, साक्षरता, नैतिकता आदि के लिए मानव मूल्यों का अनुपालन हल सुझाता है। आधुनिक समाज में विभिन्न चुनौतियों के बीच मानव मूल्य लगातार प्रासंगिक बने हुए हैं। मानव मूल्य मानवता को समृद्ध करते हुए उसे विकास की ओर अग्रसरित करते हैं। अतः मानव जीवन में मानव मूल्यों का महत्त्व अतुलनीय है।

1.8.1 बोध प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-दो शब्दों या पंक्तियों में दीजिए-

1. मानव मूल्यों की कसौटी क्या है?
2. मानवता के विकास में किसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए-

1. मानव मूल्यों का संरक्षण और अनुपालन आवश्यक है। (सही/गलत)
2. मानवता के अवमूल्यन में मूल्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.9 निष्कर्ष

मानव मूल्यों के बिना मानव जीवन की कल्पना अधूरी है। मानव सभ्यता का प्रमुख गुण भी सह-अस्तित्व की धारणा पर टिका है। मानव मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। मूल्य मनुष्य के आंतरिक भाव होते हैं, जो उसके व्यक्तित्व, विचार एवं कार्यों में प्रतिबिंबित होते हैं। मूल्य अमूर्त होते हैं, जिन्हें सीखा जा सकता है। इस प्रकार मानव मूल्य ऐसी आचार-सहिंता है जिसे मानव अपने परिवेश, संस्कारों, शिक्षा, समाज तथा पर्यावरण से अपनाकर लक्ष्य प्राप्ति हेतु अपनी जीवन शैली, नैतिकता और आचरण का विकास करता है। मानव मूल्यों में संपूर्ण सृष्टि और मानव जाति के हित निहित हैं। मानवीय मूल्य सार्वजनिक हित की ओर अग्रसर होते हैं। मानव उत्थान के लिए सर्वस्व त्याग और बलिदान की भावना इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। मूल्य समय के अनुसार सीखे और अपनाए जा सकते हैं पर इनके बिना मानव जीवन बंजर भूमि के समान सारहीन होगा। मानव की गरिमा मानव मूल्यों से ही प्रतिबिंबित होती है। मूल्यों का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक आधार होता है इसलिए विभिन्न समाजों में ये अलग-अलग हो सकते हैं। मूल्य के कई आयाम होते हैं जिनमें तीन प्रमुख आयामों में जैविक, सामाजिक और आध्यत्मिक है। जैविक मूल्यों में जीवन और स्वास्थ्य संबंधी, सामाजिक में संपत्ति, प्रेम, न्याय आदि और आध्यात्मिक आयाम में सत्य, मोक्ष और शुद्धता आदि मूल्य समाहित हैं। मानव मूल्यों की दृष्टि से इन सभी आयामों का अपना महत्त्व है। ये मानव मूल्य सामाजिक विरासत का भी अंग होते हैं। किसी भी राष्ट्र की गरिमा श्रेष्ठ मानव मूल्यों के पालन में ही है। मनुष्यता का संरक्षण और लोक मंगल की रक्षा मानव मूल्यों से ही संभव है। किसी भी सभ्यता और संस्कृति का मूल्यांकन उस समाज और संस्कृति में व्याप्त मानव मूल्यों पर ही किया जा सकता है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. मानव मूल्यों से आप क्या समझते हैं ? इसके स्वरूप और महत्त्व को रेखांकित कीजिए।
2. भारतीय समाज और संस्कृति में मूल्य-चिंतन की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
3. मूल्य परिवर्तनों के कारणों की चर्चा करते हुए समाज पर पड़ने वाले उसके प्रभावों को रेखांकित कीजिए।
4. साहित्य पर किस प्रकार मानव मूल्यों का गहरा प्रभाव पड़ा है, स्पष्ट कीजिए।
5. मानव मूल्य राष्ट्र और विश्व के संदर्भ में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, प्रकाश डालें।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

6. मानव मूल्यों की प्रासंगिकता पर चर्चा करें।

1.11 संदर्भ-ग्रंथ

1. *मूल्यपरक शब्दावली का विश्वकोश*, संपादक - धर्मपाल सिंह मैनी, सरूप एंड संस प्रकाशन
2. *मानव मूल्य और साहित्य*, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
3. *भाषा, साहित्य और सृजनात्मकता*, समन्वय एवं संपादन – रमेश गौतम, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रकाशन

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

978-93-95774-69-7

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi